श्री गुरुजी समग्र
खंड
१२

श्री गुरुजी समग्र

खंड १२

स्मरणांजलि

स्वत्वाधिकार :

डा. हेडगेवार स्मारक समिति
डा. हेडगेवार भवन,
महाल, नागपुर-४४००३२

प्रकाशक :

सुरुचि प्रकाशन
देशबंधु गुप्ता मार्ग,
नई दिल्ली-११००५५
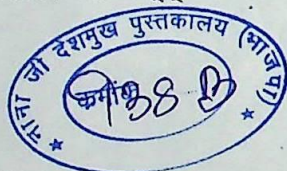
प्रथम संस्करण :

माघ कृष्ण एकादशी युगाब्द ५१०६

मुद्रक :

गोपसन्स पेपर्स लि.,
नोएडा-२०१३०१

मूल्य प्रति संच :

दो हजार रुपए

पारिभाषिक शब्द

सरसंघचालक	-	संघ के मार्गदर्शक।
सरकार्यवाह	-	संघ के निर्वाचित सर्वोच्च पदाधिकारी।
संघचालक	-	स्थानीय कार्य व कार्यकर्ताओं के पालक।
मुख्यशिक्षक	-	नित्य चलनेवाली शाखा के कार्यक्रमों को संचालित करनेवाला।
कार्यवाह	-	शाखा क्षेत्र का प्रमुख।
गटनायक	-	शाखा क्षेत्र के एक छोटे भौगोलिक भाग का प्रमुख।
प्रचारक	-	संघकार्य हेतु पूर्णतः समर्पित अवैतनिक कार्यकर्ता।
शाखा	-	संस्कार निर्माण हेतु नित्यप्रति का एकत्रीकरण।
उपशाखा	-	एक स्थान पर चलने वाली विभिन्न शाखाएँ।
बैठक	-	विचार-मंथन व सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया हेतु एकत्र बैठने की प्रक्रिया।
बौद्धिक	-	वैचारिक प्रबोधन का कार्यक्रम, भाषण।
समता	-	अनुशासन के प्रशिक्षण हेतु शारीरिक कार्यक्रम।
संपत्	-	कार्यक्रम प्रारंभ करने हेतु स्वयंसेवकों को निश्चित रचना में खड़ा करने की आज्ञा।
विकिर	-	शाखा-कार्यक्रम की समाप्ति की अंतिम आज्ञा।
दंड	-	लाठी।
चंदन	-	एक साथ मिल-बैठकर जलपान करना।
सहभोज	-	अपने-अपने घर से लाए भोजन को एक साथ मिल-बैठकर करना।
शिविर	-	कैंप।
संघ शिक्षा वर्ग	-	संघ की कार्यपद्धति सिखाने हेतु क्रमबद्ध त्रिवर्षीय प्रशिक्षण योजना।
सार्वजनिक समारोप	-	शिविर तथा वर्ग का अंतिम सार्वजनिक कार्यक्रम।
खासगी समारोप	-	वर्ग का केवल शिक्षार्थियों के लिए दीक्षांत कार्यक्रम।

अनुक्रमणिका

लेखांजलि

सभांजलि

बुधांजलि

शब्दांजलि

खंड - १२

स्मरणांजलि

श्री गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित लोगों ने उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए, उससे 'भी' स्पष्ट होता है कि उनका व्यक्तित्व कितना विशाल और व्यापक था। इस खंड में समाज जीवन में उनके व्यक्तित्व के प्रभाव की गहराई को प्रदर्शित करने वाले कुछ श्रद्धासुमन संकलित हैं।

लेखांजलि

१. मैंने देखा : इच्छामरण

(श्री अटलबिहारी वाजपेयी, राजनेता)

५ जून १९७३

सबेरे का समय, चाय-पान का वक्त, पूजनीय श्री गुरुजी के कमरे में (उसे कोठरी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा) जब हम लोग प्रविष्ट हुए तब वे कुर्सी पर बैठे थे। चरण स्पर्श के लिए हाथ बढ़ाए। सदैव की भाँति पाँव पीछे खींच लिए। मेरे साथ आए स्वयंसेवकों का परिचय हुआ। उनमें आदिलाबाद के एक डाक्टर थे। श्री गुरुजी विनोदवार्ता सुनाने लगे कि एक मरीज एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने पूछा– 'क्या कष्ट है? सारी कहानी सुनाओ।' मरीज बिगड़ गया। बोला– 'अगर मुझे ही अपना रोग बताना है तो फिर आप निदान क्या करेंगे? बिना बताए जो बीमारी समझे, मुझे ऐसा डाक्टर चाहिए।'

डाक्टर एक क्षण चुप रहे। फिर बोले 'ठहरो, तुम्हारे लिए दूसरा डाक्टर बुलाता हूँ।' जो डाक्टर आया वह जानवरों का डाक्टर था। बिना कुछ कहे सब कुछ समझ लेता था।

कथा सुनकर हँसी का फव्वारा फूट पड़ा। रात्रि भर के जागरण की थकान, पल भर में दूर हो गई। श्री गुरुजी स्वयं हँसी में शामिल हो गए।

फिर एक किस्सा सुनाया, हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गए। इतने में चाय आ गई। चाय सबको मिली या नहीं इसकी चिंता श्री गुरुजी स्वयं कर रहे थे। कौन चाय नहीं पीता, किसको दूध की आवश्यकता है, इसका उन्हें बड़ा ध्यान रहता। सबके बाद स्वयं चाय ली। कप

में नाम मात्र को चाय थी। उन्होंने उसे और कम कराया। शायद हमारा साथ देने के लिए ही वे चायपान कर रहे थे। निगलने में बड़ा कष्ट था। साँस लेने में अत्यधिक पीड़ा थी।

किंतु चेहरे पर थी वही मुक्तमोहिनी मुस्कान। हृदय-हृदय को हरनेवाला हास्य। मुरझाए मन की कली-कली को खिलाने वाली खिलखिलाहट। निराशा, हताशा और दुराशा को दूर भगाने वाला दुर्दम्य आत्मविश्वास।

कमरे के किसी कोने में मौत खड़ी थी। शरीर छूट रहा था। एक-एक कर सभी बंधन टूट रहे थे। महामुक्ति का मंगल मुहूर्त निकट था। एक क्षण के लिए मुझे लगा, शूलों की शय्या पर भीष्म पितामह मृत्यु की बाट जोह रहे हैं। इच्छामरण सुना भर था, आज आँखों से देख लिया।

६ जून १९७३

हेडगेवार भवन। एक दिन में कितना अंतर हो गया। कल सब शांत था। आज शोक का निस्तब्ध चीत्कार हृदय को चीर रहा था। कल सब अपने काम में लगे थे। आज जैसे सब कुछ खोकर खाली हाथ खड़े थे। आँखों मे पानी, हृदयों में हाहाकार। कभी न भरने वाला घाव, कभी न मिटने वाला दर्द।

पूजनीय गुरुजी का पार्थिव शरीर दर्शन के लिए कार्यालय के कमरे में रखा था। आज उन्होंने मुझे चरण स्पर्श करने से नहीं रोका। अपने पाँव पीछे नहीं हटाए। सिर पर प्रेम से हाथ नहीं फेरा। हंस उड़ चुका था, काया के पिंजड़े को तोड़कर पूर्ण में विलीन हो चुका था।

गुरुजी नहीं रहे। उनका विराट व्यक्तित्व छोटी सी काया में कब तक कैद रहता? जीवन भर तिल-तिल कर जलकर लाखों जीवनों को आलोकित, प्रकाशित करने वाला तेजपुंज मुट्ठी भर हाड़-मांस के शरीर में कब तक सीमित रहता?

लेकिन गुरुजी हमेशा रहेंगे। हमारे जीवन में, हृदयों में, कार्यों में। अग्नि उनके शरीर को निगल सकती है, हृदय-हृदय में उनके द्वारा प्रदीप्त प्रखर राष्ट्रप्रेम तथा निःस्वार्थी समाजसेवा की चिंगारी को कोई नहीं बुझा सकेगा। उनकी पुनीत स्मृति में शतशः प्रणाम।

(पांचजन्य ८ जुलाई १९७३)

२. अखंड संघव्रती

(श्री अप्पाजी जोशी, डाक्टर हेडगेवार के निकटस्थ)

मैं यह अपना परम सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे परमपूजनीय डा. हेडगेवार और परमपूजनीय श्री गुरुजी– दोनों महापुरुषों का सहवास और असीम स्नेह प्राप्त हुआ। डाक्टर साहब को तो मैंने अपनी किशोरावस्था में ही देखा था और मैं उनका अनुयायी बन गया था। परंतु श्री गुरुजी के दर्शन का सौभाग्य तब प्राप्त हुआ, जब मैं डाक्टर जी के साथ काशी गया था। उस समय की उनकी इकहरी, फुर्तीली, तेजस्वी मूर्ति आज भी मेरी आँखों के सम्मुख है। आगे यथासमय उनके गुणों का भी परिचय हुआ।

सन् १९३९ के फरवरी मास में सिंदी में हमारे मित्र और संघ-बंधु स्व. नानासाहब टालाटुले के घर पर जो एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बैठक ८-१० दिनों तक हुई, उसमें श्री गुरुजी के साथ अत्यंत घनिष्ठ परिचय हुआ। एक दिन की बैठक में एक बात पर मेरी और श्री गुरुजी की जोरदार बहस हुई। दोनों में से कोई अपने विचार से पीछे हटने को तैयार नहीं था। अंत में डाक्टर जी पर निर्णय करने का काम सौंपा गया। उन्होंने मेरे पक्ष में निर्णय दिया। निर्णय अपने विरुद्ध दिया गया इस बात का तनिक भी दुःख श्री गुरुजी के मुख पर दिखाई नहीं दिया। उल्टे पहले के समान ही उन्होंने हँसते-खेलते अगले कार्यक्रमों में भाग लिया। राजनैतिक क्षेत्र की मनोवृत्ति से मेरा परिचय था। अतः मन पर काबू पाने के उनके असाधारण और अनपेक्षित उदाहरण से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ।

उसके बाद जब मैं और डाक्टर हेडगेवार जी दोनों घूमने गए, तब डाक्टर जी ने अचानक मुझसे कहा– 'आप्पाजी, भावी सरसंघचालक के रूप में माधवराव जी के बारे में आपकी क्या राय है?' उस पर मैंने तुरंत कहा– 'वाह! बहुत ही सुंदर चुनाव है। जिसने अपना मन जीत लिया है, वह दुनिया भी जीत सकता है।' आगे डाक्टर जी का वह चुनाव सब दृष्टि से कितना उचित था, यह समय ने सिद्ध कर दिखाया।

श्री गुरुजी के लौकिक जीवन के विषय में बहुतों को बहुत कुछ जानकारी है, परंतु उनके आध्यात्मिक जीवन के बारे बहुत कम ज्ञान है। उन्होंने स्वयं इस विषय में कभी चर्चा नहीं की। परंतु इस क्षेत्र में वे कितने अधिकारी पुरुष थे, इसका मेरा अपना अनुभव यहाँ उद्धृत किए बिना रहा नहीं जाता।

गाँधी जी की मृत्यु के पश्चात् मैं और श्री गुरुजी एक ही जेल (नागपुर) में थे। संयोग से हम दोनों एक ही कोठरी में थे। कारागृह में दूसरों की दृष्टि बचाकर व्यक्तिगत व्यवहार करने की गुंजाइश नहीं रहती, इसलिए व्यक्ति के सारे व्यवहार का, बिल्कुल अंतरंग का भी अच्छी तरह से निरीक्षण किया जा सकता है। सभी को विदित है कि श्री गुरुजी ध्यान-धारणा करते थे। कारागृह में कोई काम-धाम तो नहीं था, इसलिए वे ध्यान-धारणा में अधिक समय बिताया करते थे। कोठरी की सलाखों को चादर आदि बाँधकर हम अस्थायी एकांत स्थान बना लेते और वहाँ बैठकर ध्यान-धारणा और गप-शप करते बैठते।

कभी-कभी सलाखों से बँधे वस्त्र हवा के झोंके से इधर-उधर उड़ जाते, तब उन्हें फिर से ठीक करना पड़ता। जब एक बार हवा के झोंके से परदे इधर-उधर उड़ गए, तब मैं परदे को बाँधने के लिए गया। अनजाने मेरी दृष्टि उनके मुख पर पड़ी। मुझे उनके मुखमंडल पर एक तेजस्वी अनोखी आभा दिखाई दी। उनकी आँखें अधखुली थीं। मुख पर शांति और संतोष के भाव और दैवी स्मित झलक रहा था। वह दृश्य आज भी मेरे हृदय-पटल पर ज्यों का त्यों अंकित है। मेरा अंतर्मन हमेशा मुझे गवाही देता है कि वे उस समय दैवी साक्षात्कार की अवस्था में होंगे। वह असाधारण दैवी दृश्य मैंने स्वयं देखा है, इस कल्पना से मुझे सदैव एक तरह का सात्विक अभिमान और आनंद होता है।

साक्षात्कारी श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुरुष होने के नाते उनके प्रति मुझे आदर और आकर्षण था ही, परंतु मेरी दृष्टि में उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात थी उनकी प्रखर, अनन्यसाधारण कर्मठ संघनिष्ठा और परमपूजनीय डा. हेडगेवार जी के प्रति, अर्थात् संघ के प्रति उनका पूर्ण समर्पण। पू. डाक्टर जी के प्रति श्री गुरुजी का आत्मसमर्पण अद्भुत था, जो उनके बाह्यतः कठोर दिखाई देनेवाले स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध लगता था। पूजनीय डाक्टर जी के विषय में वे कितने कोमल और भावना प्रधान हो जाते थे, इसका मैं अनेक बार अनुभव कर चुका था। प्रारंभ में श्री गुरुजी ने डा. हेडगेवार जी की अनेक प्रकार से परीक्षा ली, परंतु बाद में उनकी निरपेक्ष देशभक्ति, समाज के प्रति आत्मीयता और उसके लिए अहर्निश प्रामाणिक कार्यरतता आदि का अनुभव करने के पश्चात् डाक्टर जी पर उनका विश्वास अधिक दृढ़ हुआ। उन्होंने स्वयं

अनुभव किया कि संघकार्य ही मातृभूमि और समाज की सेवा करने का उत्कृष्ट माध्यम है। इसके पश्चात् जिस सहजता से उन्होंने अपने लोकोत्तर गुणों का अहंकार न रखते हुए, स्वयं को संघकार्य में संपूर्णतः समर्पित कर दिया, उस कारण मुझे उनके प्रति आत्यंतिक आत्मीयता ही नहीं, भक्ति भी है।

वास्तव में उनके समान एकांतप्रिय और आध्यात्मिक प्रकृति के व्यक्ति को हिमालय की किसी गुफा में तपश्चर्या करते हुए, ईश्वर-दर्शन के आनंद का सदैव उपभोग लेते बैठना और तथाकथित दुनियादारी के क्षुद्र झमेले से हमेशा के लिए पृथक रहना अधिक प्रिय होता और लोगों को भी वह अस्वाभाविक नहीं लगता।

एक बार वे इस प्रकार के वातावरण और मनःस्थिति में पहुँचे थे, परंतु यह अलौकिक मोह भी निग्रहपूर्वक दूर किया और इस निश्चय से कि मेरा देश, मेरा समाज ही परमेश्वर है तथा मेरा उद्धार भी इसी पर निर्भर है, वे सतत अविश्रांत संघकार्य करते रहे। उपेक्षा, अपमान, अवहेलना, अकारण विरोध के कितने ही आघात उन्होंने शांति से सहे और स्वयं सभी कार्यकर्ताओं को सतत उत्साह और प्रेरणा देते और उनकी पीठ पर ममतामय हाथ फेरते रहे। संघ की प्रतिज्ञा के अनुसार 'संघ-व्रत' का उन्होंने आजन्म अक्षरशः अंतिम साँस तक निष्ठा से पालन किया।

उनके जीवन से स्वयंसेवकों और समाज के अन्य लोगों को भी यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि देश और समाज की सेवा के आगे प्रत्यक्ष ईश्वर-प्राप्ति सहित सभी मोह, सभी लोभ गौण हैं। साधारण मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन हर पल अनेक छोटे-बड़े मोह आते हैं। उनका वह शिकार होता है। वह कुछ भी काम नहीं कर सकता है।

एक बार निश्चयपूर्वक स्वीकृत कर्तव्य, स्वयं की पूर्ण शक्ति दाँव पर लगाकर अंतिम क्षण तक करते रहना, उसके अनुकूल अपने जीवन की रचना करना, अपने स्वभाव में भी कार्यानुकूल आवश्यक परिवर्तन करना और कार्य सफल कर दिखाना, यही आदर्श श्री गुरुजी के जीवन ने हमारे सम्मुख रखा है।

(श्री गुरुजी समग्रदर्शन, खंड-१)

३. गऊ कथा, गुरु कथा

(अशोक मित्र)

सन् १९६६ समाप्त होने को था। देश की हालत बड़ी खराब चल रही थी। इंदिरा जी के प्रधानमंत्रित्व का पहला ही साल था। शुरू में ही संकट खड़ा हो गया। जन आक्रोश घनीभूत हो रहा था। किसी भी क्षण आक्रोश जनविक्षोभ का रूप ले सकता है ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही थी।

परिस्थिति का लाभ उठाया गोमाता की देखभाल में सदा चिंतित साधुओं ने। लग रहा था कि भूखों की फौज का देश भर में स्थान-स्थान पर क्रोधोद्रेक होगा। और देखा कि एक दिन भरी दोपहरी में क्रोध से भरे साधुओं का जमावड़ा बहादुरी जताने के लिए रास्ते पर उतर आया है। उनकी आँखों से आग बरस रही थी, हाथ में त्रिशूल लिए कोई डेढ़-दो हजार जटाधारी संन्यासी नई दिल्ली में बदस्तूर संसद भवन पर ही आक्रमण कर बैठे। अंततः पुलिस को अश्रु गैस का प्रयोग कर साधुओं को रोकना पड़ा। संसद भवन का सारा इलाका अश्रु गैस के धुएँ से भर गया। मैं स्वयं कृषिभवन के अपने कमरे में अश्रु गैस को झेल रहा था।

अकाल की स्थिति, बेतहाशा बढ़ती कीमतें और इंदिरा गाँधी की पहली सरकार की लड़खड़ाती हालत। ऐसे में साधुओं के क्षोभ का कारण था इस लम्पट सरकार द्वारा भारतीय परंपरा का अपमान करना व गोमाता को उचित श्रद्धायुक्त सम्मान न देना। यहाँ तक कि भारतीय संविधान तक की अवहेलना करना। संविधान की ४८वीं धारा में स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि गाय-बछड़े की हत्या बंद होनी चाहिए। फिर भी यह कृतघ्न सरकार गोवंश रक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं कर रही है। पश्चिम बंगाल, केरल, गोवा तथा दक्षिण के और दो-एक राज्यों में बड़े पैमाने पर गाएँ काटी जा रही हैं, खुलेआम गोमांस बिक रहा है। इस देश में इस तरह का भ्रष्टाचार और अधिक सहन करना साधुओं की सहनशक्ति के परे था। साधुओं के लिए संसद भवन पर आक्रमण के सिवाय और मार्ग नहीं था।

इस लड़खड़ाती इंदिरा सरकार के गृहमंत्री थे गुलजारी लाल नंदा। वे भारत साधु समाज के प्रमुख संरक्षक भी थे। दो-एक गुरुओं (साधुओं) की पीठ पर लाठी भी बरसी थी, अश्रु गैस प्रयोग के बाद भगदड़ में कुछ साधु घायल भी हुए थे। नई दिल्ली में परिस्थिति गंभीर थी। साधुओं को

पीछे से उकसाए जा रहे थे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चेले चपाटे। उनकी एक संस्था राष्ट्रीय गोरक्षा समिति ने रातोंरात बड़े पैमाने पर दिल्ली में हल्ला-गुल्ला मचाना शुरू कर दिया। इंदिरा जी विचलित हुईं। अभी तक नई होने के कारण उनकी अपनी सरकार पर पकड़ मजबूत नहीं हुई थी। वे सरकार चलाने में माहिर भी नहीं हुई थीं। इधर उनके विरुद्ध पैंतरेबाजी शुरू हो गई थी। दो-तीन महीनों के बाद ही आम चुनाव होने थे। किसी भी हालत में त्रिशूलधारियों के साथ समझौता जरूरी था। प्रधानमंत्री जी ने साधुओं की माँगों पर विचार करने के लिए एक उच्चाधिकारयुक्त समिति की घोषणा कर दी, जो पूरी तरह से विचार करके सरकार को जल्द से जल्द बताती कि राष्ट्रीय गोरक्षा समिति के आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में गोरक्षण तथा गो-संवर्धन के लिए सरकार द्वारा शीघ्रातिशीघ्र क्या कार्रवाई की जानी चाहिए। समिति के अध्यक्ष प्रख्यात कानूनविद् सद्यःसेवानिवृत्त, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्रीमान् अमलकुमार सरकार नियुक्त किए गए। गोरक्षा समिति की ओर से पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य, भूतपूर्व न्यायाधीश श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय एवं साथ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वसंघपरिचालक गुरु गोलवलकर भी इस समिति में प्रतिनिधित्व कर रहे थे। और चार सदस्य थे हरियाणा, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु एवं केरल के कृषि एवं पशुपालन मंत्री तथा विशेषज्ञ के रूप में केंद्रीय सरकार के तत्कालीन पशुपालन आयुक्त प्रियव्रत भट्टाचार्य एवं दूसरे विशेषज्ञ के रूप में आणंद के स्वनामधन्य वर्गीज कुरियन। अर्थशास्त्रज्ञ के नाते मुझे समिति में लिया गया था।

इस अद्भुत समिति के विचित्र एवं तरह-तरह के अनुभव थे। समिति के सर्वोच्च पद पर थे न्यायमूर्ति सरकार, कोलकाता के बाग बाजार मोहल्ले के निवासी हम सबके अमल दा। अत्यंत विनम्र, विनयी एवं मधुर स्वभाव के साथ ही सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की पदमर्यादानुकूल गरिमायुक्त आचरण का संयुक्त मिश्रण उनके व्यवहार में रहता था। वार्तालाप के दौरान सभी को साथ लेकर चलने का उनका पुरजोर प्रयास रहता था। वे कई बार इस प्रयास में सफल नहीं हो पाते थे तो केवल पुरी के शंकराचार्य के कारण। गोमाता की रक्षा के पवित्रतम एवं महत्तम कर्तव्य के निर्वाह के लिए ही वे मानो हम जैसे म्लेच्छों के सामने एवं आसपास बैठे, अन्यथा ऐसा बैठना उनकी मर्यादा के प्रतिकूल है– यह दर्शाने में वे अपने हावभाव में एक दिन भी नहीं चूके। उनमें समिति के प्रति अवज्ञा, घृणा,

अनुकंपा एवं क्रोध का भाव प्रकट होता था। उनके क्रोध का विशेष कारण भी था। समिति की बैठक होती थी कृषिभवन में। जब भी जगद्‌गुरु कृषिभवन में आते, प्रवेश द्वार पर एवं गलियारे में अगणित भक्तों की भीड़ रहती थी। कार्यालय में ही सभी उनको साष्टांग दंडवत करते थे। जगद्‌गुरु भी हाथ उठाकर आशीर्वाद की वर्षा करते हुए बैठक कक्ष में प्रवेश करते थे। उपस्थित नौकरशाह भक्तिभाव के साथ उठ खड़े होते, केवल मात्र हम जैसे कुछ ढीठ कुर्सियों में धँसे रहते थे। जगद्‌गुरु हम लोगों पर रोषपूर्ण नजर डालते। उनका शिष्य अपवित्र कुर्सी पर व्याघ्रचर्म बिछाता एवं शंकराचार्य उस पर बैठकर मानो सभी को कृतार्थ करते। समिति के अध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायालय के एक समय के मुख्य न्यायाधीश जगद्‌गुरु की गिनती में ही नहीं थे। जगद्‌गुरु यह मानकर चलते थे कि वे स्वयं उपस्थित हैं एवं विषय जब गोमाता की हितरक्षा का है, तब उनके निर्देशानुसार ही सारी बातें होंगी। किंतु यह तो होना नहीं था।

गोरक्षा समिति के अन्य प्रतिनिधि आशुतोष तनय, श्यामाप्रसाद मुखर्जी के अग्रज रमाप्रसाद मुखोपाध्याय भी तरह-तरह के प्रश्न करते थे, वाद-विवाद भी करते थे, किंतु कभी भी उन्होंने शालीनता की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। किसी को भी कठोर वाणी से तनिक भी मर्माहत नहीं किया। हमारे साथ जब भी मत भिन्नता होती थी– (अधिकांश समय ही मतों का मेल नहीं होता था)– केवल हँसकर गर्दन हिलाकर अपनी आपत्ति दर्ज कराते थे। पर हम सबको सर्वाधिक अचंभे में डाल दिया समिति के तीसरे एवं सर्वाधिक चर्चित प्रतिनिधि गुरु गोलवलकर ने। उनके उग्र स्वभाव के संबंध में हजारों बातें सुनी थीं। हम सबकी उनके बारे में यही धारणा थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिष्ठापक व्यक्ति एक ओर अंधभक्ति और दूसरी ओर घोर आतंक के मध्यमणि हैं। पर वे सभी पुरानी धारणाएँ ध्वस्त कर दीं समिति के निःशब्दतम सदस्य गुरु गोलवलकर ने। अत्यंत आवश्यक हो तो ही वे बोलते थे। जब कुछ कहना अपरिहार्य लगता था, तब अत्यंत विनम्र शब्दों में अपनी बात रखते थे। यदि किसी का विचार या दृष्टिकोण उन्हें घोर नापसंद होता तो भी उनके व्यवहार पर उस बात का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता था। भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं के वे जानकार थे। वे मेरे साथ थोड़ी-बहुत बँगला बोल लेते थे। मेरे विचार, मेरा चिंतन निश्चित ही उनके लिए विष समान दहनकारी रहा होगा, पर

मेरे साथ उनके विनम्र व्यवहार में तनिक भी बदल नहीं आया। समिति की कार्यवाही में उन्होंने जब भी, जितना कुछ हिस्सा लिया, कभी भी अपनी वाणी में कठोरता का स्पर्श नहीं होने दिया। उनका व्यक्तित्व जगद्गुरु के पूर्णतः विपरीत था। मैं यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि गुरु गोलवलकर ने अपने आचरण से मुझे मोहित कर लिया था। किंतु उस समय क्या मैं जानता था कि मुझे मोहित करने के लिए और भी बहुत कुछ होना बाकी है?

समिति भंग होने के करीब एक वर्ष बाद मैं नई दिल्ली स्टेशन से एक दिन सायंकाल दक्षिण एक्सप्रेस या ऐसी ही किसी ट्रेन से शायद भोपाल जाने के लिए दो शायिकाओं (बर्थ) वाले कूपे में चढ़ा था। कुछ ही मिनट के बाद कूपे के सहयात्री आए। वे दूसरे-तीसरे कोई नहीं स्वयं गुरु गोलवलकर थे। झाँसी या कहीं जाना था उनको। उन्होंने देखते ही मुझे दृढ़ता के साथ आलिंगनबद्ध कर लिया। उनसे शरीर स्वास्थ्य के बारे में पूछा तथा थोड़ी-बहुत समिति की अधूरी रही कार्यवाही के बारे में जानकारी और देश की विभिन्न समस्याओं के बारे में चर्चा की। गोलवलकर विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। मैं उम्र में उनसे छोटा था, परिणत वयस्क ज्येष्ठ व्यक्ति से जितनी मात्रा में अपने समाज में उदार व्यवहार की अपेक्षा रहती है, उससे कई गुनी अधिक उदारतापूर्वक उन्होंने मुझ पर स्नेहवर्षण किया। ट्रेन चली। बाहर अँधेरा गहरा रहा था। बातचीत बंद कर मैंने अपने ब्रीफ केस से किताब या पत्रिका बाहर निकाली एवं बत्ती जलाकर पढ़ने बैठ गया। गुरु गोलवलकर ने भी पढ़ना चालू किया। मैं यह मानकर चल रहा था कि धर्म की उग्रतम ध्वजा के वाहक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रधान (मुखिया) या तो धर्म के किसी ग्रंथ या दर्शन की किसी जटिल पुस्तक को पढ़ने के लिए निकालेंगे। किंतु इस बार मेरे अचंभित होने की बारी थी। देखता हूँ कि वे अमरीका से हाल में प्रकाशित हेनरी मिलर का अद्यतन उपन्यास निकाल कर पढ़ने जा रहे हैं। और अधिक छिपाने से क्या लाभ? उसी क्षण गुरु गोलवलकर के बारे में मेरे मन में श्रद्धाभाव कई गुना वर्धित हुआ था। हो सकता है यह कहानी सबको बताने के अपराध में संघ का एकाध कट्टर स्वयंसेवक मुझे वधभूमि में पकड़कर ले जाने का निर्णय ले बैठे।

('आजकाल', कोलकाता, ६.६.१९९१, पृष्ठ ४; बँग्ला से अनूदित)

४. मेरा गुरु भाई

(स्वामी अमूर्तानंद, श्री गुरुजी के ज्येष्ठ गुरुभाई)

(स्वामी अमूर्तानंद जी महाराज का व्यावहारिक नाम अमिताभ मुखर्जी था। ब्रह्मचर्य दीक्षा के पश्चात् उन्हें श्री आनंद चैतन्य नाम दिया गया और संन्यास दीक्षा के पश्चात् वे स्वामी अमूर्तानंद कहलाए। परमश्रद्धेय स्वामी अखंडानंद जी महाराज, तृतीय अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ व मिशन के एक निजी सेवक के नाते श्री अमिताभ महाराज ने श्री बाबा की सारगाछी आश्रम में सन् १९१७ से १९२७ तक सब प्रकार की सेवा की थी। वे श्री गुरुजी के गुरुभाई थे)

पूज्यपाद स्वामी अखंडानंद जी को सारगाछी व उसके आसपास के लोग 'दंडीबाबा' के नाम से पुकारते थे और इसलिए आश्रमवासी भी उनको 'बाबा' कहकर संबोधित करते थे। उस समय रामकृष्ण मठ व मिशन के अध्यक्ष थे परमश्रद्धेय श्री शिवानंदजी महाराज और उपाध्यक्ष थे श्री बाबा। अनुशीलन समिति के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री प्रियदा महाराज (संन्यास दीक्षा के पश्चात् स्वामी आत्मप्रकाशानंद) रामकृष्ण मठ व मिशन के विश्वस्तों में से एक थे तथा बेलूड़ मठ के व्यवस्थापक थे। अनुशीलन समिति के श्री त्रैलोक्यनाथ महाराज तथा अन्यान्य कार्यकर्ताओं का मठ में नित्य आना जाना था, संपर्क भी था। अनुशीलन समिति के बहुत से कार्यकर्ता श्री रामकृष्ण मिशन के सदस्य बन गए थे। इसी संबंध से हेडगेवार जी भी मठ में आते थे। दामोदर नदी के महापूर में बाढ़ग्रस्त लोगों की सेवा करने का काम रामकृष्ण मिशन की ओर से आयोजित किया गया था। उसमें हेडगेवार जी ने खूब लगन व परिश्रम से काम किया था। उनके शुद्ध राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत तथा समर्पित जीवन के विषय में श्री बाबा जानते थे। उनका सद्‌गुणसंपन्न पवित्र जीवन उन्हें ज्ञात था।

सन् १९२७ में मेरा स्वास्थ खराब हुआ। सूखी जलवायु में मेरा स्वास्थ्य ठीक रहेगा ऐसा सोचकर परम श्रद्धेय श्री शिवानंदजी महाराज ने मुझे कोलकाता बुलाकर वहाँ से नागपुर भेजा। सन् १९२७ से मैं नागपुर रहने लगा और आश्रम में काम देखने लगा।

सन् १९३४ की बात है। तब तक धंतोली स्थित रामकृष्ण आश्रम में बुद्धिमान किंतु गरीब विद्यार्थियों के लिए एक छात्रावास प्रारंभ हो चुका

था। एक दिन मैंने देखा कि एक युवक अन्यमनस्क सा श्री ठाकुर के मंदिर के सम्मुख बहुत देर से खड़ा है। वह विधि पढ़ता था, परंतु बहुत गरीब था। उससे मैंने कहा कि रहने तथा भोजन का अच्छा प्रबंध आश्रम के छात्रावास में हो जाएगा। वह छात्रावास में रहने लगा। उसका नाम था श्री रघुवीर धोंगड़ी। उसके साथ ही माधवराव गोळवलकर एक दिन आश्रम में पहुँचे। यह था माधवराव का आश्रम से प्रथम परिचय। इसके पश्चात् माधवराव अपने मित्रों के साथ आश्रम में आने-जाने लगे। नागपुर आश्रम के अध्यक्ष भास्करेश्वरानंदजी उस समय अधिक काल कोलकाता में श्री विवेकानंद सोसायटी में रहते थे। जब वे नागपुर में रहते थे, तब माधवराव का उनसे वार्तालाप हुआ करता था। जब वे नागपुर में नहीं रहते थे तब श्री माधवराव, श्री रघुवीर घोंगड़ी, सावलाराम आदि मित्रों के साथ मुझसे वार्तालाप किया करते थे। ये वार्तालाप की बैठकें रात में भी हुआ करती थीं। बाँसुरी-वादन, भजन, संगीत आदि बहुत आनंदपूर्वक चलता था। कभी-कभी बहुत रात हो जाती थी तो सभी मित्र आश्रम में ही सो जाया करते थे। ऐसा क्रम उस कालखंड में चलता रहा।

सन् १९३६ की बात है। श्री माधवराव जी नियमित रूप से आया करते थे। आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य, आत्मोन्नति की अंतिम अवस्था के विषय में श्री माधवराव की उत्कंठा बढ़ रही थी। श्रद्धेय श्री भास्करेश्वरानंद जी से अनेक बार वार्तालाप भी हुआ था। उन्होंने माधवराव को मुझसे मिलकर बातचीत करने के लिए कहा। फरवरी मास में एक दिन दोपहर माधवराव मेरी कुटिया में आए। मैं हिसाब का काम कर रहा था।

वे कहने लगे, 'महाराज, स्वामी भास्करेश्वरानंद जी ने मुझे आपके पास भेजा है। मैंने उनसे पूछा था कि क्या वे समाधि अवस्था में नित्य रममाण तथा आध्यात्मिक स्तर पर जीवन्मुक्त महापुरुष के पास मुझे भेज सकते हैं? उन्होंने मुझे आपसे बातचीत करने के लिए कहा है।'

मैंने कहा, 'भाई मधु, उसके लिए तुमको सब कुछ छोड़ना पड़ेगा। कीर्ति, प्रतिष्ठा, घर-द्वार सब कुछ। तुम इसके लिए तैयार हो क्या?'

मधु ने तत्काल स्पष्ट उत्तर दिया, 'हाँ, मैं सब कुछ छोड़ने को तैयार हूँ।'

विचार-विनिमय हुआ। परम श्रद्धेय श्री अखंडानंदजी महाराज से मार्गदर्शन एवं दीक्षा प्राप्ति के विषय में बातचीत हुई। मैंने कहा, 'मैं

सारगाछी पत्र भेजता हूँ और बाबा का उत्तर आने के पश्चात् तुमको सूचित करूँगा। पर यह बात किसी से कहना नहीं।'

श्री बाबा को सारगाछी पत्र लिखकर अनुमति माँगी। आठ दिनों के पश्चात् श्री बाबा की अनुमति प्राप्त हुई और मधु का सारगाछी जाना निश्चित हुआ।

मैंने कहा, 'जल्दी योजना बनाकर जाना चाहिए। कोलकाता में, बेलूड़ में न रुकते हुए सीधे सारगाछी चले जाना।'

मधु उसी दिन प्रस्थान कर तीन दिनों बाद सारगाछी पहुँच गए।

दो मास के पश्चात् मैंने श्रीमत् बाबा को सारगाछी पत्र लिखकर पूछा कि माधवराव सदाशिवराव गोवलकर कैसे हैं?'

श्रीमत् बाबा लिखते हैं, गोवलकर* मेरी सेवा करता है। उसका स्वास्थ्य अच्छा है। मैंने उससे कह दिया है कि 'जब तुम मेरे पास मुझे गुरु बनाने के लिए आए हो तो तुम अच्छी तरह से मुझे परख लो और मैं भी जो मेरा शिष्य बनने के लिए आया है, उसे अच्छी तरह से परख लूँगा।'

कुछ दिन के पश्चात् श्रीमत् स्वामी अखंडानंदजी ने मुझे पत्र भेजकर अपने पास रहने तथा सेवा करने के लिए नागपुर से सारगाछी आने का आदेश दिया। श्रीमत् बाबा का स्वास्थ्य खराब था, इसलिए उन्होंने अपने अति निकट के शिष्यों को वहाँ बुलाया था। मैं तुरंत ही सारगाछी गया। आश्रम में पहुँचने के पश्चात् मैंने श्रीमत् बाबा को साष्टांग प्रणिपात किया। बाबा बहुत प्रसन्न हुए। उनके पास ही मधु खड़ा था। मधु भी प्रसन्न था।

श्रीमत् बाबा मुझसे बोले, 'यह देखो तुम्हारा गोवलकर। अच्छा है न?'

मैंने कहा, 'आपकी कृपा से अच्छा ही होगा।'

उसी दिन संध्या के समय जब मैं श्रीमत् बाबा से मिला तो उन्होंने मुझे आदेश दिया कि 'नागपुर जाने के पूर्व तुम आश्रम में जो काम करते थे, उसी काम को आज से प्रारंभ कर दो, अर्थात् श्री ठाकुर की पूजा तथा मेरी सेवा।'

---

* स्वामी अखंडानन्द जी श्री गुरुजी का उपनाम गोलवलकर के स्थान पर गोवलकर का उच्चारण करते थे।

नागपुर से चलते समय की मधु की स्थिति और इस समय की स्थिति में मैंने बहुत अंतर देखा। महासागर जैसी शांत मुखछवि तथा अतिशय नम्र, विनयपूर्ण व मधुर व्यवहार। उसी समय मेरे मन को लगा कि मधु की तपस्या सफल हो रही है। मधु से वार्तालाप करते हुए मुझे ज्ञात हुआ कि सारगाछी आश्रम के कठोर जीवन के कारण मधु के शरीर और मन पर कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ है और मधु बहुत प्रसन्न है।

मधु मुझे कहने लगा, 'यदि ऐसा ही चलता रहा तो संपूर्ण जीवन यहाँ रह सकता हूँ।'

तब मैंने मधु से पूछा, 'क्या दीक्षा हो गई है?'

मधु ने उत्तर दिया, 'अभी नहीं।'

मधु के प्रत्येक व्यवहार की परख बहुत गहराई से श्रीमत् बाबा कर रहे थे। शिष्य की कठोर परीक्षा चल रही थी। आसन लगाकर घंटों बैठने को श्रीमत् बाबा कहा करते थे और मधु आसन जमाकर बैठ जाता था। कभी-कभी ऐसे आसन में बैठे मधु को मैंने देखा है। हिमालय के परम पावन परिसर में जाकर एकांतवास में रहने की अति प्रबल इच्छा मधु के मन में जमी थी।

मधु अत्यधिक भक्तिभाव से एवं देहभान भूलकर तन्मय हो श्री बाबा की सेवा कर रहा था। रात्रि को एक-डेढ़ बजे तक गुरुसेवा किया करता और प्रातः ४ बजे गुरु जब शय्या से उठते थे तो उनका पैर जमीन पर आने के पूर्व ही उनकी खड़ाऊ लेकर सामने उपस्थित रहता। मानो शिष्य की कठोर परीक्षा चल रही थी। एक दिन श्रीमत् बाबा ने मधु को बुलाया और उसके आने पर उसे खड़े रहने के लिए कहा। घंटा बीत गया, किंतु न उसे कोई काम बताया और न उसको जाने के लिए कहा। मधु उसी स्थान पर निश्चल खड़ा रहा। मैंने श्रीमत् बाबा का ध्यान जब उसकी ओर आकर्षित किया, तब उन्होने कहा, 'हाँ, मैंने ही उसे वहाँ खड़े रहने के लिए कहा है।'

श्रीमत् बाबा द्वारा यह परीक्षा ली जा रही थी।

दिसंबर १६३६ के मध्य में नित्य क्रम के अनुसार मैं एक दिन श्रीमत् बाबा की सेवा करने के लिए 'विनोद कुटी' में गया तो जाते समय देखा कि मधु स्वामी सर्वानंदजी लिखित 'कठोपनिषद्' पढ़ रहा है। मैंने

उससे पूछा कि 'यहाँ तुम्हारी रात कैसी बीतती है? नींद लगती है?'

मधु ने उत्तर दिया, 'श्रीमत् बाबा का आदेश है कि रात में निद्रा कम लेकर साधना करना अच्छा है।'

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और श्रीमत् बाबा के कमरे में जाकर उनकी सेवा करने लगा। पैर दबाते समय मैंने श्री बाबा से पूछा, 'आपकी सेवा मधु कैसी करता है?'

श्री बाबा बोले, 'मधु का भक्तिभाव, उसका कर्म करने का कौशल्य व श्रद्धा अपूर्व है।'

बाद में वे पूछने लगे, 'गोवलकर क्या करता है?'

मैंने कहा, 'अपने कमरे में कठोपनिषद् पढ़ रहा था।'

'देखो, वह इस समय क्या कर रहा है? और उसको यहाँ बुलाओ।' श्री बाबा ने आदेश दिया। मैं बाहर गया और वापस आकर कहने लगा की मधु ध्यान कर रहा है।

श्री बाबा ने उसको बुलाने के लिए फिर से कहा। मधु को बुलाया गया। मधु आया और प्रणाम कर श्री बाबा के पास खड़ा रहा। श्री बाबा ने पूछा, 'गोवलकर, तुम कैसे हो?'

'बाबा, मैं अच्छा हूँ।' मधु का उत्तर आया।

फिर श्रीमत् बाबा की वाणी से शब्द निकले– 'सेवा करना बहुत कठिन काम है। सेवा करते समय तुमको यह नहीं सोचना चाहिए कि तुम किसी व्यक्ति विशेष की सेवा कर रहे हो। तुम्हारा सर्व कर्म ईश्वर को समर्पित होना चाहिए।'

'सेवाधर्मो परम गहनो यो मुनीनामपि अगम्यः।।'

'कोई भी सेवा हो– जनसेवा, व्यक्तिसेवा, आतुरसेवा, समाजसेवा सेवा– करते समय अपनी प्रतिष्ठा बढ़े इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए।' श्री गुरुमहाराजजी हम सभी के सामने 'प्रतिष्ठाशूकरविष्ठा' ऐसा कहकर हाथ में थूकते थे और बोलते थे कि 'प्रतिष्ठा का ध्यान रखने के कारण भ्रष्ट होने की संभावना होती है। इसके ऊपर तुम खूब विचार करो।'

'तुम्हारे जीवन में कोई कठिनाई आए तो श्रीकृष्ण के जीवन का सम्पूर्ण रीति से ध्यान करो। कोई भी कठिनाई आई तो अपने को निस्सहाय

मत समझना। सभी अवस्था में श्रीठाकुर तुम्हारे साथ रहेंगे। यही तुम्हारा ध्यान और तुम्हारी तपस्या है। श्री माँ जगदम्बा की कृपा से तुमको अपूर्व उपलब्धि होगी।'

मैं यह सब सुन रहा था। मधु निस्तब्ध होकर श्रीमत् बाबा का यह उपदेशामृत मानो सारे शरीर का पात्र बनाकर प्राशन कर रहा था। वह उस उपदेश को अपने जीवन के अमूल्य मार्गदर्शन के रूप में ग्रहण कर रहा था। यथेच्छ भोजन के पश्चात् जैसी संतुष्ट मुद्रा होती है, वैसी मधु की मुद्रा थी। फिर श्रीमत् बाबा बोले, 'जाओ, मैंने अभी जो कहा उस विषय में चिंतन करो।'

जनवरी मास के पहले सप्ताह में मैं श्रीमत् बाबा से बोला, 'मधु को दीक्षा देकर नागपुर भेजना चाहिए। इससे उसे माता-पिता की सेवा तथा अपना व्यवसाय करने में सुविधा होगी।'

श्रीमत् बाबा सुन रहे थे। बाद में बोले– 'दीक्षा देने का समय अभी नहीं आया। यह तो श्रीठाकुर जी से पूछने के बाद दूँगा। परंतु मधु नागपुर जाकर अपने व्यवसाय में लग जाएगा, यह कौन कह सकता है?'

मेरा सारगाछी आश्रम में रहने का समय पूर्ण हो चुका था। इसलिए मैं जब श्रीमत् बाबा, 'से नागपुर जाने की अनुमति लेने पहुँचा तो वे बोले, 'मेरा शरीर अब बहुत दिन रहनेवाला नहीं है। तू मेरा पुराना शिष्य होने के कारण आश्रम की सीमा के बाहर मत जाना।' मैं अपने गुरु की इच्छा को समझकर पूर्णरूपेण उनकी सेवा में लग गया। श्रीमत् बाबा की अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। बरहमपूर के अनेक गणमान्य डाक्टर वहाँ आकर उनकी चिकित्सा कर रहे थे। किंतु स्थिति सुधरने की अपेक्षा गिरती ही जा रही थी। उन्हें कोलकाता ले जाने की बात चलने लगी।

मकर संक्रांति के चार दिन पूर्व मैंने श्रीमत् बाबा से मधु की दीक्षा के संबंध में पूछा। श्री बाबा ने उत्तर दिया, 'शीघ्र ही मुहूर्त आएगा और दीक्षा दूँगा।'

१२ जनवरी १९३७ के दिन संध्या को श्रीमत् बाबा मुझसे कहने लगे, 'गोवलकर की दीक्षा कल मकर संक्रांति के मुहूर्त पर दी जाए, ऐसी ठाकुर जी की इच्छा है।'

मकर संक्रांति के दिन प्रातः काल मैं जब श्री ठाकुर की पूजा कर

रहा था, तो प्रसन्नवदन मधु वहाँ पहुँचा। मेरे पास आकर मुझे प्रणाम करना चाहा। मैं समझ गया कि दीक्षा हो गई है, किंतु श्री ठाकुर के सामने स्वयं को प्रणाम करने से मैंने मधु को मना कर दिया। मैं श्री ठाकुर जी का प्रसाद देने के लिए जब श्रीमत् बाबा के पास पहुँचा तो उन्होंने बताया, 'ठाकुर जी के आदेश से मधु की दीक्षा हो गई है। किंतु उसे आश्रम में मत रखना। उसका कार्य आश्रम के बाहर है। उसकी वृत्ति समाधि की ओर है। आश्रम में रहेगा तो उसी ओर जाएगा। जब-जब कोई कठिनाई आए, तो उसे परामर्श देते रहना।'

दीक्षा हो जाने पर एक बार मैंने श्रीमत् बाबा से पूछा, 'मधु की हिमालय जाने की इच्छा अतिशय प्रबल है। परंतु उसको नागपुर जाकर माता-पिता के पास पहुँचाना पड़ेगा। आगे कैसा करना उचित होगा?'

श्रीमत् बाबा बोले, 'ऐसा लगता है कि यह डाक्टर हेडगेवार जी के साथ रहकर काम करेगा। शुद्ध भाव से समाजसेवा में, लोक भगवान की सेवा में अखंडरत– ऐसा कर्ममय जीवन इसका होगा। हिमालय जाने की इच्छा कभी प्रबल हो उठेगी, तब ध्यान रखना। बद्रिकाश्रम आदि स्थानों पर जाकर चाहे तो हिमालय का दर्शन अवश्य करे, परंतु एकांतवास में रहने से उसको परावृत्त करना पड़ेगा। तुम्हीं को यह काम करना होगा।'

इसी अवसर पर मैंने डाक्टरों का उन्हें कोलकाता ले जाने का विचार बताया। श्रीमत् बाबा ने उसकी अनावश्यकता प्रकट की, किंतु अनुमति दे दी। साथ में कौन-कौन चलेगा, यह भी पूछ लिया।

थोड़ी देर बाद श्रीमत् बाबा अष्टमहाविद्या का वर्णन करने लगे। उस समय उनके हावभाव देखकर मैंने मधु को बुलाया और कहा, 'देख, समाधि कैसी होती है, अच्छी तरह देख ले।'

मैंने श्रीमत् बाबा का हाथ मधु के हाथ में देकर कहा कि इनकी अंगुलियाँ दबाओ, उनकी चिमटी काटो। किंतु यह सब करने पर भी देहभान से परे हुए श्रीमत् बाबा पर कोई परिणाम परिलक्षित नहीं हुआ और देवी के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार चलता रहा कि साक्षात् देवी को सामने खड़ी देख रहे हों।

सब व्यवस्था करके श्रीमत् बाबा को कोलकाता लाया गया और चिकित्सालय में आवश्यक जाँच आदि होने के पश्चात उन्हें जब बेलूड़ मठ में लाया गया, तब प्रभात के तीन बजे थे। उनकी दशा गंभीर होती गई

और ७ फरवरी १९३७ को दोपहर श्रीमत् बाबा महासमाधिस्थ हो गए। रामकृष्ण आश्रम के अनेक संन्यासी, स्वामी अभेदानंद आदि बाबा के गुरुबंधु तथा सहस्रों भक्तजन बेलूड़ मठ में एकत्र हो गए थे। अति विशाल शवयात्रा के पश्चात् उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया गया। रात्रि के समय स्वामी अखंडानंदजी के गुरुबंधुओं के समीप अनेक आश्रमवासी एकत्रित होकर श्रीमत् स्वामीजी के दिव्य गुणों का जब स्मरण कर रहे थे, तब मेरी दृष्टि अपने मधु को ढूँढ रही थी। तुरंत मुझे कुछ स्मरण आया और मैं गंगातट की ओर उसी जगह के लिए चल पड़ा, जहाँ श्रीमत् बाबा का दाहसंस्कार हुआ था। वहाँ मधु चिता में से फूल चुन रहा था। मैं समझा-बुझाकर साथ लाया, किंतु कुछ पवित्र अस्थियों को अत्यंत पवित्र धरोहर समझकर वह अपने साथ ले आया।

तत्पश्चात् तेरह दिन बेलूड़ मठ में ही चर्चा एवं भविष्य की योजनाओं के संबंध में विचार-विमर्श में बीते। मैं मधु को श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी अभेदानंदजी, स्वामी विवेकानंद के मँझले भाई श्री उपेंद्रनाथ दत्त और श्री रामकृष्ण देव के समय के परिचित सभी के पास दर्शन हेतु ले गया। स्वामी अभेदानंद जी मधु को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने एक चित्र पर हस्ताक्षर कर उसे देते हुए कहा, 'स्वास्थ्य अच्छा रहा तो एक बार नागपुर आऊँगा।'

उन्होने मधु के संबंध में मत प्रकट करते हुए कहा, 'तुम त्यागी के समान जीवनयापन करोगे।'

मधु के छुटपन के एक सहपाठी ने, जो सारगाछी आश्रम में रहते थे, बेलूड़ मठ में रहने का निश्चय प्रकट किया। मधु ने भी वही मन्तव्य प्रकट किया। तब मैंने उन्हें अलग ले जाकर कहा कि तुम्हें रामकृष्ण आश्रम में नहीं रहना है।'

मधु ने चौंककर कहा, 'आप सच कह रहे हैं? आपको कैसे मालूम हुआ?'

मैंने श्रीमत् बाबा से हुआ वार्तालाप बता दिया।

मधु ने कहा, 'मुझे भी गुरुदेव ने यही आदेश दिया और यह भी कहा कि जब भी कोई कठिनाई आए, मैं आपसे परामर्श लिया करूँ। अब आपकी मेरे बारे में क्या योजना है?'

मैंने कहा कि 'मैं तुमको जहाँ से लाया हूँ, वहाँ ले जाकर सौंप दूँगा।'

मधु को साथ लेकर मैं नागपुर लौटा। मास भर रामकृष्ण आश्रम में रखकर स्वामी विवेकानंद के शिकागो व्याख्यान का मराठी अनुवाद कराया, मानो परम श्रद्धेय बाबाजी के द्वारा प्राप्त हुई दीक्षा की यह गुरुदक्षिणा थी। तत्पश्चात् मधु के मामा को बुलवाकर उनसे मैंने कहा कि वे उनको डाक्टर हेडगेवार के पास पहुँचा दें।' और इस तरह डाक्टर साहब को भावी सरसंघचालक की उपलब्धि हो गई।

'सन् १९४० के पश्चात् मैं लगभग चार साल उत्तराखंड की यात्रा में व्यस्त था। कश्मीर से लेकर बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री, कैलाश, मानसरोवर आदि हिमालय की गोद में बसे तीर्थस्थलों की यात्रा कर कोलकाता वापस आया और बेलूड़ मठ में रहने लगा। कोलकाता के संघ के कार्यकर्ता मुझसे नित्य मिलते रहे। मेरा उनसे अत्यंत घनिष्ठ परिचय हो गया था। ३० जनवरी १९४८ को बेलूड़ मठ के पास लगे एक संघ के शिविर को देखने के लिए मैं संघ के कार्यकर्ताओं के साथ गया था। शाम को लौटते समय महात्माजी की हत्या की वार्ता प्रसारित हो रही थी। मुझे कारावास में ले जाने की इच्छा से पुलिस बेलूड़ मठ से संलग्न एक मेडिकल अस्पताल में, जो रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित था और जहाँ मैं काम करता था, पहुँची। सरकार की संघ के विषय में दमननीति का रुख देखकर मुझे लगा कि इससे बेलूड़ मठ को तकलीफ होगी। वह न हो इसलिए मैंने रामकृष्ण मठ और मिशन के जनरल सेक्रेटरी श्री माधवानंद जी महाराज से विचार-विमर्श कर बेलूड़ छोड़कर चेन्नै प्रस्थान किया।

चेन्नै से लंका, इंडोनेशिया, थाइलैंड, बर्मा, मलाया आदि स्थानों पर भ्रमण करता रहा। जब मैं सिंगापुर में था। तब वृत्त-पत्रों से समाचार मिला कि संघ पर की पाबंदी हट गई है और श्री गुरुजी (मधु) का भारतवर्ष में भ्रमण चल रहा है व स्थान-स्थान पर उनका स्वागत हो रहा है। श्री गुरुजी का कार्यक्रम जब मैसूर में था, तब मैं भी चेन्नै होते हुए बंगलौर पहुँचा। वहाँ से मैसूर गया व श्री गुरुजी से लगभग १२-१३ वर्षों के बाद मिला। उसके पश्चात् मेरा श्री गुरुजी से नित्य संपर्क रहा।

सन् १९६२ में अप्रैल ५ को वर्ष प्रतिपदा का पर्व था। पूजनीय डाक्टर जी के स्मृति मंदिर के उद्घाटन का कार्यक्रम था। श्री गुरुजी की इच्छानुरूप मैं नागपुर आया था। गुरुजी की माता श्री ताई का स्वास्थ्य बहुत क्षीण हो गया था। परंतु उनकी स्वाभाविक रूप से इच्छा थी की स्मृति मंदिर और पूजनीय डाक्टर जी का समाधिस्थल देखें। मातुःश्री ताई की

इच्छा पूरी हो जाना चाहिए ऐसा मुझे लगा। श्री गुरुजी को भी मेरा विचार अच्छा लगा और व्यवस्था करके ताई को स्मृति मंदिर का सुबह का कार्यक्रम कुर्सी पर पड़े-पड़े देखने का आनंद प्राप्त हुआ। उससे ताई को बहुत समाधान मिला।

कुछ दिनों पश्चात् ताई का देहावसान हो गया। प्रखर विरक्ति से गुरुजी का हृदय भर गया व हिमालय के पवित्र परिसर में जाकर एकांतवास करने की तीव्र इच्छा उनके मन में जाग उठी। मुझे श्री बाबा ने सारगाछी में जो कहा था, वह स्मरण हो आया। मैंने गुरुजी को परावृत्त करते हुए कहा अभी संघ का कार्य पूर्ण नहीं हुआ है। अपना कार्य करने के लिए अभी तो कार्यालय में जो अपना छोटा-सा कमरा है, वहीं हमें चलना चाहिए। हिमालय में जाने की अपेक्षा साधना के लिए शेष जीवन तक अपना वह कमरा ही अच्छा है। मैं भी तो कार्यालय में रहता हूँ। वही चलें।'

२२-२३ फरवरी १९७३ को बालाघाट में डा. देवरस जी की सुपुत्री के विवाह में उपस्थित रहने के लिए गुरुजी ने मुझे कहा था। मैं उस विवाह में उपस्थित था। गुरुजी और मेरी एक ही कमरे में रहने की व्यवस्था थी। उन दो दिनों में हमारा दिल खोलकर वार्तालाप हुआ। अपना शरीर अब अधिक काल तक साथ नहीं देगा इसकी बहुत स्पष्ट कल्पना गुरुजी को थी। बहुत साफ शब्दों में यह उन्होंने कहा था। उनके साथ की पूजा की पवित्र वस्तुएँ, पुणे में जहाँ उनके कुलदेवता की उपासना चलती है, वहाँ श्री वासुदेवराव गोळवलकर के पास भेजने का विचार मैंने उनसे कहा। उनको यह विचार जँच गया। वे तुरंत मान गए और उसी प्रकार उन वस्तुओं की व्यवस्था की।

आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत उच्च कोटि के अधिकारी परम श्रद्धेय अखंडानंद जी और भारत माता तथा उसकी कोटि-कोटि संतानों की निरपेक्ष सेवा में रत श्रेष्ठ कर्मयोगी परम पूजनीय डाक्टर जी– इन दोनों का अलौकिक मार्गदर्शन तथा आधार श्री गुरुजी के संपूर्ण जीवन में स्पष्ट रूप से दिखता है।

स्वामी विवेकानंद जी की उस उक्ति की याद आती है 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथिदेवो भव के साथ आर्तदेवो भव, दरिद्रदेवो भव'। इस भाव से समाज के प्रत्येक मनुष्य के पास जाना चाहिए, उसकी परमेश्वरभाव से पूजा करनी चाहिए।' श्री गुरुजी ने अपने जीवन में इस विचार को पूर्णरूपेण चरितार्थ किया। आध्यात्मिक क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ आधार

बनाकर उन्होंने संपूर्ण समाज की 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद्' इस परमेश्वर भाव से पूजा की और इसी भाव से 'समाज को उपास्य देवता मानकर संघ का कार्य करो' ऐसा मौलिक विचार उन्होंने स्वयंसेवकों को प्रदान किया।

(१४ जनवरी १९७५, मकरसंक्रांति)

५. जीवन संध्या

(डा. आबाजी थत्ते, श्री गुरुजी के निजी सचिव)

अगस्त १९६९ में मैं अपने स्वयं के स्वास्थ्य के कारणों से पूजनीय श्री गुरुजी के साथ प्रवास पर नहीं गया था। उस समय उनका प्रवास कारवार जिले में था। वे सिरसी नामक स्थान पर थे। वहाँ विश्रांति के लिए वे रुके थे। जब मैं वहाँ पहुँचा उनका मुकाम समाप्त हो रहा था। उनके सीने पर लेप लगा देख मैंने पूछा 'यह लेप किस लिए लगाया?' उन्होंने बताया 'छोटी-सी गाँठ है। एक पुराना दोस्त मिल गया, सो उसे गले लगा लिया। मेरा फाऊंटेन पेन गाँठ पर दबने से खूब वेदना हुई। इसलिए लेप लगाया।'

मैंने उस समय वह गाँठ नहीं देखी। नागपुर लौटने पर डाक्टरों ने उसपर कुछ औषधियाँ दीं। गाँठ छोटी-सी थी। सन् १९६४-६५ में ऐसी ही एक छोटी-सी गाँठ उनकी पीठ पर आई थी। होम्योपैथी की औषधियों से वह ठीक हो गई थी। ऐसा लगा यह भी ठीक हो जाएगी। परंतु ३ मई १९७० के आसपास एक दिन उन्होंने कहा, 'बगल में गाँठ है, ऐसा लगता है।' उसे देखने के बाद लगा यह मामला कुछ ठीक नहीं। बात कुछ सरल सी नहीं लगती। कुछ दिनों बाद वे पुणे जानेवाले थे। पुणे में डा. नामजोशी ने परीक्षण किया। तत्काल उन्होंने कहा, 'यह कैन्सर है, ऐसी आशंका है। जाँच होनी चाहिए।'

प्रारंभ में होम्योपैथी की औषधियाँ चल रही थीं और प्रवास भी चल रहा था।

१८ मई १९७० की रात्रि को मुंबई में डा. श्रीखंडे और डा. फड़के ने उनकी जाँच की। उन्होंने भी कहा 'कैन्सर होगा, ऐसा लगता है।' श्री गुरुजी ने उन्हें अत्यंत स्पष्ट रूप से कहा बायोप्सी नहीं होगी। पूर्णरूप से

ही काटिए, पर मुझे अभी समय नहीं। प्रवास समाप्त होते, ही मैं आऊँगा, फिर आपरेशन करें।'

२८ जून १९७० को प्रवास समाप्त हुआ। हम मुंबई पहुँचे। २९ जून को परीक्षण हुआ और ३० जून को उन्हें टाटा रुग्णालय में भरती किया गया। १ जुलाई को गाँठ काटकर उसका परीक्षण किया गया।

१० मिनट में ही निष्कर्ष निकला कि कैन्सर है। डाक्टरों ने पूर्णरूप से जितनी गाँठें निकालनी थी निकालीं। शस्त्रक्रिया बहुत सफल रही। जख्म भरने की प्रक्रिया भी वेग से हुई। टाँके निकालने के बाद डीप एक्सरे देने का निश्चय किया गया। उसी रुग्णालय में सीने और पीठ पर डीप एक्सरे दिया गया।

अब श्री गुरुजी को कुछ नहीं होगा, इस विश्वास के साथ २६ जुलाई को हम मुंबई के रुग्णालय से लौटे।

कुछ दिनों तक मुंबई में रहने के बाद, श्री गुरुजी नागपुर लौटे। यहाँ ड्रेसिंग आदि चलता रहा। चेकअप के लिए पुनः मुंबई हो आए। वह अगस्त का तीसरा सप्ताह था। एक दिन प्रार्थना करते-करते मुंबई में ही उन्हें चक्कर आया। वे मूर्च्छित हो गए। लौटने पर पता चला कि उनकी बगल से पानी और पस निकल रहा है। वहाँ एक छिद्र-सा भी हो गया था। इसे रेडियो नेक्रॉटिक अल्सर कहते हैं। उस जख्म पर उपचार किए गए और वह भर गया। नागपुर आने पर श्री जनार्दन स्वामी ने एक तेल दिया। उस तेल से जख्म तीन माह में भर गया।

प्रवास फिर भी चल ही रहा था। अक्तूबर के बाद तो उनका स्वास्थ्य सामान्य हो गया था। केवल बाएँ हाथ पर सूजन थी। शस्त्रक्रिया की सफलता की वह निशानी थी और यह सूजन अंत तक कायम रही।

सन् १९७१ में विशेष कुछ नहीं हुआ। १९७२ का पूर्वार्ध भी ठीक रहा। सितंबर १९७२ में उनको कंधे पर गाँठ दिखाई दी। उस समय वे जयपुर में थे। एक दिन उन्हें तेज बुखार हो आया। उनके जीवन की यह पहली घटना थी कि वे बुखार में स्वयं पर संतुलन नहीं रख सके। बैठक में उनके बोलने में असंबद्धता आने लगी। अंत में बैठक रोक दी। तीन घंटों में ही वे पूर्ववत हो गए।

२०-२१ अक्तूबर को टाटा रुग्णालय में पुनः परीक्षण हुआ। १० दिनों तक डीप एक्सरे दिया गया। ११ नवंबर के करीब नागपुर लौटने पर

दो-तीन सप्ताह उन्हें गले में बहुत कष्ट हुआ। निगलने में, बोलने में कष्ट होने लगा। डा. जायस्वाल ने उनका परीक्षण किया। बाद में दिसम्बर अंत तक वे विश्रांति के लिए, इंदौर गए।

वर्ष में दो बार श्री गुरुजी का भारत भ्रमण होता था। सन् १९७३ का उनका प्रवास २९-३०-३१ दिसंबर १९७२ से अहमदाबाद से प्रारंभ हुआ। उस समय यह कल्पना भी नहीं थी कि यह उनका अंतिम प्रवास होगा। १४ मार्च को राँची में प्रवास समाप्त हुआ। मार्च के प्रथम सप्ताह से उन्हें थकान अनुभव हो रही थी। पर वह प्रवास की थकान होगी, ऐसा लगा। थकान बढ़ रही थी। १६ मार्च को नागपुर में एक्सरे लिया गया। मैं उन्हे मुंबई ले गया। डाक्टरों ने मत व्यक्त किया कि रोग फेफड़ों में प्रवेश कर गया है। उन्होंने कुछ इंजेक्शन भी दिए।

२२ मार्च १९७३ को नागपुर में अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक चल रही थी। श्री गुरुजी को साँस लेने में बहुत कष्ट हो रहा था। स्वास्थ्य इतनी गंभीर स्थिति पर पहुँचा कि भय हुआ कि अमावस्या बीतेगी या नहीं। ३०-३१ मार्च तक इंजेक्शन दिए। इसके बाद पं. रामनारायणजी शास्त्री के उपचार प्रारंभ हुए। प्रातः ५.३० से रात्रि को सोते तक भाँति-भाँति की औषधियाँ दी जाती थीं। १ अप्रैल के बाद स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा। ४ अप्रैल के बाद तो खतरा टल गया, ऐसा लगा। १०-११ अप्रैल तक वे पूर्णतः सामान्य हो गए। साँस लेने में कष्ट अब भी था, पर विशेष नहीं था। १०-११ अप्रैल से २५-२६ मई तक का काल बहुत अच्छा बीता। २७ मई को कोलकाता के चेस्ट स्पेशलिस्ट डा. कराई नागपुर आए। उन्होंने जाँच की। फिजिकल फाईंडिंग्ज और साँस लगना डिसप्रपोर्शनेट है, यह निष्कर्ष उन्होंने निकाला। एक्सरे से भी इस बात का ज्ञान नहीं हो रहा था कि साँस क्यों लगता है? यही नहीं तो ३० अप्रैल को जो एक्सरे निकाला गया, वह अच्छा था। २६ मई का तो उससे भी अच्छा था। इंजेक्शन जारी थे। ३ जून को पं. रामनारायण शास्त्री आए। बाकी के लक्षणों से उन्हें कुछ गंभीर बात नहीं लगी। उन्होंने इतना ही कहा– 'साँस क्यों लगता है, समझ में नहीं आ रहा।' औषधियों से साँस कम होगा, यह आशा व्यक्त कर वे ४ जून को इंदौर लौटे। आखिर वह भीषण दिन भी आया। ५ जून १९७३; एक अत्यंत दुर्दैवी, क्रूर दिवस! प्रातः से ही पूजनीय गुरुजी को साँस बेहद कष्ट दे रहा था। मैंने कहा भी। इस पर उन्होंने कहा– ऐसा लगता है, आखिरी घंटी बज रही है।'

मैंने समझाते हुए कहा– 'पिछली बार भी ऐसा कष्ट हुआ था, पर फिर ठीक हो गया था।'

किंतु विधिलिखित अलग ही था। औषधियाँ चल रही थीं। भोजन के समय उन्होंने कहा– 'थोड़ा-सा ही दो।' क्योंकि खाते समय भी कष्ट हो रहा था। आखिर के दो-तीन दिन उन्हें आमरस देना शुरू किया था। पर उस दिन रस भी थोड़ा ही लिया। दो-तीन दिनों से उन्होंने भोजन बहुत कम कर दिया था।

५ जून को दोपहर पौने तीन बजे आधा कप दूध लिया। साढ़े तीन बजे एक घूँट चाय पी। ६ बजे पुनः दूध के लिए कहा तो बोले– 'सच पूछो तो नहीं चाहिए, पर लाए हो, तो दे दो।'

इसी बीच डाक्टरों को बुलवा लिया था। उन्होंने कुछ इंजेक्शन दिए। सायं ७ बजे के करीब वे प्रार्थना में आने के लिए कहने लगे। वेदनाएँ हो रही थीं। तब मैंने उनसे कहा आप अपने कमरे में ही रहिए। इस पर उन्होंने पूछा– 'प्रार्थना सुनाई देगी क्या?' मैंने कहा, 'हाँ'। उन्होंने अपने कमरे में बैठकर ही प्रार्थना की।

सायंकाल की प्रार्थना के बाद रोज कृष्णराव, विष्णुपंत मुठाळ तथा अन्य उपस्थितों के साथ वे चाय लेते थे, पर उस दिन उन्होंने चाय नहीं ली। हमसे कहा– 'मैं नहीं ले रहा तो क्या हुआ, तुम लोग लो।'

साढ़े सात से ८ तक मैं नीचे गया था। इस बीच वे अपने कमरे से निकलकर लघुशंका के लिए गए। ग्लानि आ रही थी, इस कारण विष्णुपंत मुठाळ और बाबूराव चौथाईवाले उन पर बराबर ध्यान रखे हुए थे। लघुशंका के बाद हाथ पैर धोने का प्रयास कर रहे थे कि मूर्छा आई। उन्हें उठा कर कुर्सी पर रखा। उसके बाद वे कुछ नहीं बोले। ८ के करीब मैं आया। नाड़ी नहीं लग रही थी। प्रातः से लाया ऑक्सीजन दिया। इसी समय डा. रामदास परांजपे, डा. इंदापवार आदि पहुँचे। नाड़ी आ गई, ऐसा लगा। पर वह आभास ही था। ८ के बाद स्वास्थ्य नाजुक होने लगा। डाक्टरों ने सूचना देने के लिए कह दिया। श्री गुरुजी कुर्सी पर बैठे हुए थे। धीरे-धीरे साँस की गति कम हो रही थी। ९ बजकर ५ मिनट पर उन्होंने अंतिम साँस ली। घर्र-घर्र नहीं अथवा हिचकी नहीं, शांति के साथ गरदन टेढ़ी हो गई, बस! ध्यान में आ गया कि अब सब समाप्त हो गया।

(पुणे, तरुण भारत, श्रद्धांजलि अंक, जुलाई १९७३)

६. श्री गुरुजी के सान्निध्य में

(श्री कुशाभाऊ ठाकरे, राजनीतिक कुशल संगठक)

परम पूजनीय श्री गुरुजी के साथ बिताया हुआ एक एक क्षण बहुत ही शिक्षाप्रद रहता था। उनकी बातचीत, उनका व्यवहार उनका विनोद– सभी बातों में से शिक्षा प्राप्त होती थी। यह अनायास एक अनौपचारिक वातावरण में प्राप्त होती थी। यदि यह सब कुछ लिखने बैठे, तो महाभारत जैसा एक ग्रंथ तैयार हो जाएगा।

बातचीत में सब प्रकार की चर्चा चलती ही थी। जनसंघ की गतिविधियों और राजनीति पर भी चर्चा होती थी। वे एक ही बात पर जोर देते थे कि अपने सिद्धांतों पर अटल रहो। जब मुझे जनसंघ का काम करने के लिए कहा गया, उसके बाद मैं पूजनीय गुरुजी से मिला था। उनसे मार्गदर्शन माँगा। तब उन्होंने जो कहा, वह मेरे लिए जीवन का पाथेय बन गया। उन्होंने कहा 'तुम्हें राजनीति में शठे प्रति शाठ्यम् की नीति अपनानी होगी। पर ध्यान रखना कि कहीं तुम्हारा स्वभाव ही उसका न बन जाए। सस्ती लोकप्रियता के पीछे पड़कर अपने सिद्धांतों को मत भूलना।'

उनका कहना था कि राजनीति में विजयश्री प्राप्त करने के लिए अशुद्ध व निषिद्ध साधनों का प्रयोग लोग करते हैं। अशुद्धता विजयी नहीं होनी चाहिए। इसके लिए हमें सतर्क होकर उपाययोजना करनी चाहिए। किंतु यह सब करते समय यह भय बना रहे कि हम अपने मन की पवित्रता न खो बैठें। हमारी स्वयं की पवित्रता बनी रहनी चाहिए– इस बारे में भी हमें सतर्क रहना चाहिए।

चुनाव में कौन कहाँ-कहाँ से खड़ा हो, कौन कार्यकर्ता कौन-सा पद ग्रहण करे आदि बातों में वे कभी भी दिलचस्पी नहीं लेते थे, पर जानकारी पूरी रखते थे।

वे स्वयंसेवकों की भावना का भी बहुत ध्यान रखते थे। पूजनीय गुरुजी ट्रेन से अजमेर से इंदौर जा रहे थे। रास्ते में गाड़ी करीब २ घंटे रतलाम में खड़ी रहती है। वह समय भोजन का भी रहता है। स्टेशन के पास ही रहने वाले एक स्वयंसेवक श्री गोपालराव के घर उनका भोजन था। समय काफी था। इसलिए यह विचार किया गया कि रतलाम शाखा के स्वयंसेवकों की एक बैठक भी हो जाए। उस दिन गाड़ी देरी से आई। अब

समय इतना नहीं था कि भोजन और बैठक दोनों कार्यक्रम हों। पूजनीय गुरुजी ने भोजन छोड़ बैठक में जाने का ही निश्चय किया। बैठक पूरी करके हम वापस स्टेशन पर आए। स्वाभाविक रूप से गोपालराव को दुःख हुआ और गाड़ी छूटते समय उनकी आँखों में आँसू आ गए। पूजनीय गुरुजी के यह बात ध्यान में आई। उन्होंने तत्काल कहा, 'गोपालराव मैं परसों पुनः इधर से ही निकल रहा हूँ। जाते समय भोजन तुम्हारे ही घर करूँगा।' पूजनीय गुरुजी को इंदौर से निकलना था। वे एक समय केवल दोपहर में ही भोजन करते थे। उन्होंने उस दिन इंदौर में दोपहर का भोजन करने से इनकार कर दिया। शाम रतलाम आकर गोपालराव के यहाँ भोजन किया। कितना ख्याल रखते थे स्वयंसेवकों का!

(युगधर्म, श्री गुरुजी स्मृति अंक, जुलाई १९७३)

७. संघकार्य की तेजस्वी परंपरा

(श्री कृष्णराव मोहरील, नागपुर कार्यालय के आधारस्तंभ)

डा. हेडगेवार की व्यक्ति-परख अत्यंत अचूक थी। श्री गुरुजी में निहित गुणवत्ता, राष्ट्रकार्य की असीम एवं उत्कट लगन डाक्टर जी ने शुरू से ही पहचान ली थी। अपने बाद वे संघकार्य की जिम्मेदारी सँभाल सकेंगे तथा उसका विस्तार कर सकेंगे, इसका उन्हें पूर्ण विश्वास था। अपने बाद उन्होंने संघकार्य का दायित्व सँभालना चाहिए, ऐसी इच्छा उनकी प्रारंभ से रही। श्री गुरुजी जब बनारस विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहे थे, उन दिनों की बात है। सन् १९३२ में संघ का विजयादशमी महोत्सव निकट आ रहा था। डाक्टर जी ने मुझे श्री गुरुजी को पत्र भेजकर बुलवाने की बात कही। डाक्टर जी की इच्छानुसार श्री गुरुजी तथा उनके सहयोगी स्वयंसेवक सद्गोपाल जी नागपुर पहुँचे। उत्सव के दिन डाक्टर जी ने मुझे दो पुष्पहार लाने का आदेश दिया। उत्सव में स्वयंसेवकों द्वारा प्रात्यक्षिक होने पर डाक्टर जी ने अपने प्रास्ताविक भाषण में कहा कि 'अन्य प्रांतों में भी संघकार्य का प्रचार हो रहा है। काशी जैसे स्थान पर संघ का प्रचार करनेवाले श्री माधवराव गोळवलकर यहाँ आए हुए हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने वे पुष्पहार श्री गुरुजी और सद्गोपाल जी को पहनाए। संघ की कार्यपद्धति में न बैठने वाली यह बात डाक्टर जी ने श्री गुरुजी के लिए की। इसी से श्री गुरुजी के प्रति डाक्टर जी के मन में कौन-से विचार उठ रहे थे, उनकी

सहज कल्पना की जा सकती है।

तथापि श्री गुरुजी एकाएक यह दायित्व स्वीकार कर लेंगे, यह संभव नहीं था। इसलिए डाक्टर जी श्री गुरुजी को निरंतर अपने सान्निध्य में रखते। प्रवास में भी श्री गुरुजी अपने साथ रहें, यह उनका आग्रह बना रहता। स्वामी विवेकानंद ने जिस प्रकार अपने गुरु की परीक्षा ली थी, उसी प्रकार श्री गुरुजी ने संघ और डाक्टर जी के प्रति वैसी ही परीक्षा लेकर ही यह महान दायित्व सँभालना स्वीकार किया।

सन् १९३९ का प्रसंग है। सरस्वती सिनेटोन के 'भगवा झेंडा' नामक चित्रपट के उद्‌घाटन प्रसंग पर उपस्थित रहने के लिए डाक्टर जी श्री गुरुजी के साथ पुणे गए हुए थे। इस समारोह से लौटते हुए वे दोनों देवळाली विश्राम करने गए, जहाँ मा. बाबासाहेब घटाटे भी थे। वहीं डाक्टर जी को तेज बुखार चढ़ा। किसी भी प्रकार बुखार उतर नहीं पा रहा था। डाक्टर जी बुखार में भी संघकार्य की ही चर्चा करते थे। अपने सगे-सबंधियों का नामोल्लेख तक न करते। यही क्यों, जब स्वास्थ्य अधिक गंभीर हो गया तब भी उन्होंने इसकी सूचना नागपुर न भेजने की बात कही। श्री गुरुजी ने जब उनसे पूछा कि क्या किसी को नागपुर से बुलवा लें? तो डाक्टर जी ने तुरंत कहा– 'इसकी क्या आवश्यकता है? तुम जो यहाँ हो। नासिक के श्री नाना तेलंग और अपने संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं के रहते मुझे कोई चिंता नहीं है।' संघकार्य के प्रति डाक्टर जी की लगन देखकर गुरुजी भी प्रभावित हुए।

डाक्टर जी जहाँ संघ-मंत्र के उद्‌गाता थे, वहीं तंत्र के भी निर्माता थे। उनके निर्वाण के बाद काफी तेजी से सारे भारतवर्ष में संघ-मंत्र का प्रचार व प्रसार श्री गुरुजी ने किया।

श्री गुरुजी की बीमारी के बाद सन् १९७० में 'उनके बाद कौन?' यह सवाल उपस्थित कर समाचार-पत्रों में काफी उल्टी-सीधी बातें लिखी जाती रहीं। अनेक नामों की चर्चा होती रही। किंतु श्री गुरुजी ने अपने मन में बाळासाहेब की योजना ही कर रखी थी। तथा अपने निर्णय की कल्पना सभी प्रमुख व्यक्तियों को दे रखी थी। इस कारण श्री गुरुजी के निर्वाण के बाद, मानो वे किसी प्रवास पर हैं, इस पद्धति से सब कुछ यथावत् चल रहा है।

(युगधर्म नागपुर, स्मृति-अंक, जुलाई १९७३)

८. जागरूक कर्मयोगी

(श्री ग.वि.केतकर, संपादक केसरी, पुणे)

सन् १९४८ में लगाए गए प्रतिबंध के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सत्याग्रह प्रारंभ किया था। श्री गुरुजी नागपुर के निकट सिवनी के कारागृह में थे। संघ पर प्रतिबंध झूठे संदेह पर निष्कारण लगाया गया है, वह उठाया जाए इस हेतु दिल्ली में संघ को चाहनेवाले और सरदार पटेल के परिचित श्री मौलिचंद्र शर्मा अंतस्थ वार्ता का मार्ग तैयार कर रहे थे। मुझे इसकी कोई जानकारी थी नहीं। मौलिचंद्र शर्मा या सरदार पटेल से मेरा पूर्व परिचय भी नहीं था। यह स्थिति रहते मुझे 'केसरी' के पते पर मौलिकचंद्र शर्मा का तार मिला। तार था– 'निगोशीएशन्स के लिए दिल्ली में आपकी उपस्थिति जरूरी है'।

संघ का सत्याग्रह स्थगित कराने के लिए पुणे के प्रा. त्र्यंबक भिकाजी हर्डीकर अत्यंत निष्ठा से योजनापूर्वक प्रयास कर रहे थे। उनकी प्रेरणा और सतत आग्रह नहीं होता तो मैं उसमें नहीं पड़ता। पुणे से हर्डीकर और दिल्ली से मौलिचंद्र शर्मा ने मुझसे यह कार्य करवाया। मुझे दिल्ली का बुलावा शायद इसलिए रहा, क्योंकि इसके पूर्व मैंने प्रा. हार्डीकर की प्रेरणा से सरदार पटेल से पत्रव्यवहार किया था। पर इसके पूर्व पं. मौलिचंद्र का कोई पत्र या संदेश नहीं था। सौभाग्य से सत्याग्रह का नियोजन करने के लिए संघ के जो नेता बाहर थे, उनमें श्री बाबाराव भिड़े भी थे। यह अचानक प्राप्त हुआ तार लेकर मैं उनसे मिला। उन्होंने कहा, 'मुझे भी कुछ निश्चित जानकारी नहीं। पर दिल्ली में कुछ चर्चा चल रही है, यह सुना है। आप तार के संदेश के अनुसार दिल्ली जाइए। वहाँ जाओगे तो सारी जानकारी मिलेगी।' मैं जन्म से दमा से पीडित हूँ। बाबाराव ने कहा, 'आपके साथ एक स्वयंसेवक रहेगा। प्रवास की पूरी व्यवस्था करेंगे।' उसके अनुसार मैं विमान से दिल्ली गया। मौलिचंद्रजी ने मेरी सरदार पटेल से भेंट की व्यवस्था की। सरदार पटेल जी का भी स्वास्थ्य नरम था। दो बार भेंट हुई। 'कॉट' पर पड़े-पड़े ही उन्होंने बात की। मुझे इस कार्य हेतु चुने जाने का कारण होगा कि संघ में जो प्रत्यक्ष नहीं, पर सहानुभूति और गुरुजी से जिसका परिचय हो ऐसा व्यक्ति। उसी की इस काम हेतु जरूरत थी। संघ पर लगे प्रतिबंध का कसकर विरोध मैं अपने संपादकीय में 'पहले फाँसी फिर जाँच' इस मालिका में 'केसरी' में लिख रहा था। यहाँ तक कि

कुछ हितचिंतक कहने लगे, 'इन लेखों द्वारा आप भी कारावास ओढ़ लेंगे।

संघ पर लगा प्रतिबंध सरदार पटेल को भी पसंद नहीं था। उन्होंने कहा, 'दिल्ली के सत्ता केंद्र में इस मामले में मैं अकेला पड़ गया हूँ। पर गुरुजी किसी भी निमित्त से सत्याग्रह स्थगित करें तो प्रतिबंध उठवाने के अगले प्रयासों मे सहायता होगी।' मैं सिवनी आया। वहाँ के कारागृह में गुरुजी को रखा गया था। दिल्ली से गृहमंत्री की आज्ञा के कारण मुझे गुरुजी से तुरंत भेंट का समय मिला। वह भी काल के किसी बंधन के बगैर। इस विकट परिस्थिति में भी गुरुजी की अविचल, निश्चयी, शांत वृत्ति बनी रही। मुझ जैसे हितचिंतक कुछ भी कर प्रतिबंध उठे, यह चाहते थे। पर गुरुजी का निश्चय था कि संघ की तत्त्वनिष्ठा को बाधा न पहुँचाते हुए, संघ की प्रतिमा पर आघात किए बिना जो हो सके, वह किया जाए। केवल पटेल कहते हैं, इसलिए सत्याग्रह वापस लेने को वे तैयार नहीं थे।

मैं पुनः दिल्ली गया। इस बार सरदार पटेल से जो भेंट हुई, वह उनके कार्यवाह ने अत्यंत गुप्तरूप से कराने की व्यवस्था की। मुझे अँधेरे में खड़ा किया गया। सरदार पटेल लेट गए। उनके सिरहाने की खिड़की बंद हो गई। दीप शांत किए गए। थोड़ी देर बाद केवल कमरे की बड़ी जाली खुली और पिछले दरवाजे से मुझे अंदर भेजा गया। मुझे बताया गया कि संघ की ओर से कोई मध्यस्थ सरदार से मिल रहा है, यह भनक संवाददाताओं को लगी है। वे ढूँढ रहे हैं। इसी कारण सभी के जाने के बाद आपको अंदर छोड़ा है।

बातचीत का निष्कर्ष यह था कि गुरुजी सत्याग्रह स्थगित करने के लिए अपनी कल्पना या आशा व्यक्त करें, पर सरकार की ओर से या संबंधित अधिकारी व्यक्ति से कुछ आश्वासन मिलने का उल्लेख उसमें नहीं हो।

सरदार पटेल से इस भेंट के बाद मैं पुनः सिवनी गया। गुरुजी से मिला। यह भेंट चार घंटों से अधिक समय तक चली। अनुमति दो घंटे की दी गई थी। बीच में रुककर मैंने अधिकारी से पूछा 'समय समाप्त हो गया क्या?' उन्होंने कहा 'आप जितना चाहें, समय लें। हम कोई रोक-टोक नहीं करेंगे।' सत्याग्रह स्थगित करने के आज्ञापत्र के शब्द गुरुजी बार-बार दुरुस्त कर रहे थे।

एक के बाद एक चार प्रारूप बने। 'शब्दयोजना ठीक नहीं' कहकर कुछ हटा दिए गए। पाँचवाँ प्रारूप मन के अनुसार बना। संघ की ओर कमी

नहीं आ पाए, इसलिए गुरुजी एक-एक शब्द तोलकर लिख रहे थे। अंतिम मान्य प्रारूप की दो प्रतियाँ बनीं। एक गुरुजी के पास रही। दूसरी लेकर पाँच घंटों के बाद मैं कारागार के बाहर निकला। संवाददाताओं ने मुझे घेर लिया। 'सरदार ने आपको कोई वचन दिया है क्या?' यह प्रश्न सभी का था। मैंने कहा 'किसी का कोई आश्वासन नहीं, पर आशा तो की जा सकती है।'

सिवनी के कारावास के अधिकारियों का सौजन्य मैं भूल नहीं सकता और गुरुजी का क्या कहें? मैं उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछता तो 'उत्तम है', कहकर मेरी चिंता ही अधिक करते। कारागृह में रहनेवाले लोग अपनी असुविधा का रोना रोते हैं। पर गुरुजी को तो कारागृह में रहने का भान ही नहीं था। उनकी उस आनंदी वृत्ति से मैं भी भूल जाता था कि मैं उनसे कारागृह में मिल रहा हूँ।

उस निवेदन में लिखी उनकी बातों पर प्रतिबंध उठने तक बोलना योग्य नहीं था। इसी विलंब के कारण ये बातें सभी के सामने रखना मेरा कर्तव्य था।

सत्याग्रह स्थगित होने के बाद कुछ माह बीतने पर प्रतिबंध हटा। पर तब तक गुरुजी, मैं और सरदार पटेल तीनों अधांतर स्थिति में थे। मुझपर और सरदार पटेल पर यह आक्षेप लग गया कि गुरुजी को निष्कारण सत्याग्रह वापस लेने के लिए बाध्य किया और प्रतिबंध तो उठा नहीं। खैर अंत अच्छा हुआ, तो सब अच्छा हुआ। याने सभी पावन हो जाता है। यही सच है। संघ पर से प्रतिबंध उठाने में मैंने प्रयत्न किया, यह कहना गीता के उपदेश के अनुसार अहंकार होगा। कर्म के कारणों में से 'दैवं चैवात्र पंचमम्' यह पाँचवाँ कारण सांख्यशास्त्र से गीता ने दिया है। वही इस व्यवस्था में प्रबल रहा। मैं तो किसी प्रकार प्रवाहपतित सा धकेला गया।

संघ से प्रतिबंध उठने के बाद, उसे हटवाने के लिए प्रयत्न करनेवाले श्री व्यंकटराम शास्त्री और पं. मौलिचंद्र शर्मा के साथ मेरा नामनिर्देश भी गुरुजी ने अपने पत्रक में किया और मुझे भी धन्यवाद का पत्र भेजा।

संघ ही गुरुजी का संसार था। वह देशव्यापी था। उन्होंने उसे अधिकाधिक देशव्यापी किया। गुरुजी, याने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल तत्त्व के चलते-बोलते प्रतीक थे। उनके भाषण समान या उससे भी अधिक

उनका जीवनचरित्र परिणामकारक होता रहा। गीता में भगवंत के बताए हुए कर्मयोग को उन्होंने जागरूकता से अपने आचरण में लाया था। उनकी मूर्ति सभी के मनःचक्षु के सम्मुख आती रहेगी और वही आदर्श सभी को कर्तव्य की प्रेरणा देता रहेगा।

(साप्ताहिक विवेक, १७ जून १६७३)

६. राष्ट्रहित में तिरोहित व्यक्तित्व

(श्री क्षितीश वेदालंकार, संपादक, दैनिक हिंदुस्थान)

बात सन् १६७१ के मार्च मास के प्रारंभ की है। दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए हम वर्धा से नागपुर पहुँचे थे। आर्य स्पेशल ट्रेन के लगभग ४०० यात्री नागपुर पहुँचने के पश्चात् संघ कार्यालय और सरसंघचालक श्री गुरुजी के दर्शन के लिए उत्सुक थे। यात्रियों के मन में दक्षिण भारत की यात्रा के अनेक दर्शनीय स्थानों की याद ताजा थी। मन में सबसे अधिक जो स्मृति जड़ जमाकर बैठी थी, वह थी कन्याकुमारी में विवेकानंद शिला स्मारक की अद्भुत रचना और भारत के ऐन दक्षिणी छोर पर एक सशक्त सांस्कृतिक चौकी के रूप में उसकी उपयोगिता। जिस किसी के मन में भी उस स्मारक की कल्पना आई हो, उसके इस कल्पना वैभव की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। जिन लोगों ने एकनिष्ठ भाव से उस अद्भुत स्मारक की रचना करके समस्त भारत की जनता में उसको लोकप्रिय बना दिया, वे भी कम साधुवाद के पात्र नहीं हैं।

जाननेवाले जानते हैं कि उस स्मारक की कल्पना से लेकर उसके निर्माण के पूर्ण होने तक मूल प्रेरणा किसकी थी। शायद स्पष्ट रूप से किसी एक व्यक्ति के नाम का इंगित करना कठिन हो, परंतु इस प्रेरणा के स्रोतों में किसी न किसी स्तर पर श्री गुरुजी का स्थान अनन्यतम है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

इस भावभूमि के साथ जब यात्री नागपुर के रेलवे स्टेशन पर उतरे तो उनके मन में संघ कार्यालय, डा. हेडगेवार जी की समाधि और श्री गुरुजी के दर्शनों की लालसा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती।

प्रातःकाल ही, जबकि बाजार अभी खुले नहीं थे और लोगों की चहल-पहल तथा भीड़-भड़क्का शुरू नहीं हुआ था, स्पेशल ट्रेन के यात्रियों

का यह दल अनुशासनबद्ध स्वयंसेवकों की तरह गीत गाता और नारे लगाता जब संघ कार्यालय में पहुँचा, तब गुरुजी भी यात्रियों की इस भव्य शोभायात्रा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। कार्यालय के विशाल भवन में सब यात्री, जिनमें स्त्रियों की संख्या भी कम नहीं थी, पंक्तिबद्ध बैठ गए।

थोड़ी देर बाद श्री गुरुजी आए। उन्होंने सब यात्रियों को करबद्ध होकर नमस्कार किया और इसके बाद सबको आशीर्वाद-सा देते हुए जाने की तत्परता प्रकट की, परंतु यात्रियों को इतने मात्र से कृतकृत्यता कैसे अनुभव होती? यात्रियों की उत्सुकता केवल आँखों के माध्यम से ही नहीं, अपितु कानों के माध्यम से भी झाँक रही थी। सब यात्रियों ने एक स्वर से श्री गुरुजी से कुछ संदेश देने का आग्रह किया।

गुरुजी साक्षात् विनम्रता की मूर्ति! कहने लगे कि मैं संदेश क्या दूँ? परंतु उत्सुक यात्रियों के अंतःकरण फिर प्रार्थना के स्वरों में गूँजे कि नहीं, कुछ तो कहिए।

तब गुरुजी जैसे ध्यानस्थ हो गए। आँखें सबको देखते हुए भी किसी भावलोक में खो गईं। फिर अत्यंत शांति और मृदु स्वर में उनकी वाणी का प्रवाह बह पड़ा।

जिन्होंने गुरुजी के व्याख्यान सुने हैं, वे उनकी भाषा और विचारों के प्रवाह के सदा कायल रहे हैं। परंतु उस दिन का वह भाषण, भाषण नहीं था। शायद उसे बातचीत भी न कहा जा सके। उसे आत्माभिव्यक्ति का एक ऐसा प्रकार कहना ही उचित होगा, जिसमें कहीं कला की दृष्टि से बनावट या वाक्छल की भी गुंजाइश नहीं। वे जैसे अपना हृदय खोलकर सबके सामने रख रहे थे।

उनके इस वक्तव्य में कहीं अहंमन्यता, सरसंघचालकत्व का नेतृत्वबोध, अपने आपको औरों पर थोपने की प्रवृत्ति या उपदेशात्मकता जैसी कोई चीज नहीं थी। थी केवल आत्मार्पण की अदम्य आकांक्षा। राष्ट्र के लिए अपने आपको समर्पित कर देने की जो निर्धूम ज्वाला उनके मन में सतत जागरूक रहती थी, जैसे उसी ज्वाला की एक चिंगारी वे उन सब यात्रियों में भर देना चाहते थे। उनकी वाणी की सौम्यता इस बात की निशानी थी कि उन्हें उस ज्वाला का उत्ताप नहीं, सातत्य ही अभीष्ट है।

श्री गुरुजी जब यात्रियों के मध्य से विदा हुए, तब सब यात्री जैसे सोते से जागे। अब तक आत्मलीनता की जिस स्थिति में थे, उससे हटे।

अपने बाहरी परिवेश का अनुभव हुआ। मन में एक नई प्रेरणा लेकर यहाँ से सब यात्री हेडगेवार जी की समाधि के दर्शन के लिए चल दिए। गुरुजी फिर द्वार पर खड़े होकर सबको विदाई के नमस्कार से आप्लावित करते रहे।

पूर्व पाकिस्तान में क्रांति का शंख फूँका जा चुका था। पाकिस्तानी सैनिक नृशंस अत्याचार करने पर उतारू थे और जनता जैसे करवट ले रही थी। उसी दिन यह समााचार आया था कि टिक्का खाँ, जिन्हें पूर्वी पाकिस्तान का जनांदोलन समाप्त करने के लिए सर्वाधिकार देकर भेजा गया था, को 'गोली लगी है। बाँग्लादेश का भविष्य तब तक अनिश्चित था और घटनाएँ क्या रूप लेंगी, इसके बारे में कुछ भी कह सकना कठिन था। परंतु मन में बार-बार यह तड़प उठती थी कि भारत के पूर्वी छोर पर घटने वाले इतने महत्त्वपूर्ण घटनाचक्र में हम भारतवासी भी कुछ योगदान कर सकें, तो कितना अच्छा हो। भारत सरकार तब तक केवल निरपेक्ष भाव से मूकदर्शक मात्र बनी हुई थी।

मैंने गुरुजी से पूछा कि जिस प्रकार आपके संघ के स्वयंसेवकों का जाल भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में बिछा हुआ है, क्या उसी प्रकार पूर्वी पाकिस्तान में भी संघ की कुछ गतिविधियाँ हैं?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे पहले मैं उनको अपना परिचय दे चुका था और गुरुजी पत्रकार जगत् के अपने परिचित अन्य कुछ विशिष्ट लोगों के बारे में कुशल-क्षेम पूछ चुके थे। मुझे लगा कि गुरुजी शायद मुझसे इस प्रकार के प्रश्न की आशा नहीं करते थे। या शायद मेरे पत्रकार होने का भाव उनके मन पर हावी रहा हो, क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि जो दो-चार व्यक्ति वहाँ बैठे थे, वे सब उनकी अंतरंग मंडली के ही लोग थे, इसलिए किसी से कोई छिपाने की बात रही हो, ऐसा मानने को जी नहीं चाहता। परंतु गुरुजी ने मुझे जो उत्तर दिया, उससे मुझे ऐसा लगा कि मैं कहीं उनके किसी कथन को प्रचारित न करूँ, इसलिए पहले से ही पेशबंदी करके उन्होंने बहुत सुरक्षित भाषा का प्रयोग किया।

वे बोले, 'पूर्वी पाकिस्तान में हमारी गतिविधियाँ क्या हो सकती हैं? आप जानते हैं कि पाकिस्तान की सरकार का हमारे प्रति क्या रवैया हो सकता है? वह हमें कैसे बरदाश्त करेगा? इसलिए संघ के तो वहाँ किसी भी प्रकार के कार्य का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।'

ऊपर मैंने गुरुजी द्वारा 'सुरक्षित भाषा' के प्रयोग की बात कही है।

यह इसलिए कि इससे पहले अपनी त्रिपुरा यात्रा के दौरान मैं एक ऐसे व्यक्ति से भेंट कर चुका हूँ जो पूर्वी बंगाल का निवासी था और संघ का स्वयंसेवक था। अब तो सार्वभौमसत्तासंपन्न बाँग्लादेश का उदय हो ही चुका है अतः अब इस रहस्य को उद्‌घाटित करने में किसी प्रकार की आपत्ति की संभावना नहीं है।

अगरतला में, जो त्रिपुरा की राजधानी है, 'हिंदुस्थान समाचार' के प्रतिनिधि हैं श्री केशवचंद्र सूर। शायद कोलकाता के समाचार-पत्रों को छोड़ कर यदि अन्य किसी पत्र या संवाद समिति का कोई प्रतिनिधि अगरतला में है, तो वह केवल 'हिंदुस्थान समाचार' का ही है।

इन केशवचंद्र सूर से जब मैं मिला तो उनसे बातचीत करने पर पता लगा कि केवल त्रिपुरा में ही नहीं, प्रत्युत पूर्वी पाकिस्तान के समाचार भी वे अपनी संवाद समिति को भेजते हैं। मैंने उनसे पूछा कि पूर्वी पाकिस्तान के समाचार जानने के आपके पास साधन क्या हैं? तो उन्होंने निःसंकोच भाव से कहा कि मैं स्वयं पूर्वी बंगाल का निवासी हूँ और संघ का स्वयंसेवक रहा हूँ। मेरे अनेक स्वयंसेवक साथी अभी तक पूर्वी बंगाल में ही हैं, उनके ही द्वारा मुझे समाचार प्राप्त होते रहते हैं।

श्री सूर की इस बात में कितनी सच्चाई थी और उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले समाचारों की प्रामाणिकता कैसी असंदिग्ध रही होगी, इसकी पुष्टि इस बात से की जा सकती है कि सन् १९६५ के भारत-पाक संघर्ष के दौरान त्रिपुरा के मुख्यमंत्री एक दिन स्वयं श्री सूर के निवासस्थान पर पहुँचे थे और सरकारी सूत्रों से प्राप्त किसी समाचार विशेष की प्रामाणिकता के बारे में उन्होंने श्री सूर की गवाही चाही थी।

'हिंदुस्थान समाचार' के प्रतिनिधि, अविवाहित और धुन के धनी श्री केशवचंद्र सूर उस दिन सब पत्रकारों के पत्र-प्रतिनिधियों की ईर्ष्या के पात्र बन गए, जिस दिन मुख्यमंत्री स्वयं उनके निवासस्थान पर पहुँचे। उसके बाद से अन्य पत्रों के प्रतिनिधियों की दृष्टि में भी श्री सूर जैसे निरीह व्यक्ति का महत्त्व बढ़ गया और वे भी पूर्वी पाकिस्तान के समाचार जानने के लिए श्री सूर का मुँह जोहने लगे।

इस प्रत्यक्ष जानकारी के आधार पर यह मानने को मेरा मन नहीं चाहता कि पूर्वी बंगाल में संघ की कोई गतिविधि नहीं थी। फिर गुरुजी ने वैसा उत्तर क्यों दिया? इसका कारण मैं यही समझता हूँ कि वे इस बात

को प्रकाश में नहीं आने देना चाहते थे। शायद कोई और व्यक्ति होता तो इस बात को लेकर ही शेखी बघारने का प्रयत्न करता और इस श्रेय से अपने-आपको मंडित करना चाहता कि जो काम सरकार भी नहीं कर सकती, वह हम कर रहे हैं। परंतु गुरुजी ने 'सुरक्षित भाषा' में मेरे प्रश्न का उत्तर देकर जहाँ उच्च कोटि की राजनयिक दूरदर्शिता का परिचय दिया, वहाँ यह भी कि उनका निजी या संघ का व्यक्तित्व राष्ट्र से भिन्न कुछ नहीं है। राष्ट्र के हित में ही उनका सारा व्यक्तित्व तिरोहित हो गया है। उस दिन मैं यही भावना लेकर उनके कक्ष से निकला था और आज भी मेरी इस भावना में कोई अंतर नहीं आया है।

(पांचजन्य, ८ जुलाई १९७३)

१०. भ्रम टूटा

(श्री खुशवंतसिंह, संपादक इलस्ट्रेटेड वीकली)

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनको बिना समझे ही हम घृणा करने लगते हैं। इस प्रकार के लोगों में गुरु गोळवलकर मेरी सूची में सर्वप्रथम थे। सांप्रदायिक दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की करतूतें, महात्मा गाँधी की हत्या, भारत को धर्मनिरपेक्ष से हिंदूराज्य बनाने के प्रयास आदि अनेक बातें थीं, जो मैंने सुन रखी थीं। फिर भी एक पत्रकार के नाते उनसे मिलने का मोह मैं टाल नहीं सका।

मेरी कल्पना थी कि उनसे मिलते समय मुझे गणवेशधारी स्वयंसेवकों के घेरे में से गुजरना होगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, मेरी समझ थी कि मेरी कार का नम्बर नोट करने वाला कोई मुफ्ती गुप्तचर भी वहाँ होगा, पर ऐसा भी कुछ नहीं था। जहाँ वे रुके थे, वह किसी मध्यम श्रेणी के परिवार का कमरा था। बाहर जूतों-चप्पलों की कतार लगी थी। वातावरण में व्याप्त अगरबत्ती की सुगंध से ऐसा लगता था, मानो कमरे में पूजा हो रही हो। भीतर के कमरों में महिलाओं की हलचलें हो रही थीं। बर्तनों और कप-सासरों की आवाज आ रही थी। मैं कमरे में पहुँचा। महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की पद्धति के अनुसार शुभ्र-धवल धोती-कुरते पहने १०-१२ व्यक्ति वहाँ बैठे थे।

६५ के लगभग आयु, इकहरी देह, कंधों पर झूलती काली-घुँघराली केशराशि, मुखमुद्रा को आवृत करती उनकी मूँछें, विरल भूरी दाढ़ी, कभी

लुप्त न होने वाली मुस्कान और चश्मे के भीतर से झाँकते उनके काले चमकीले नेत्र। मुझे लगा कि वे भारतीय होची-मिन्ह ही हैं। उनकी छाती के कर्करोग पर अभी-अभी शल्यक्रिया हुई है, फिर भी वे पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्नचित दिखाई दे रहे हैं।

गुरु होने के कारण शिष्यवत् चरणस्पर्श की वे मुझसे अपेक्षा करते हों, इस मान्यता से मैं झुका, परंतु उन्होंने मुझे वैसा करने का अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने मेरे हाथ पकड़े, मुझे खींचकर अपने निकट बिठा लिया और कहा- 'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी।' उनकी हिंदी बड़ी शुद्ध थी।

'मुझे भी! खासकर, जबसे मैने आपका 'बंच आफ लेटर्स' पढ़ा', कुछ सकुचाते हुए मैंने कहा।

'बंच आफ थॉट्स' कहकर उन्होंने मेरी भूल सुधारी, किंतु उस ग्रंथ पर मेरी राय जानने की उन्होंने कोई इच्छा व्यक्त नहीं की। मेरी एक हथेली को अपने हाथों में लेकर उसे सहलाते हुए वे मुझसे बोले– 'कहिए'।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि प्रारंभ कहाँ से करूँ। मैंने कहा– 'सुना है, आप समाचार-पत्रीय प्रसिद्धि को टालते हैं और आप का संगठन गुप्त है'।

'यह सत्य है कि हमें प्रसिद्धि की चाह नहीं, किंतु गुप्तता की कोई बात ही नहीं। जो चाहे पूछें', उन्होंने उत्तर दिया।

इसी प्रकार विभिन्न विषयों पर परस्पर खुलकर बातचीत हुई।

'मैं गुरुजी का आधे घंटे का समय ले चुका था। फिर भी उनमें किसी तरह की बेचैनी के चिह्न दिखाई नहीं दिए। मैं उनसे आज्ञा लेने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़कर पैर छूने से मुझे रोक दिया।

'क्या मैं प्रभावित हुआ? मैं स्वीकार करता हूँ कि हाँ। उन्होंने मुझे अपना दृष्टिकोण स्वीकार कराने का कोई प्रयास नहीं किया, अपितु उन्होंने मेरे भीतर यह भावना निर्माण कर दी की किसी भी बात को समझने-समझाने के लिए उनका हृदय खुला हुआ है। नागपुर आकर वस्तुस्थिति को स्वयं समझने का उनका निमंत्रण मैंने स्वीकार कर लिया है। हो सकता है कि हिंदू-मुस्लिम एकता को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उद्देश्य बनाने के लिए मैं उनको मना सकूँगा और यह भी हो सकता है कि मेरी यह धारणा एक भोले-भाले सरदार जी जैसी हो।' **(इलेस्ट्रेड वीकली, १७ नवंबर १९७२)**

११. अलौकिक ज्योति

(श्री जनार्दन स्वामी, योग्याभ्यासी मंडल, नागपुर)

परमपूज्य परमादरणीय माधवराव गोळवलकर गुरुजी से मेरी पहली भेंट १९५१ की जनवरी की १४ तारीख को, याने मकर संक्रांति के दिन हुई। पद्मभूषण डा. शिवाजीराव पटवर्धन ने जो परिचयपत्र दिया था, वह श्री बाबासाहेब घटाटे को देने के लिए, उनके बंगले पर गया था। उनके साथ ही संघ के मकर संक्रांति कार्यक्रम के लिए रेशमबाग पहुँचा। वहाँ बाबा साहब ने गुरुजी से मेरी भेंट करा दी, कार्यक्रम पूर्ण होने के बाद। श्री गुरुजी ने मुझसे मेरे कार्य की जानकारी प्राप्त की। उन्होंने कहा– 'यह कार्य बहुत अच्छा है। आज के नए समाज का ढहता स्तर सुधारकर उच्च स्थिति पर ले जाने के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि यौगिक अभ्यास की बहुत जरूरत है। आप प्रयत्नपूर्वक यह कार्य कर रहे हैं, यह जानकर संतोष हुआ।'

उसके बाद जब-जब गुरुजी से भेंट होती थी वे आदरयुक्त अंतःकरण से बोलते थे। कुछ दिनों बाद मैंने 'प्राणायाम व यौगिक क्रिया' पर पुस्तक लिखी। उसे पढ़कर, उस पर अभिमत के लिए मूल प्रति उन्हें दी। अपने सारे काम रहने पर भी उसे ध्यानपूर्वक पढ़कर उन्होंने अपना मत प्रकट किया। उस पुस्तक की प्रेस कॉपी करने का काम उन्होंने स्वयं होकर कार्यालय के एक कार्यकर्ता को दिया। कैसी यह परोपकारी वृत्ति और अपनापन!

उसी भाँति स्व. स.ना.पंचवटीकर द्वारा योगाभ्यासी मंडल के लिए लिखी 'आसने व आरोग्य' पुस्तक पर तथा मेरी भी पुस्तक के हिंदीकरण के बाद दोनों पुस्तकें जब उन्हें दीं, तो पहले के अनुसार सहकार्य देकर उन्होंने उपकृत किया।

एक दिन गुरुजी की बैठक में बैठा था। योग का प्रचार सारे हिंदुस्थान में त्वरित गति से हो, इस हेतु से मैंने उनसे कहा– 'अपनी संघ की शाखाएँ सर्वदूर चल रही हैं। उन शाखाओं में योगासन सिखाने की योजना आप यदि करें, तो यह प्रचार सर्वदूर तेजी से होगा।'

इस पर उन्होंने कहा– 'बात अच्छी है। संघ के कार्यकर्ता उन्हें जो

करना संभव लगता है, वही करते हैं। अमुक किया जाए, यह मैं विशेष आग्रह से नहीं बताता। आपकी इच्छा उन्हें कह दूँगा। फिर ईश्वरी प्रेरणा से जो होगा, सो होगा।' बुद्धि की यह कितनी समाधारणा।

गुरुजी की स्मरणशक्ति अत्यंत उच्च स्तर की थी। बैठक में कभी भी, किसी भी गाँव के किसी कार्यकर्ता की बात निकलती, तो उसका नाम, गाँव, स्थान उस व्यक्ति की कार्य करने की पद्धति, उसकी विशेषता वे तुरंत बताते। यह मैंने कई बार देखा। लोगों के पत्र आने के बाद, चार-चार माह पश्चात् भी उसमें क्या लिखा है, वे ताजा वाचन के समान बताते थे।

सन् १९६५ में विश्व हिंदू परिषद् का पहला अधिवेशन प्रयाग क्षेत्र में हुआ। उस प्रसंग में सभी संप्रदायों के प्रमुख विद्वान और तपस्वी उपस्थित थे। उस परिषद् के सूत्र पूजनीय गुरुजी के विचारों से ही मुख्यतः संचालित हो रहे थे। दूसरे दिन जगन्नाथपुरी के गोवर्धन पीठ के श्री शंकराचार्य तथा स्व. तुकडोजी महाराज आदि कुछ के बीच हिंदू-समाज के धर्मांतरित लोगों को शुद्ध करने के मुद्दे पर विरोध उत्पन्न हुआ। इस मुद्दे पर काफी देर तक चर्चा चली। भोजन का समय हो जाने से, मुद्दा वैसे ही छोड़ लोग उठे। इस बीच श्री गुरुजी ने श्री शंकराचार्य एवं अन्य नेताओं से मिलकर परस्पर रहा विरोध दूर किया। बाद में बैठक प्रारंभ होने पर स्वयं श्री शंकराचार्य ने खुलासा करते हुए 'समयानुरूप शुद्धि आवश्यक है'– यह प्रतिपादन किया। इसी अधिवेशन में कुछ नेताओं के भाषणों से थोड़ी गंभीर स्थिति उत्पन्न हुई। श्री गुरुजी ने शुद्ध भाव से किए अपने सहज भाषण से स्थिति सँभाल ली।

इस प्रकार सर्वव्यापी विचार करनेवाला, सभी संप्रदायों और राजकीय दलों के नेताओं से जिसका स्नेहभाव रहा एवं हिंदू धर्म के तथा हिंदू-समाज के उत्कर्ष हेतु निर्भयता से अपना मत प्रस्तुत कर, अविरत परिश्रम से देहपात होने तक, संघ के कार्य की प्रगति के लिए जूझनेवाले गुरुजी– यह व्यक्ति, याने अलौकिक सामर्थ्य की व विशेष पुण्य की अपूर्व ज्योति थी। ईश्वर तपस्वी एवं तत्त्वज्ञानी लोगों को मिलनेवाली सद्गति गुरुजी को दे।

।। ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः ।।

(तरुण भारत, श्रद्धांजलि विशेषांक, १९७३, नागपुर)

१२. आध्यात्मिक विभूति

(लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण)

पूज्य श्री गुरुजी तपस्वी थे। उनका संपूर्ण जीवन तपोमय था। हमारे यहाँ सब आदर्शों में बड़ा आदर्श है त्याग का आदर्श। वे तो त्याग की साक्षात् मूर्ति ही थे। पूज्य महात्मा जी और उनसे पूर्व जन्मे देश के महापुरुषों की परंपरा में ही पूज्य गुरुजी का भी जीवन था। देश की इतनी बड़ी संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके एकमात्र नेता श्री गुरुजी। उन्होंने सादगी का आदर्श नहीं छोड़ा, क्योंकि वे जानते थे कि सादगी का आदर्श छोड़ने का स्पष्ट अर्थ है, दूसरे सहस्रों गरीबों के मुँह की रोटी छीन लेना।

मैं अत्यंन्त अस्वस्थ हूँ, अभी भी मेरी साँस फूल रही है। मैं कहीं आता-जाता नहीं। फिर भी मेरे मन में पूज्य गुरुजी के लिए जो भावना है, वह ऐसी है कि उसने मुझे इस बात के लिए इजाजत नहीं दी कि मैं यहाँ आने से अपने को रोक सकूँ। गुरुजी के असामान्य व्यक्तित्व का यह प्रमाण है कि आज यहाँ भिन्न-भिन्न दल और वर्गों के लोग उपस्थित हैं। मार्क्सवादी मित्र की बात सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। प्रदेश कांग्रेस तथा कम्युनिस्ट पार्टी के किसी प्रतिनिधि का यहाँ नहीं होना, मुझे अखर रहा है। जब राष्ट्रपति श्री गिरि और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने सबसे आगे बढ़कर अपना शोक संदेश भेजा था, तब उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए था।

श्री पूज्य गुरुजी कर्मठता के मूर्तिमान रूप थे। कर्मठता की कमी है देश में। गुरुजी ने अपने जीवन में कर्मठता का जो आदर्श रखा है, वह अनुकरणीय है। समय-समय पर मेरा संघ के स्वयंसेवकों के साथ संबंध आता रहा है। अकाल के समय संघ के स्वयंसेवकों ने जो कार्य किया, वह 'अपूर्व' था। मैं जब भी उसका स्मरण करता हूँ, श्रद्धावनत हो जाता हूँ।

श्री गुरुजी आध्यात्मिक विभूति थे। यह एक बड़ा बोध है कि हम भारतीय हैं, हमारी हजारों वर्ष पुरानी परंपरा है, भारत का निर्माण भारतीय आधार पर ही होगा। चाहे हम कितने ही 'माडर्न' क्यों न हो जाएँ। हम अमरीकी, फ्रेंच, इंग्लिश, जर्मन नहीं कहला सकते, हम भारतीय ही रहेंगे– यह 'बोध', जिसे सहस्रों नवयुवकों में जगाया था पूज्य गुरुजी ने। मैं आशा करता हूँ कि श्री बाला साहब देवरस पूज्य गुरुजी की परंपरा को निभाएँगे।

(पटना की शोकसभा में)

१३. प्रचंड आत्मविश्वासी
(डा. सैफुद्दीन जिलानी, पत्रकार)

श्री गुरुजी का कोलकाता में निवास बहुत थोड़े समय के लिए था तथा वह भी व्यस्त कार्यक्रमों से युक्त। अतः उनसे भेंट होना आसान नहीं था। परंतु उनसे मिलना बहुत जरूरी था। जातीयता के प्रश्न पर राजनीतिक नेतागण जनता को गुमराह कर रहे थे। अतः इस मामले पर उनसे चर्चा के लिए, मैं अधीर था।

इसके पूर्व मेरी उनसे कोई प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई थी। कोई पत्र-व्यवहार भी नहीं हुआ। हाल ही वे बीमार हुए और उन पर बड़ी शल्यक्रिया हुई। इसलिए मैंने यह अपना कर्तव्य समझा कि उनके स्वास्थ्य की पूछताछ करूँ तथा शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ और दीर्घायु के लिए अल्लाह से प्रार्थना करूँ। अपनी उक्त भावना मेरे मित्र आचार्य दादासाहेब आप्टे और श्री आर.पी.खन्ना के जरिये मैंने उन तक पहुँचा दी थी।

यह एक चमत्कार ही है कि श्री गुरुजी एक दुर्धर रोग से मुक्त हो गए। परमात्मा ने जिन असंख्य भारतीयों की प्रार्थना सुनी, उनमें से मैं भी एक हूँ। इसलिए उनका अभिनंदन करने की मेरी इच्छा थी।

श्री गुरुजी न केवल इस देश के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं, अपितु वे देश के भाग्य-विधाता हैं। वे कोलकाता आए, तब मुझे उनसे मिलने का अवसर मिल गया। जातिवाद के दैत्य पर पूर्ण विजय मेरी आकांक्षा है। मुस्लिम बंधुओं के विषय में सद्भावना रखनेवाले हिंदुओं की संख्या बहुत होने के कारण मुझे अपने प्रयत्नों में कुछ यश अवश्य प्राप्त हुआ। किंतु वह संतोषकारक नहीं माना जा सकता। मेरे मतानुसार इस कार्य में, सिवा श्री गुरुजी के अन्य कोई भी सहायक सिद्ध नहीं हो सकता।

श्री गुरुजी से भेंट, मेरे जीवन की अत्यंत प्रेरक एवं अविस्मरणीय घटना सिद्ध हुई। हिटलर से लेकर नास्सर तक विश्व की बड़ी-बड़ी हस्तियों से मैं मिल चुका हूँ। किंतु श्री गुरुजी जैसा प्रसन्नचित्त, आत्मविश्वासी और प्रभावी व्यक्तित्व अभी तक मेरे देखने में नहीं आया। ईमानदारी के साथ मुझे लगता है कि हिंदू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के विषय में एकमात्र श्री गुरुजी ही हैं जो यथोचित मार्गदर्शन कर सकते हैं।

यह बात कहते समय मैंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अपनी

आँखों से ओझल नहीं किया है। अनेक वर्षों से संघ का कार्य मैं बहुत नजदीक से देखता आ रहा हूँ। उसके आधार पर मैं असंदिग्धरूप से कह सकता हूँ, कि संघ इस देश के लिए बहुत बड़ा सहारा है। किंतु अपने देश की दृष्टि से संघकार्य के महत्त्व का जिन्हें आकलन नहीं हुआ, ऐसे लोग अज्ञानवश अथवा जानबूझकर संघ-विरोधी प्रचार किया करते हैं। सच्चाई तो यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मुसलमानों का शत्रु नहीं, अपितु मित्र है। किंतु यह बात मुसलमानों की समझ में नहीं आती। इसका कारण यह है कि वे स्वयं की बुद्धि से विचार नहीं करते। मानो, विचार करने की जिम्मेदारी उन्होंने अपने अनभिज्ञ और षड्यंत्रकारी नेताओं पर सौंप दी है।

उसी प्रकार मैं यह भी नहीं भूला हूँ कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में मुसलमानों का प्रवेश निषिद्ध है। हिंदू-समाज में स्वाभिमान जागृत करने के लिए संघ का जन्म हुआ है। यह कार्य पूर्ण होते ही संघ के द्वार अहिंदुओं के लिए तत्काल खुल जाएँगे। किसी भी इमारत का निर्माण-कार्य उसकी नींव से हुआ करता है। भारत के भव्य प्रासाद की आधारशिला हिंदू है। यह नींव मजबूत होते ही प्रासाद अभूतपूर्व वैभव से जगमगाने लगेगा।

मैंने श्री गुरुजी से पूछा- 'हाल ही के दिनों में किसी प्रमुख मुसलमान ने आपसे जातिवाद की समस्या पर चर्चा की है अथवा नहीं? उन्होंने अनेक नाम बताए। परंतु इस संदर्भ में मेरे दिमाग में जिन मुस्लिम नेताओं के नाम थे, उनमें से एक भी नाम उनमें नहीं था। इसलिए मेरे दिमाग में जो नाम थे, उनका उल्लेख करते हुए मैंने उनसे सीधा प्रश्न पूछा- 'क्या आप इनसे मिलना चाहेंगे?' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया- 'मैं उनसे जरूर मिलना चाहूँगा! इतना ही नहीं, उनसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी।'

उनके उक्त शब्दों में सदिच्छा एवं प्रामाणिकता का स्पष्ट आह्वान था। परंतु जैसा कि कुरान में कहा गया है, 'विकृति से चेतनाशून्य हुए कानों' में क्या वह प्रविष्ट होगा?

मैं समग्र भारतीय जनता का एक नम्र सेवक हूँ, परंतु सच कहूँ तो मेरे दिमाग में सबसे पहले अगर कोई बात आती है, तो वह है भारत के मेरे मुस्लिम भाइयों के बारे में। हिंदुओं के लिए नेतृत्व की कोई कमी नहीं है। किंतु मुसलमानों की हालत उन भेड़ों जैसी है, जिनका कोई गडरिया ही नहीं है। इसलिए मैं मुसलमानों से यही कहना चाहता हूँ कि वे अपनी आँखें और दिमाग खुले रखें।

(३० जनवरी १६७१, कोलकता)

१४. विचार व व्यवहार का संयोग

(डा. जैनेंद्र, सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक व साहित्यकार)

तब की बात है जब विमान सेवा चली ही थी। पालम का अस्तित्व कल्पना तक में नहीं था। विमान, सफदरजंग जिसको विलिंग्डन एयरपोर्ट कहते थे, से चला करते थे। मैं हैदराबाद जा रहा था। गुरुजी नागपुर के लिए एयरपोर्ट पर आए थे। उनके स्वागत में काफी लोग एकत्र थे। श्री हंसराज गुप्त ने वहाँ मेरा परिचय श्री गुरुजी से कराया।

विमान में मुझे विस्मय हुआ कि गुरुजी उठकर पास आ बैठे और कह रहे हैं कि 'जैनेंद्र' मैं तुम्हें जानता हूँ।'

मैंने कहा 'अभी हंसराज जी ने परिचय कराया था।' वे बोले, 'नहीं'। मैंने कहा, 'मुझे तो, साक्षात्कार पहले कभी हुआ हो, ऐसा जान नहीं पड़ता।'

वे बोले 'डा. हेडगेवार डायरी लिखा करते थे। वह मैंने पढ़ी थी। उसमें तुम्हारा जिक्र कई जगह आया है। इस तरह मैं तुम्हें जानता हूँ।'

डा. हेडगेवार का स्नेह मुझे अवश्य प्राप्त हुआ था। सन् १९२१ और १९२३ में मैं नागपुर गया था, और मुझे याद है कि डाक्टर साहब ने सहसा स्नेह से अपना लिया था। आयु में बहुत लंबा अंतर था। मैं १६ या १८ वर्ष का था, किंतु वह अंतर बाधा नहीं ला सका और यदि नाम का उल्लेख उनकी दैनंदिनी में भी आया हो तो यह डाक्टर साहब की कृपा ही माननी चाहिए। उसी को लेकर गुरुजी इस सहज भाव से आ मिले, इससे मुझमें एक प्रकार की कृतार्थता का अनुभव जगा।

फिर तो काफी बातचीत हुई। मैंने कहा– 'आपके सामने से इस्लाम और मुस्लिम हट जाएगा, तो आपके आंदोलन का आधार ही समाप्त हो जाएगा।'

वे बोले– 'तुमने कैसे समझ लिया कि हमारा आंदोलन घृणा पर आधारित है। हिंदू शब्द में किसी का खंडन कहाँ है? अगर हम उसके पक्ष की बात करते तो उसमें इस्लाम या मुस्लिम का विरोध देखना ठीक नहीं है। किसी स्वार्थ के कारण वैसा लांछन हम पर लगाया जाता हो तो उसका निराकरण क्या किया जाए? लेकिन मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि हम विरोध के आधार पर नहीं खड़े हैं। हिंदू संस्कृति जो मूल में सकारवादी है, उसे

फिर से पुष्ट और जागृत किया जाए। इसलिए भारत की ही नहीं, प्रत्युत मानव मात्र की रक्षा हम उसमें देखते हैं।'

मैंने कहा कि 'क्या आपके नाम पर मैं इस तरह का कोई वक्तव्य दे सकता हूँ?'

वे बोले– 'जरूर दो, लेकिन मेरे नाम के सहारे की तुम्हें क्यों आवश्यकता है?'

फिर पूछा, 'राह में उतर सकते हो?' मैंने विवशता बताई कि हैदराबाद पहुँचना है।

कहने लगे 'वापसी में सीधे मत निकल जाना, एकाध दिन नागपुर रहकर जाना।'

तब तो संभव नहीं हुआ। लेकिन एक बार नागपुर गया, तो हेडगेवार भवन पहुँच गया। भवन देखकर और गुरुजी का स्थान देखकर बहुत अच्छा अनुभव हुआ कि कोई अतिरिक्त वस्तु वहाँ नही थी। सब यथावश्यक। आडंबर कहीं नहीं। गुरुजी स्वयं नितांत सरल और सहज। मुझे पाकर जैसे मेरे सम्मान में ही सर्वथा व्यस्त हो गए। वह स्नेहभाव मुझे सुखद और आश्चर्यकारी प्रतीत हुआ। गुरुता जैसी चीज भी प्रकट होती, तो मैं तो उसे अन्यथा न समझता, लेकिन उसकी कहीं संभावना नहीं देखी। उद्यम तत्पर कार्यकर्ता की भाँति वे स्वयं सब कार्य कर सकते थे।

मैंने देखा कि वे हार्दिक आदर व श्रद्धा की प्रेरणा हैं। इसी भावना से उनके साथी सहयोगी काम करते हैं। उसमें पद की कृत्रिमता का मिश्रण नहीं है। हर समय भी नित्य सैंकडों प्रकार के मनुष्यों से काम पड़ता होगा, लेकिन बीच में किसी कृत्रिम व्यवधान को डालकर व्यवहार को बनावटी बनाने की वृत्ति उनमें नहीं देखी।

चलने लगा तो गुरुजी स्वयं बाहर तक साथ आए और बोले– 'यह गाड़ी किसकी है।' तत्काल खोज हुई। ड्राइवर महाशय आए तो कहा कि 'देखिये, ये जैनेंद्र जी हैं, अमुक स्थान पर इन्हें पहुँचा आइए।'

उसके एकाध वर्ष के अंदर की बात रही होगी। मुझे अपने लिए किसी संभ्रम का भ्रम न हो सकता था। मै ठहरा था सेठ पूनमचंद्र रांका के यहाँ, जो उस समय शायद स्थानीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। पर उस सबसे गुरुजी के व्यवहार में कुछ भी अंतर नहीं आया।

विस्मय मुझे तब हुआ जब स्वयं गुरुजी रांका जी के घर पर

उपस्थित हुए। निर्मलचित्तता के कारण ही ऐसा हो सकता है।

अन्य कई प्रवासों में यदा-कदा उनसे भेंट हुई। दो बार तो रेल में ही साक्षात्कार हुआ। हम देर तक खुलकर बातें करते रहे। कई प्रश्नों के मूल में सहमति नहीं होती थी, लेकिन चर्चा में कहीं भी यह प्रश्न नहीं होता था कि सहमति वे जरूरी मानते हैं। एक संगठन के अध्यक्ष और विचारधारा के प्रवर्तक होकर भी उनमें ऐसी उदारता रह सकती है, यह बात मेरे जैसे साहित्यिक के लिए बहुत प्रिय होती थी।

एक बार उन्हें मालूम हुआ कि मैं अहमदाबाद जाऊँगा। तारीखें पूछी। लगभग उन्हीं दिनों अहमदाबाद उन्हें भी पहुँचना था। पूछा कहाँ ठहरे हो, फोन है वहाँ? फोन करूँ और आऊँ तो समय और सुविधा होगी। यह अनुग्रह मेरे लिए भारी ही था। लेकिन उनके लिए सहज। मैंने कहा– 'आप स्थान बताइए, आपको अवकाश हुआ तो मैं स्वयं उपस्थित होऊँगा। किंतु फोन उनका ही पहले आया। यद्यपि उनको आने से रोककर, मैं स्वयं उनके पास गया।

एक बार अचानक दो बंधु पधारे और कहा कि रामलीला मैदान में चलना है। गुरुजी पधारे हैं और रैली की अध्यक्षता आपको करनी है। मैंने पूछा यह निर्णय कैसे हुआ? बताया गया कि तीन नामों का पैनल चुना गया था। वे नाम गुरुजी के पास पहुँचे। निर्णय उनको करना था। शेष दो नाम सर्वदा उनके अनुकूल थे। मेरा ही नाम कुछ प्रतिकूल समझा जा सकता था। उन्होंने बताया गुरुजी ने तीनों नाम देखकर तत्काल आपका निर्णय दिया।

याद नहीं कि एक प्रमुख कांग्रेसी महोदय, तभी पास बैठे थे या तनिक बाद में आए थे, बोले– 'आप संघ की रैली में जाएँगे?'

मैंने कहा, 'आप मुझे खद्दर में देख कर भी संशय रखते हैं? गुरुजी को तो संशय नहीं हुआ। यद्यपि वे स्वयं खद्दरधारी नहीं हैं। बताइए मैं संकीर्ण किसे कहूँ और उदार किसको?'

राजनीति बाँट डालती है। राष्ट्र को मिलाने का काम उससे नहीं हो पाएगा। जनसंघ में गुरुजी का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ खो नहीं गया। इसको मैं गोळवलकर जी की मौलिक विशेषता मानता हूँ। द्वंद्व में जो नीति रहे, वह राजनीति हो सकती है। उनका संघ रचनात्मक होगा, राजनीति नहीं। इस आग्रह को मैं उनके व्यक्तित्व का सूचक मानता हूँ।

निस्पृहता, मित्रता, निरंहकारिता किंतु उनकी दृढ़ता, संकल्पशीलता, अथक कर्म प्रवणता के उदाहरण अन्यत्र मुझे नहीं मिले। गाँधीयुग के बाद तो स्वार्थहीनता और नित्य बलिदान को प्रेरणा देनेवाले व्यक्तित्व अपवादरूप हो गए हैं। गुरुजी के गतिशील और प्रणबद्ध व्यक्तित्व के परिचय का लाभ मुझे मिला, इसको मैं अपना सद्‌भाग मानता हूँ। उनमें मैंने कभी प्रमाद नहीं देखा और जिस क्षण भी मिलना हुआ, उन्हें तत्पर और उद्यत ही पाया। इस अवसर पर मैं उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(पांचजन्य, ८ जुलाई १९७३)

१५. उनका जीवन सूत्र

(श्री दादासाहब आप्टे, संस्थापक महामंत्री वि.हि.परिषद्)

जब से पूजनीय गुरुजी का स्वास्थ्य खराब हुआ था, तब से हर माह तीन दिन उनसे मिलने और उनके साथ रहने के लिए जाया करता था। ऐसे ही १८ अप्रैल १९७३ को उनके पास बैठा था। मन में विचार आया कि महापुरुषों के जीवन किसी न किसी तत्त्व में गढ़े रहते हैं। गुरुजी के अद्वितीय जीवन की प्रेरणा क्या होगी। इसलिए उनसे पूछा– 'गुरुजी, क्या आपने जीवन के कुछ सूत्र निश्चित किए थे?'

मेरा प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा– 'सूत्र! सूत्र क्या बताऊँ? पर मैंने तय कर लिया था कि प्रवाह के साथ बहते रहना।'

पूछा– 'क्या इसका अर्थ प्रवाहपतित होना है?'

उन्होंने उत्तर दिया– 'नहीं। प्रवाह के साथ बहते जाना। प्रवाह के बाहर तो जाना ही नहीं। प्रवाह में डूबना भी नहीं। प्रवाह के विरुद्ध कैसे जाना? किनारे से लगकर प्रवाह की ओर देखते नहीं रहना। भगवान ने कहा है–

कुर्याद् विद्वांस् तथासक्तशः चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्। (गीता, ३-२५)'– यह मेरा जीवनसूत्र है।'

विश्व को मार्ग दिखानेवालों को तो लोक विलक्षण होना ही नहीं चाहिए। लोक संग्रह का व्रत जिन्होंने लिया है, उन्हें सर्वसाधारण से अलग नहीं होना चाहिए, न दिखलाई देना चाहिए। यह है गुरुजी के जीवन का महाकाव्य।

दुनिया के अनेक महापुरुषों के जन्मस्थान और निवासस्थान देखने का अवसर मुझे मिला है। समकालीन इतिहास गढ़नेवाले अनेक राष्ट्रपुरुष, शूर-वीर, ज्ञानी-योगियों से दूर से, निकट से मिलने का सौभाग्य भी मुझे मिला है। लोक विलक्षणता उन सभी का गुण रहा है। पर अपने गुरुजी का सर्वसाधारण व्यक्तित्व ही उनकी अलौकिकता थी। लक्ष-लक्ष स्वयंसेवकों का केंद्रबिंदु होकर भी गुरुजी लोकविलक्षण नहीं थे। भगवान ने कहा है, ज्ञानेश्वर ने बताया है और डाक्टर जी के उदाहरण को देखा है। तारुण्य के अपने सारे गुण, प्रवृत्ति और प्रकृति संघानुकूल कर गुरुजी संघ रूप बन गए। पर इस असामान्यता के अविष्कार में कितनी स्थितप्रज्ञता तक पहुँचे थे, उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

सबेरे ६ से रात १२ बजे तक पिछले ३४ वर्ष गुरुजी का समय स्वयंसेवकों के साथ ही बीता। इस कारण उनका सार्वजनिक चरित्र सुनकर, पढ़कर सभी जानते हैं, पर उनके अंतर्मन का दर्शन और अंतरंग का जो साक्षात्कार मुझे हुआ, उसे किंचित मात्र शब्दांकित करने का यह प्रयत्न है।

किसी भी व्यक्ति के महात्म्य का मूल्यांकन उसके व्यावहारिक यशापयश के निकष की कसौटी पर किया जाता है। यह गलत हो या सही पर अनुभव यही है कि किस मार्ग से, किस माध्यम से, साधन से, कौन कितनी मात्रा में अपने विचार को समझाकर उन्हें अपना अनुयायी या समर्थक बना सकता है, इसी पर उसका बड़प्पन नापा जाता है। इस लौकिक कसौटी पर गुरुजी और जिन्होंने संघ के लिए समग्र जीवन का अग्निहोत्र किया, उनका मूल्यांकन करना अप्रस्तुत होगा। वैसे देखा जाए तो यह काल ही विलक्षण संगठन, साधन तंत्र युग का हैं। नाम न लेने की इच्छा होने पर भी उदाहरण सामने आते हैं। अभिजात प्रतिभा से मुखरित कल्पना, धन-साधन व शासन सामर्थ्य साथ रहते हुए भी निर्माल्य हुई हम देखते हैं। चंद्र-सूर्य की गवाही देकर स्वपराक्रम की गर्जना करनेवाले लौहपुरुष निष्प्रभ पड़े हम देख रहे हैं।

एक विचार मन में उठता है कि क्या अपने इस भारतीय जनसमाज ने सूज्ञ भाग्यविधाता के पथ-प्रदर्शकों को चुनौती तो नहीं दी कि आप हमें क्या सुधारोगे, हमारा उद्धार कैसे करोगे? देखें कौन हारता है?

सचमुच काल विचित्र है। यशापयश का विचार एक ओर रखकर गुरुजी ने तो शाश्वत मूल्य हमारे सामने रखे, उनपर स्वयं आचरण कर

दिखाया। उसका स्मरण और निष्ठुर पालन करना क्या राष्ट्रोत्थान का एकमेव उपाय नहीं?

पूजनीय गुरुजी की ओर देखते समय सार्वजनिक व्यक्ति के रूप में न देखकर अपने संगठन को शाश्वत, अक्षरस्वरूप आधार प्राप्त करने के लिए उन्होंने जो किया उसका थोड़ा दिग्दर्शन किया जाए। उनके अनेक पहलू का निर्देश करना आवश्यक है। यह संस्कृत सुभाषित कहीं पूजनीय गुरुजी के वर्णन हेतु ही तो नहीं लिखा गया है–

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता
विप्रत्वे बहुविद्यतातिगुणता विद्यावतोऽर्थज्ञता।
अर्थज्ञस्य विचित्रवाक्यपटुता तत्रापि लोकज्ञता
लोकज्ञस्य समस्तशास्त्रविदुषो धर्मे मतिर्दुर्लभा।।

लेकिन आज तो ब्राह्मण ही लोगों को पसंद नहीं। कुछ महाब्राह्मणों ने तो संसद में दिखाया कि वे जनेऊ धारण नहीं करते। कुछ विद्वानों ने उसका उपयोग न कर उसे खूँटी पर टाँग रखा है। अपने गुरुजी ने ब्राह्मण के कर्तव्य, याने अध्ययन और लोकशिक्षण पर किसी प्रकार का अभिनिवेश न कर, का पालन जन्मभर किया। वे अनेक शास्त्र तथा विद्या के तज्ञ थे। ज्योतिष, वैद्यक, जीवशास्त्र आदि में पारंगत थे। संगीत उनकी प्रिय कला थी। पर संघकार्य स्वीकार करने पर उन्होंने अपनी बाँसुरी और सितार मित्र को दे दी। फिर कभी उसे हाथ नहीं लगाया।

गुरुजी जितने वाक्पटु थे उतने ही विनोदी भी थे। हम सभी बैठे थे कि एक परिचित ज्योतिषी मिलने के लिए आए। मैंने कहा 'आप लोग क्या ज्योतिष की बात करते हैं। राम के राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त निकाला था, पर उन्हें तो वनवास भोगना पड़ा। ऐसे ही समर्थ रामदास के विवाह का भी मुहुर्त निकाला पर वे मंडप से ही भाग गए।

गुरुजी हमारी बात का आनंद ले रहे थे। ज्योतिषी सज्जन जब जाने लगे, तब गुरुजी ने उनसे पूछा, 'तो कल मिलोगे न?' उन्होंने कहा, 'अवश्य।' मैंने कहा,'महोदय, गुरुजी पूछ रहे हैं, अगले २४ घंटे जीवित रहोगे न।' और हँसी के बीच बात समाप्त हो गई।

ये गुण अनेक लोगों में मिलते हैं, पर श्री गुरुजी की धर्मनिष्ठा और मातृभक्ति अविचल थी।

श्री गुरुजी सरसंघचालक बने, उसके बाद युगांतर करा देने वाला एक छोटा कालखंड आया। छिन्न-विच्छिन्न अवस्था में ही क्यों न हो, पर स्वतंत्रता मिली। 'अब आगे क्या' को लेकर अपने ही कुछ लोग संभ्रम में थे। उस कठिन काल में श्री गुरुजी ने संघ को शाश्वत और अक्षरस्वरूप दिया। यह उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति और प्रतिभा से ही संभव हुआ। उन्हें क्या माना जाए– संत, योगी, राजनीतिज्ञ या अध्यात्म के मार्ग का एक पथिक?

राष्ट्र की निर्मिति के लिए और मुख्यतः हिंदू समाज के संगठन के लिए जो भी आवश्यक था, वे सभी गुण उनमें थे। उन सभी की पृष्ठभूमि और प्रतिष्ठापना अध्यात्म के आधार पर थी। किसी योगी सा उनका जीवन था।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण में कहा गया है 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।' (गीता, २-५९) लंबे समय से वे एकभुक्त थे। बीच के कुछ काल तक माँ के समाधान हेतु सायंकाल सभी स्वयंसेवकों के साथ माँ के सामने थोड़ा फलाहार करते, पर माँ के निधन के बाद यह सर्वसंकल्प संन्यासी पंचेद्रियों की सारी वासनाओं के जाल से मुक्त हो गया था। जैसा ज्ञानेश्वर कह गए हैं– वे अपनी इंन्द्रियों को आज्ञा देते और इन्द्रियाँ बिचारी लगाम खिंचे घोड़े के समान चलतीं।

उन्होंने कभी देह पूजा नहीं की। इसी कारण शायद वे छाया-चित्रकारों को पास फटकने नहीं देते थे। कभी कोई मूल्यवान वस्तु भी धारण नहीं की। पुस्तकें भी पढ़ने के बाद किसी को दे देते। कभी अपने पास उनका संग्रह नहीं किया।

श्री गुरुजी के अंतर्मन के विचारों का दर्शन ऐसे छोटे से लेख द्वारा करना, याने समुद्र के किनारे खड़े रहकर उसके तल में स्थित मौक्तिक दलों की कल्पना करना ही होगा। सच कहें, तो इस योगी का संपूर्ण दर्शन हुआ ही नहीं। केवल संगठन, लोक-व्यवहार आदि लौकिक बातों से ही हम उनका परिचय करने का प्रयास करते हैं। उनकी ऊँचाई तय करते हैं। तत्त्व के रूप में हमें दिखाई देगा कि अपने भारतवर्ष में ही नहीं, तो समूचे मानव समाज में वे एक अलौकिक पुरुष हो गए।

(तरुण भारत, पुणे; श्रद्धांजलि विशेषांक)

१६. समष्टिमय जीवन

(पं. दीनदयाल उपाध्याय)

एक सज्जन ने, जो अपने आपको संघ के विरोधी समझते हैं, कहा– 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक के नाते नहीं, बल्कि श्री माधवराव गोळवलकर के नाते श्री गुरुजी के व्यक्तित्व में मेरी श्रद्धा है।' उनका कथन कोई अनूठा नहीं, क्योंकि इस प्रकार का विचार करनेवाले बहुत से हैं। एक समय वह भी था (सन् १९४८ में) जब बड़ों-बड़ों ने यह कहा– कि 'संघ और संघ के स्वयंसेवक तो अच्छे हैं, किंतु उनके नेता और संचालक उन्हें गलत दिशा की ओर ले जा रहे हैं।' अर्थात् दोनों प्रकार के व्यक्तियों की भावनाओं में अंतर हो सकता है, किंतु विचारों की भूमिका में नहीं। उनके अनुसार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक और श्री माधवराव गोळवलकर दो व्यक्ति हैं। मेरे अनुसार वे दोनों को ही नहीं समझ पाए, न तो संघ को और न श्री गुरुजी को।

मैं जब यह कहता हूँ कि श्री गुरुजी का व्यक्तित्व संघ के सरसंघचालक से पृथक कुछ भी नहीं, तो मेरा यह अर्थ नहीं कि उनमें महान विभूतिमत्व का अभाव है। संघ के सरसंघचालक बनने पर उन्होंने कहा था कि 'यह तो विक्रमादित्य का आसन है, इस पर बैठकर गडरिये का लड़का भी न्याय करेगा।' विनय के साथ उन्होंने अपनी तुलना गडरिये के लड़के से की। किंतु कोई यह समझने की भूल नहीं कर सकता कि उनकी अप्रतिम महत्ता सिंहासन के कारण नहीं, अपितु उनके अपने विक्रम के कारण है। हाँ, उन्होंने अपनी संपूर्ण शक्ति और विक्रम को संघ के साथ एकरूप कर दिया और वही है उनके जीवन का लक्ष्य और उनकी महानता का रहस्य।

सन् १९३८ की बात है, संघ के आद्य सरसंघचालक परम पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जीवित थे। उसी वर्ष श्री गुरुजी नागपुर में लगनेवाले अधिकारी शिक्षण शिविर के सर्वाधिकारी थे। शिविर की समाप्ति के पूर्व उसमें भाग लेने वाले स्वयंसेवकों ने परम पूजनीय डाक्टर जी को भेंट करने के लिए निधि एकत्र की। प्रत्येक ने अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार दिया। यह किसी को ज्ञात नहीं था कि किसने क्या दिया। एक स्वयंसेवक ने निधि में कुछ न देते हुए अपनी श्रद्धा के स्वरूप परम पूजनीय डाक्टर जी को घड़ी की सोने की चैन भेंट की। निधि और चैन भेंट करने का कार्यक्रम

हुआ। हम लोग अपने मन में उस स्वयंसेवक की प्रशंसा कर रहे थे, जिसने त्याग करके वह सोने की चैन भेंट की। हमारे सम्मुख वही उस दिन का हीरो था। सर्वाधिकारी के नाते श्री गुरुजी समारोप भाषण के निमित्त खड़े हुए। अपने भाषण में उन्होंने सोने की चैन का उल्लेख करते हुए कहा– "मैं मानता हूँ कि जिस स्वयंसेवक ने यह चैन भेंट की है, उसके मन में डाक्टर जी के प्रति बड़ा आदर, प्रेम एवं श्रद्धा है,। किंतु वह अभी पूरा स्वयंसेवक नहीं है, उसमें कहीं न कहीं उसका 'अहं' छिपा हुआ है। जो निधि दी गई है, उसमें किसी का व्यक्तित्व पृथक नहीं, उस निधि में साथ न देते हुए अलग से देने के मूल में अपने व्यक्तित्व की पृथकता और अहंकार है।" श्री गुरुजी के ये शब्द सुन कर हम लोगों को एकदम धक्का लगा, किंतु संघ का स्वयंसेवक बनने के लिए अपने व्यक्तित्व को संघ जीवन में कितना विलीन करना पड़ता है, इसका ऐसा पाठ मिल गया, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अपने संपूर्ण जीवन को संघ के साथ एकरूप करने का कहीं आदर्श मिल सकता है तो वह परम पूजनीय श्री गुरुजी के जीवन में। किसी ध्येय तथा कार्य के साथ तादात्म्य सरल नहीं और विशेष कर उस व्यक्ति के लिए, जो उस संस्था का सर्वप्रथम नेता हो। यदि किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख व्यष्टि और समष्टि में संघर्ष आ जाए या दिशा का संभ्रम उपस्थित हो जाए, तो वह समष्टि की भावनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं के प्रतीक अपने नेता की आज्ञा को सर्वमान्य कर चल सकता है, उसका मार्ग सरल है। किंतु जिस व्यक्ति के ऊपर संपूर्ण कार्य के नेतृत्व की जिम्मेदारी हो, वह अपनी अंतरात्मा को छोड़कर और किससे प्रेरणा ले सकता है? जनतंत्र की प्रचलित पद्धतियाँ वहाँ निरुपयोगी सिद्ध होंगी। उनसे समष्टि की भावना और उसके हिताहित का पता नहीं चलता। सत्य न तो अनेक असत्यों अथवा अर्ध सत्यों का औसत है और न उनका योग। फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही तो संपूर्ण समष्टि नहीं, वह तो समष्टि का एक बिंदु मात्र है। उन्हें तो संपूर्ण समाज का विचार करना होता है।

पूजनीय गुरुजी ने समष्टि का हित ही अपने सम्मुख रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संचालन किया। कई बार वे लोग, जो या तो उन्हें समझ नहीं पाते अथवा समष्टिहित की अपेक्षा किसी छोटे हित को सम्मुख रख कर संघ की गतिविधि का संचालन चाहते हैं, वे श्री गुरुजी की दृढ़ता और सिद्धांतों का आग्रह देखकर उन्हें अधिनायकवादी कह देते हैं,

किंतु वे उस मनोवृत्ति से कोसों दूर हैं। उनका अपना मत कुछ नहीं, संघ का मत ही उनका मत है और उनका मत ही संघ का मत होता है, क्योंकि उन्होंने पूर्ण तादात्म्य का अनुभव किया है।

ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब व्यक्ति और संस्था की प्रतिष्ठा की चिंता न करते हुए उन्होंने राष्ट्र के हितों को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। सन् १९४८ में जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा, उस समय यदि वे चाहते तो शासन की खुली अवज्ञा करके अपनी शक्ति का परिचय दे सकते थे, किंतु उन्होंने संघ के कार्य का विसर्जन करके अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। प्रतिबंध उठने के पश्चात् स्थान-स्थान पर उनका भव्य स्वागत हुआ। दिल्ली में रामलीला मैदान पर जो सभा हुई, उसका आदि और अंत नहीं दिखता था। बड़े से बड़े संत के अहंकार को जगा देने के लिए वह दृश्य पर्याप्त था। जब श्री गुरुजी बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा– 'यदि अपना दाँत जीभ काट ले तो मुक्का मारकर वह दाँत नहीं तोड़ा जाता।' लोग चकित रह गए। उन्होंने आशा की थी कि गुरुजी सरकार के अत्याचारों और अन्याय की निंदा करते हुए खूब खरी-खोटी सुनाएँगे। किंतु उस महापुरुष की गहराई को वे नाप नहीं पाए। वहाँ तो सबके लिए आत्मीयता ही है।

यह आत्मीयता ही उनकी महानता और उनके प्रति व्यापक श्रद्धा का कारण है और उनकी महानता इसमें है कि वे इस आत्मीयता को लेकर चल सके हैं। गत वर्ष 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने भारत के अनेक महापुरुषों के जीवन के ध्येयवाक्य छापे थे। पूजनीय श्री गुरुजी का ध्येयवाक्य सबसे छोटा किंतु समर्पक था– 'मैं नहीं, तू ही।' इन चार शब्दों में श्री गुरुजी का संपूर्ण जीवन समाया हुआ है। यह 'तू' कौन है? संघ, समाज, ईश्वर– वे तीनों को एकरूप करके चलते हैं। तीनों की सेवा में विरोध नहीं, विसंगति नहीं। 'एकहि साधे सब सधे' के अनुसार वे संघ की साधना करके सबकी साधना में लगे हुए हैं। उनका जीवन ही साधना बन गया है।

फलतः संघ के अतिरिक्त वे किसी चीज को नहीं पहचानते। उनकी ध्येयदृष्टि इतनी पैनी है कि लोगों की प्रशंसा और विरोध– दोनों में ही वे विचलित नहीं होते। संघ पर प्रतिबंध लगने के बाद जब कुप्रचार के कारण संघ को शैतान का दूसरा स्वरूप समझा जाता था, तब भी वे अपने ध्येय पर अविचल रहे और जब प्रतिबंध हटने के पश्चात चारों ओर विशाल स्वागत समारोह हुए, वे उस हवा में नहीं बहे।

हम लोग समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। आदि से अंत तक करीब-करीब सारा पत्र पढ़ डाला। इतने में पूजनीय श्री गुरुजी ने कमरे में प्रवेश किया और सहज भाव से पत्र उठाकर इधर-उधर निगाह डाली। सुर्खिया देखीं, पन्ने उल्टे और पत्र रख दिया। बातचीत शुरू हो गई। उसके दौरान संघ-संबंधी एक समाचार, जो उसी पत्र में छपा था, का जिक्र आ गया। 'परंतु वह समाचार है कहाँ? मैने पूछा। 'इसी अखबार में तो है' पूजनीय गुरुजी ने कहा। मैने पूरा अखबार पढ़ा था, मुझे वह समाचार कहीं नहीं दिखा। अखबार लेकर फिर पन्ने उल्टे, पर संघ का वहाँ कहीं नाम भी नहीं मिला। गुरुजी ने मेरी हैरानी देखकर अखबार हाथ में लिया और बताया 'यह है वह समाचार'। बाजार भावों के पन्ने पर एक ओर वह छोटा-सा समाचार छपा था। 'कहाँ छाप दिया है। हम लोग क्या व्यापारी हैं, जो इस पन्ने पर निगाह जाती?' मैंने मन ही मन सोचा। दूसरे ही क्षण विचार आया 'पूजनीय गुरुजी भी तो व्यापारी नहीं, वे तो कोसों दूर हैं, मोल-तोल और भाव-ताव से। उनकी निगाह कैसे गई? और फिर अखबार भी मेरी तरह पूरा नहीं पढ़ा था, सुर्खियाँ ही इतनी थीं, कि जितनी देर वह पत्र उनके हाथ में रहा, पूरी नहीं पढ़ी जा सकती थीं।

मैंने अपनी शंका रखी भी नहीं, पर शायद वे समझ गए। उन्होंने इतना ही कहा– 'भीड़ में भी माँ को अपना बच्चा दिख जाता है, कोलाहल में भी आत्मीयजनों के शब्द साफ समझ में आते हैं।' मेरी समझ में आ गया। उनकी वही आत्मीयता है, जिसके कारण वे उस समाचार को देख सके। अन्य देशों के ऐसे कितने ही समाचार उनकी निगाह में आ जाते हैं। जबकि हम लोग नेताओं के वक्तव्य पढ़ते-पढ़ते ही समाचार-पत्रों को पी जाने की कोशिश तो करते हैं, किंतु अनेक महत्त्वपूर्ण समाचारों को छोड़ जाते हैं। वे अक्सर कहते– 'मैं तो समाचार-पत्र नही पढ़ता। पर मैं कहूँगा कि वे (श्री गुरुजी) ही समाचार-पत्र पढ़ते हैं, हम लोग तो उन्हें देखते हैं और बहुत देर तक देखते रहते हैं।

एक बार उन्हें एक पुस्तक, जो हाल ही छप कर आई थी, दिखाई। पुस्तक उन्होंने हाथ में ली। इधर-उधर देखा और सहज ही एक जगह से खोला। एक वाक्य पढ़ते हुए पूछा– 'यह क्या लिखा है? वहाँ गलती थी। मैंने उसे स्वीकार किया। उन्होंने फिर दूसरा पृष्ठ खोला और वहाँ भी ऐसी ही एक अशुद्धि निकल आई। पुस्तक मैंने ले ली। बाद में फिर से उसे आदि से अंत तक देखा। वही दो अशुद्धियाँ थीं। पूजनीय गुरुजी की निगाह

बिना किसी प्रयास के उन अशुद्धियों पर ही कैसे गई? उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त नहीं थी और न यह कोई तुक्का था, जो लग गया। ऐसे और भी अनुभव आए हैं। कहना न होगा कि यह कार्य की लगन और एकात्मता है, जिसने उन्हें अचूक दृष्टि दी है। उसी दृष्टि के कारण वे प्रत्येक परिस्थिति में सत्य का दर्शन कर लेते तथा भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है, इसका भी आभास पा जाते हैं। आगे की बात कहने के कारण यदि गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया जाए, तो उनकी बातें बड़ी अटपटी-सी लगती हैं, किंतु थोड़े ही दिनों में उनकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है।

सन् १९४७ में उन्होंने भावात्मक राष्ट्रीयता पर बल दिया, एकात्मता की बात कही, राष्ट्रीय चारित्र्य की आवश्यकता बताई, राजनीति की मर्यादाओं का उल्लेख करते हुए सांस्कृतिक अधिष्ठान पर समाज के संगठन का संदेश दिया। पिछले आठ वर्षों ने उनके प्रत्येक कथन को सत्य सिद्ध किया है तथा प्रत्येक नई घटना उसे अधिकाधिक पुष्ट करती जा रही है। मैं तो निःसंकोच भाव से कहता हूँ कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों के बहुत से अगुआ होंगे, किंतु जिसने संपूर्ण जीवन का पूर्णता के साथ आकलन किया और जो बिना किसी मोह या भय के एवं साहस के साथ उस सत्य का उच्चार कर सकता है, ऐसा एक ही व्यक्ति है और वह है– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव गोलवलकर।

(युगधर्म नागपुर, पूर्ति-अंक, जुलाई १९५६)

१७. मृत्युंजय

(प्रो. धर्मवीर, संयुक्त पंजाब में संघ के आधारस्तंभ)

आज परम पूजनीय श्री गुरुजी (माधवराव सदाशिवराव गोळवलकर) हमारे मध्य नहीं हैं। लेकिन नहीं, उनका शरीर हमारे मध्य में नहीं है, वे तो सदा ही हमारे साथ रहेंगे। वास्तव में पहले के समान वही हमारा मार्गदर्शन किया करेंगे।

इस समय मृत्यु के संबंध में उनके विचार हमारे समक्ष हैं। सन् १९४० से पहले की बात है। लाहौर में प्रशिक्षण शिविर लग रहा था। शिविर समाप्त हो रहा था। एक दिन श्री गुरुजी के मन में आया कि पूज्य भाई परमानंद जी के दर्शन किए जाएँ। उन्होंने परमपूज्य डा. हेडगेवार से

इसका उल्लेख किया। उन्हें इसमें कोई आपत्ति न हो सकती थी, क्योंकि स्वयं डा. साहब के अंदर भाईजी के प्रति बहुत श्रद्धा थी।

श्री गुरुजी मुझे साथ लेकर श्री भाईजी के मकान पर गए, जो शिविर के निकट ही था। (शिविर गुरुदत्त भवन में था और भाईजी का मकान उसके पिछवाड़े में शीशमहल रोड पर स्थित था।)

प्रातः का समय था। श्री भाईजी संध्या-वंदन समाप्त करके अकेले ही बैठे थे। श्री गुरुजी ने नमस्कार किया। श्री भाईजी ने उन्हें अपने सामने बैठाया। कुशल-क्षेम के पश्चात् श्री गुरुजी ने कई प्रश्न उनसे किए। उनमें से सबसे अधिक महत्त्व का यह था 'मृत्यु के संबंध में आपका क्या विचार है?'

श्री भाईजी मुस्कराने लगे। 'किसकी मृत्यु?' उन्होंने कहा, 'शरीर की मृत्यु किसी समय भी हो सकती है। आत्मा मरती नहीं। इसलिए जानता वह है, जो यह जानता है कि मेरे लिए मृत्यु है ही नहीं।'

यह सुनकर हम दोनों चकित रह गए। जब हम श्री भाईजी से अनुमति लेकर नीचे गली में चले आए तब श्री गुरुजी ने मुझसे कहा- 'श्री भाईजी कितने विलक्षण है! जीवन-मरण के संबंध में कितनी स्पष्ट कल्पना है। यह शक्ति किसी विरले को ही प्राप्त होती है।'

श्री गुरुजी के इन शब्दों से मुझे मृत्यु के विषय में स्वयं श्री गुरुजी का मत मालूम हो गया।

जालंधर नगर से बाहर दयानंद कॉलेज छात्रावास में गर्मियों की छुट्टियों में प्रशिक्षण शिविर लग रहा था। एक दिन कुँए के पास ठंडी जगह पर कुर्सियाँ बिछाई गईं। श्री गुरुजी, जालंधर-संघचालक और डा. आबा थत्ते बैठे थे। न मालूम कैसे पूर्वाभास की बातें चल पड़ीं। श्री गुरुजी ने बताया, "एक दिन नागपुर के पास ही रामटेक में मुझे जाना था। मेरी माता जी ने मुझे कहा- 'मधु, तुम रामटेक जा रहे हो। जरा अमुक सज्जन को भी देख आना। वे बीमार हैं।' मैंने रामटेक में उन सज्जन को देखा तो पास बैठे डाक्टर बिल्कुल निश्चिंत थे, परंतु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह तो आज ही आज है। फलस्वरूप नागपुर में उस रोज शाम को लौटने पर मैंने माँ से कहा– 'वह तो कल का सूर्य नहीं देखेगा।' (बाद में ऐसा ही हुआ)। माँ ने डाँटते हुए कहा– 'कभी ऐसी बात भी मुँह से निकाला करते हैं? यह कहना भी हो, तो इसके कितने ही दूसरे ढंग हो सकते हैं।' मैं चुप हो गया। अपने मन में संकल्प कर लिया कि आगे से किसी के भविष्य के

विषय में कुछ न कहूँगा।''

मैंने प्रश्न किया– 'क्या ऐसा योगी अपने भविष्य के विषय में भी जान सकता है?'

श्री गुरुजी हँस कर बोले– 'मैं योगी नही हूँ। लेकिन इतना कह सकता हूँ कि जिसने अपना जीवन परमात्मा के हाथ में दे रखा हो, उसे मृत्यु की चिंता नहीं हुआ करती।'

आपरेशन के पश्चात् जब वे पहली बार दिल्ली आए, तब बहुत सी संस्थाओं ने मिलकर उन्हें बधाई दी और परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इस अवसर पर कार्यक्रम के अध्यक्ष दीवान आनंद कुमार (पंजाब विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति) ने बधाई दी और सौ वर्ष की आयु के लिए परमात्मा से प्रार्थना की। इसके उत्तर में श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा– 'मुझे मृत्यु कभी डरा नहीं सकी, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह एक न एक दिन आने वाली है। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि प्रकृति अपने नियमों का पालन करती है। ऐसी अवस्था में हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। जो कर्तव्य जिसके जिम्मे है, उसे वह प्राणपण से निभाता है तो यह उसके लिए पर्याप्त होता है। इससे अधिक की उसे आशा ही क्यों हो? इसके अतिरिक्त मैं तो यह भी जानता हूँ कि संघ में मैं कोई विशेष कार्य नहीं करता। ऊँट की नकेल चूहे के हाथ दे दी गई है। अब क्या चूहा इस बात का गर्व कर सकता है कि मैं ऊँट को चला रहा हूँ।'

जो भी हो, अपनी समझ में तो एक ही बात आती है। भारत के इतिहास में पूज्य डा. हेडगेवार ने हिंदू राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए वह महान प्रयोग किया, जिसका सानी भारत ही नहीं, संसार के इतिहास में नहीं मिलता। इसमें उन्हें सफलता मिली। इस सफलता के अंतःस्थल में कितने ही अन्य कार्यकर्ताओं का हाथ है, परंतु सबसे अधिक उस युगपुरुष का है, जिन्हें हम 'श्री गुरुजी' कहते हैं। आज देश का कोई प्रांत, किसी प्रांत का कोई जिला, किसी जिले की कोई तहसील, किसी तहसील का कोई कस्बा नहीं, जहाँ संघ अपना काम न कर रहा हो। इस देश में ही नहीं, इसके बाहर बर्मा, अफ्रीका, इंग्लैंड, अफगानिस्तान आदि में जहाँ कही हिंदू है, संघ अपना काम कर रहा है। जो व्यक्ति अपने आपको नहीं पहचानते या जो अपने आपको अभी तक मानव नहीं बना पाए, उन्हें छोड़कर शेष

सब संघ का काम करने में गर्व समझते हैं। कारण? इस के कार्यकर्ताओं के समक्ष कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं। एक मात्र हिंदू संस्कृति तथा धर्म ही उनका ध्येय है। संघ को इस दर्जे तक पहुँचाने के लिए श्री गुरुजी ने इस देश की परिक्रमा बीसियों बार की है। इस राष्ट्र के मान की रक्षा के लिए कितने ही दीनदयालों ने अपने प्राण न्यौछावर किए है। परंतु उन सबके लिए स्फूर्ति के केंद्र श्री गुरुजी चले आ रहे हैं, इस कारण वे अमर है

(१७ जून १९७३, पांचजन्य)

१८. मूलगामी दृष्टि

(श्री नानाजी देशमुख, ग्राम विकास के पुरोधा)

विभिन्न विवादास्पद विषयों पर भी गुरुजी सहज भाव से समाधान बता दिया करते थे। जब कभी कोई मार्ग नहीं सूझता था, गुरुजी का मार्गदर्शन काम आता था।

बात उस समय की है, जब पंजाब में भाषा विवाद खड़ा हुआ था। संयोग से दीनदयाल जी की और मेरी नागपुर में गुरुजी से भेंट हुई। कई स्थानीय कार्यकर्ता भी थे। गुरुजी बोले– 'अरे भाई क्या चल रहा है पंजाब में? तुम्हारे नेता लोग क्या कह रहे हैं पंजाबी भाषा के बारे में?'

हममे से कोई कुछ नहीं बोला। कुछ देर बाद गुरुजी स्वयं बोले– 'क्या राजनीति में काम करने वालों का दृष्टिकोण सीमित (दलगत) हो जाता है? वह (दृष्टिकोण) व्यापक नहीं रह पाता? हिंदी राष्ट्रभाषा है, स्वाभाविक रूप से उसके प्रति मोह, उसके विकास के लिए प्रयत्न होना चाहिए। लेकिन पंजाबी भाषा क्या विदेशी भाषा है? क्या वह सांप्रदायिक भाषा है? पंजाबी भाषा एक क्षेत्रीय भाषा है और हमारी अपनी भाषा है। उसका अभिमान होना चाहिए न कि उसका उपहास। यह सिर्फ केशधारियों की भाषा नहीं है। यह कहना भी गलत है कि यह सिर्फ नानकपंथियों की भाषा है। 'गुरुग्रंथ साहब' आदि धार्मिक ग्रंथों में क्या केवल पंजाबी भाषा है? अनेक भाषाएँ मिलती हैं। उन्हें किसी भाषा से नफरत नहीं थी। किसी और को भी उनकी भाषा से नफरत नहीं होनी चाहिए।' कितना स्पष्ट विचार था!

उन्होंने किया हुआ समस्या का विश्लेषण और निदान सत्य की

कसौटी पर भी खरा उतरता था। आंध्र विवाद जब शुरू हुआ तो हमारे लोगों ने वहाँ एक स्टडी टीम भेजी। गुरुजी उन दिनों इंदौर में विश्राम कर रहे थे। मैं भी संयोग से इंदौर में था। उनसे भेंट हुई तब वे बोले– 'तुम्हारी स्टडी टीम वहाँ क्या कर रही हैं? आंध्र और तेलंगाना के अलग होने से कोई कठिनाई नहीं आएगी ? इससे राष्ट्रीय एकता खंडित नहीं होगी? लोगों को सुविधा हो, आर्थिक विकास में पोषण हो और प्रशासनिक दृष्टि से सुविधाजनक हो तो आवश्यकतानुसार प्रांतों की पुनर्रचना राष्ट्रीय एकात्मता के लिए भी आवश्यक रहती है। इसमें स्टडी का क्या प्रश्न है? यह तो स्वयं स्पष्ट हैं। आंध्र-तेलंगाना के प्रश्न को विवादास्पद बनाकर लोगों में असंतोष व हिंसक वृत्ति को बल मिले, ऐसी हठवादिता का क्या अर्थ है?'

गुरुजी के सान्निध्य में जो भी आता था, गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

बात शायद सन् १९४६ या १९४७ की है। काशी के डी.ए.वी. कालेज में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का शिक्षण शिविर लगा था। स्व. डा. संपूर्णानंद जी से मेरे बहुत पहले से संबंध थे। वे इस शिविर के समापन समारोह में पधारे। गुरुजी भी थे। उस समय तो उनसे (डा. संपूर्णानंद से) बातचीत नहीं हो सकी, पर बाद में उनसे मिलने का संयोग हुआ तो वे बोले– 'हम तुम्हारे संघ को देख आए हैं।'

मैंने कहा– 'मैं भी वहाँ था'

वे बोले– 'हाँ, तुम उस दिन मिलिट्री कमान्डर जैसे लग रहे थे।'

मैंने पूछा– 'क्या आपको हमारे कमांडर बनने में कुछ एतराज है?'

उन्होंने जवाब दिया– 'नहीं भाई, ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो कह रहा था कि तुमारे यहाँ बड़ा गजब का अनुशासन है। इस संगठन के पीछे जो तुम्हारे गुरुजी हैं, उनका बड़ा विशिष्ट व्यक्तित्व, बड़ी डायनेमिक और डोमिनेटिंग पर्सनेलिटी है। मतभेद की बात दिखने के बाद भी उनसे विवाद करने की इच्छा नहीं होती। उनसे मिलकर एक आश्चर्य की बात अनुभव हुई कि विवादास्पद विषय का पूर्ण अनुमान कर गुरुजी ऐसा मत प्रकट करते थे कि सामने बैठे व्यक्तियों को एक नये ढँग से सोचने के लिए प्रेरणा मिल जाती है।'

मैंने पूछा– 'बाबूजी, आपने यह सब कहा तो सही, पर बात क्या हुई?'

वे बोले– 'खैर छोड़ो, तुम्हारे गुरुजी के बारे में मेरा ऐसा इंप्रेशन हो गया है। सही या गलत मैं नहीं जानता, यह तुम जानो।'

गुरुजी के सान्निध्य में ही नहीं उनके विचारों और भाषणों से भी अनेक विद्वान और नेता अभिभूत हुए हैं। श्री श्रीप्रकाश जी का संस्मरण समीचीन रहेगा।

महाराष्ट्र के राज्यपाल पद से निवृत्त होकर श्रीप्रकाश जी देहरादून में एक कुटिया बनाकर रह रहे थे। उन्होंने मुझे मिलने के लिए बुलाया। बाद में पता चला कि डा. संपूर्णानंद ने उन्हें लिखा था कि तुम नाना जी को मिलो। गुरुजी की 'बंच ऑफ थॉट्स' पुस्तक को अवश्य पढ़ो। डा. संपूर्णानंद जी ने ही मेरा परिचय श्रीप्रकाश जी से कराया था। उनकी इच्छा देख मैंने 'बंच ऑफ थॉट्स' उन्हें भी भेज दी।

जब मेरा श्री श्रीप्रकाश से साक्षात्कार हुआ तो वे बोल– मैं गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित अवश्य था, किंतु उनका व्यक्तित्व इतना सर्वव्यापी है, इसकी मुझे कल्पना नहीं थी। हो सकता है, कुछ मामलों में मतभेद हो, पर उनका चिंतन बड़ा मौलिक और जड़ को छूने वाला है। इसका आप लोग व्यापक प्रचार क्यों नहीं करते? कोई चीजें तो ऐसी हैं, जिनको व्यवहार में लाया गया तो हिंदुस्थान की सब समस्याएँ हल हो जाएँगी। मैं नहीं समझता था कि तुम्हारे गुरुजी धर्म परिवर्तन किए बिना मुसलमान और ईसाईयों को राष्ट्रजीवन का अंग मानने के लिए तैयार हो सकते हैं। गुरुजी के सारे विचार देखकर लगता है कि यदि मुसलमानों ने थोड़ा-सा भी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया और हिंदुस्थान की गौरवमयी राष्ट्रीय परंपरा का अभिमान रखा, तो तुम्हारे गुरुजी को उन्हें राष्ट्रीय एकात्मता के अंग मानने में कोई एतराज नहीं होगा। यह एक बहुत बड़ी बात मैं गुरुजी की समझ पाया हूँ। गुरुजी के उस विचार से मतभेद नहीं रखा जा सकता। मेरे मन में उनके प्रति आदर बढ़ गया है।'

दीनदयाल जी के प्रति गुरुजी के मन में बड़ा स्थान था, बड़ा स्नेह और अटूट विश्वास।

बात उस समय की है जब कालीकट के अधिवेशन के पूर्व दीनदयाल जी जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। कालीकट के अधिवेशन के बाद हम लोग कार से बंगलौर होते हुए डोंडबल्लापुर पहुँचे। वहाँ संघ कार्यकर्ताओं का एक वर्ग लग रहा था। गुरुजी संघ कार्यकर्ताओं को

मार्गदर्शन दे रहे थे। कार में दीनदयाल जी, सुंदरसिंह जी भंडारी जगन्नाथराव जी जोशी भी थे। हम लोगों को देखते ही गुरुजी बोले– 'तुम सब नेता लोग यहाँ कहाँ आ गए?'

भोजन, विश्राम के बाद गुरुजी के साथ चाय के लिए बैठे। गुरुजी का बौद्धिक होने वाला था। चाय के समय गुरुजी बोले– 'आज दीनदयाल बोलेगा।'

हम सब आश्चर्यचकित रह गए। किसी ने कहा कि वर्ग में सभी लोग आपसे मार्गदर्शन पाने के लिए एकत्रित हुए हैं। सभी कार्यक्रम आप ही को लेने हैं। गुरुजी बोले– 'नही भाई, दीनदयाल ही बोलेगा। फिर किसी ने कहा, 'गुरुजी वे तो जनसंघ के अध्यक्ष हैं।' गुरुजी ने तत्काल उत्तर दिया– 'नहीं, दीनदयाल स्वयंसेवक है। स्वयंसेवक के नाते बोलेगा, जनसंघ अध्यक्ष के रूप में नहीं। और वस्तुतः दीनदयाल जी का जब बौद्धिक हुआ, तो गुरुजी ने भी बहुत सराहा।

(पांचजन्य ८ जुलाई, १९७३)

१९. सबके अपने

(श्री पांडुरंगपंत क्षीरसागर, नागपुर कार्यालय प्रमुख)

ग्वालियर के एक ख्यातनाम वृद्ध गायक स्व. राजाभैया पूँछवाले सन् १९५१ या ५२ में, नागपुर विद्यापीठ की संगीत परीक्षा लेने नागपुर आए हुए थे। परमपूजनीय श्री गुरुजी नागपुर में हैं, यह ज्ञात होने पर संघ कार्यालय में आकर वे उनसे मिले। श्री राजाभैया की ख्याति गुरुजी ने सुनी थी। पर ७५ वर्ष के वृद्ध तथा अर्धांगवायु से पीड़ित होने के कारण वे कहाँ तक जा सकेंगे। यह हमारी खुसपुस, राजाभैया के ध्यान में आ गई। उन्होंने गुरुजी से कहा– 'मुझे आपको गाना सुनाना है।'

सारी स्थिति को भाँपकर श्री गुरुजी ने हमें बुलाया और कहा कि कार्यालय में ही आज रात राजाभैया के गायन हेतु व्यवस्था करो। आदेश के अनुसार हार्मोनियम व तबला लाया गया। उन्हें बजानेवाले भी आए और गायन का कार्यक्रम हुआ। भाऊजी गोळवलकर, भाऊसाहेब काळीकर आदि ५-७ लोगों के साथ कार्यालय के हम १५-२० लोग थे। गायन शुरू हुआ।

संघ के प्रचंड काम के रहते गायक, कलाकार, लेखक, कवि आदि

सभी से वे परिचय रखते एवं उनके योग्य गुणों का गुणवर्णन करते।

परमपूजनीय डा. हेडगेवार की स्मृति में नागपुर में रेशमबाग में स्मृतिमंदिर का निर्माण करना निश्चित हुआ। पुणे के स्थापत्य विशारद श्री बाळासाहेब दीक्षित पर यह दायित्व सौंपा गया। उन्होंने तुरंत काम प्रारंभ किया। मंदिर के नक्शे पुणे के ख्यातनाम आर्किटेक्ट श्री उद्धवराव आप्टे से तैयार करवाए। मूल नक्शे में स्मृतिमंदिर में जो कमानें दिखाई गई थीं, वे मुगल आर्किटेक्चर की थी। श्री आप्टे ने भी यह मान्य किया। श्री आप्टे श्री दीक्षित और कुछ हम लोग श्री गुरुजी से जब कार्यार्थ मिले, अलग-अलग कल्पनाएँ सूझने लगीं। परमपूजनीय गुरुजी ने एक कागज लिया। फांऊटनपेन से एक ही रेषा में एक कमान निकाली। वह एक धनुष्य था। श्री आप्टे ने यह कल्पना एकदम पसंद की। उसी से आज धनुष्याकृति बनी कमान हम देखते हैं।

पूजनीय श्री गुरुजी के अनेक मित्र अन्यधर्मीय थे। नागपुर के एडवोकेट शमदाद अली उनमें से एक। श्री गुरुजी से मिलने वे संघ कार्यालय पधारे। उनकी आँखों में पीड़ा थी। श्री गुरुजी ने उनके उपचार की व्यवस्था सीतापुर में करा दी। नागपुर मे ही श्री जाल पी. गिमी, श्री डी.पी.आर.कासद, श्री बैरामा जी आदि पारसी लोगों से उनके स्नेहपूर्ण संबंध थे। श्री जाल पी. गिमी तो विजयादशमी पर श्री गुरुजी को सोना देने आते थे। प्रोफेसर जिलानी से भी उनके अच्छे संबंध थे।

पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जी के स्मृतिमंदिर के निर्माण हेतु जोधपुर और मकराणा से पत्थर तो लाया गया, पर कारीगर कहाँ से आते? उन कठिन पत्थरों पर काम करने के लिए सोलापुर के वडार कारीगर तैयार नहीं थे। श्री बाळासाहेब इसपर राजस्थान गए और उन्होंने जानकारी प्राप्त की। इस काम के लिए एक ठेकेदार हकीमभाई की नियुक्ति की। पूजनीय गुरुजी ने उसे खुशी से सम्मति दी। हकीमभाई नागपुर में दो वर्ष रहे। अपनी प्रत्येक भेंट में श्री गुरुजी उनकी तथा उनके २०-२२ लोगों की पूछताछ करते। उसी समय उषा भार्गव कांड पर जबलपुर में उपद्रव हुआ। नागपुर के कुछ लोगों ने हकीमभाई के लोगों को डर दिखाया। १-२ तो राजस्थान लौट गए, पर बाकी को हकीमभाई ने श्री गुरुजी का नाम बताकर रोक लिया। काम पूरा करा लिया। एक-दो बार इन सभी कारीगरों का चायपान भी श्री गुरुजी के साथ कार्यालय में हुआ। वे सभी विश्वास

से काम में जुटे रहे।

स्मृतिमंदिर का काम पूर्ण होने पर श्री हकीमभाई के आग्रह पर श्री गुरुजी ने एक प्रमाणपत्र अपने हाथों लिखकर उन्हें दिया। हकीमभाई ने वह फ्रेम कर रखा है। इसके बाद श्री गुरुजी का राजस्थान में जब-जब प्रवास होता, उस क्षेत्र में रहे तो हकीम भाई संघ की काली टोपी पहनकर उपस्थित रहे।

नागपुर के संघ कार्यालय में 'नारायण चापके' नामक एक चर्मकार नियमित रूप से दोपहर को आता है। जूते-चप्पल, दुरुस्ती का काम हो तो वह करता है। दिनभर घूम-घूम कर थकने से कार्यालय की छाँह में विश्रांति लेता है। उनका यह क्रम १५-२० वर्षों से है। उसकी पूछताछ करना गुरुजी कभी नही भूले। पूजनीय गुरुजी के निधन का समाचार सुनकर वह बेचैन हो गया। अश्रुपूर्ण नेत्रों से गुरुजी को श्रद्धांजलि अर्पण करने ६ तारीख को कार्यालय में आया, वह दृश्य देखने लायक था।

कार्यालय का एक पुराना रसोइया, जो अब लगभग व्यवस्थापक है– मंगलप्रसाद से गुरुजी के अत्यंत निकट के संबंध थे। अंतिम दो माह में गुरुजी के पथ्य और भोजन की व्यवस्था मंगलप्रसाद पर थी, वह उसने अत्यंत चोखे ढँग से रखी। गुरुजी की प्राणज्योत शांत हुई तो वह अत्यंत उदास हो गया, अभी भी हमेशा की मनःस्थिति में नहीं है।

मंगलप्रसाद के कामकाजी भाई के देहांत का समाचार गुरुजी को मिला, तो उन्होंने शोक संवेदना का पत्र लिखा था। उसका प्रारंभ था– 'परममित्र पंडित मंगलप्रसाद मिश्र, सप्रेम नमस्ते।' यह पढ़कर मंगलप्रसाद का हृदय भर आया था।

कार्यालय के कार्यकर्ता ही नहीं तो छात्रों, नौकरों की पूछताछ वे करते। किसी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा तो उससे मिलने उसके कक्ष में जाते। उसकी व्यवस्था, औषधोपचार ठीक है या नहीं, इसपर ध्यान देते। ऐसे, वे सबके अपने थे।

उनके साथ रहते हुए कभी लगता ही नहीं था कि वे इतने बड़े संगठन के प्रमुख हैं। उनके व्यवहार के कारण वे सबके अपने थे।

(पुणे तरुण भारत, श्री गुरुजी श्रद्धांजलि विशेषांक)

२०. जागरूक दूरदर्शिता

(श्री प्रकाशवीर शास्त्री, राजनेता)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक माननीय श्री गुरुजी तेजस्वी दूरदर्शी तथा तपस्वी राष्ट्रनेता थे। उनका व्यक्तित्व चमत्कारी तथा कृतित्व प्रेरणादायक था। उन्होंने संघ के सरसंघचालक के रूप में पूरे ३३ वर्षों तक हिंदू समाज व राष्ट्र की जो सेवा की वह भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। भारत विभाजन के दौरान श्री गुरुजी के तेजस्वी व कुशल नेतृत्व में संघ के स्वयंसेवकों ने पंजाब, दिल्ली में जान पर खेलकर भी लाखों निरीह नर-नारियों की आततायियों से जिस प्रकार रक्षा की तथा दिल्ली व अन्य नगरों को अराष्ट्रीय तत्त्वों के षड्यंत्र से ध्वस्त होने से बचाया, उससे संघ के राष्ट्रप्रेम व साहस का ज्वलंत प्रमाण मिलता है। दिल्ली को आग में स्वाहा होने से बचाने का श्रेय श्री वसंतराव ओक तथा अन्य स्वयंसेवकों को है, यह सरदार पटेल तक ने स्वीकार किया था।

श्री गुरुजी से भेंट करने, उनके साथ भोजन करने तथा उनके हास्य-विनोद में शामिल होने का मुझे अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी विनम्रता, निरहंकारिता, स्नेह तथा तपस्वी जीवन बरबस ही दूसरे को अपना बना लेने की अपूर्व क्षमता रखते थे। उनके ऋषियों जैसे व्यक्तित्व में एक अजीब आकर्षण था तथा उनके दर्शन करते ही बरबस सिर श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता था। बड़े-बड़े नेताओं से लेकर प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री तक को मैंने उनके समक्ष नतमस्तक होते स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

सन् १९६५ में पाकिस्तान के आक्रमण के समय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने पहली बार भेदभाव को त्याग कर सभी राष्ट्रवादी दलों के नेताओं को राष्ट्र पर आए संकट के मुकाबले में सहयोग व सुझाव देने के लिए आमंत्रित कर एक स्वस्थ परंपरा का शुभारंभ किया। उस बैठक में श्री गुरुजी को भी आमंत्रित किया गया तो कम्युनिस्टों तथा अन्य तत्त्वों ने बवेला मचाने का भरसक प्रयास किया, किंतु श्री लालबहादुर जी ने स्पष्ट रूप से यह कह कर कि सबकी राष्ट्रभक्ति असंदिग्ध है, विरोध करनेवालों का मुँह बंद कर दिया था।

उस बैठक में मुझे श्री गुरुजी में तेजस्वी व राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत व्यक्तित्व की झलक देखने को मिली थी। श्री अन्नादुराई के प्रेरक भाषण

के बाद श्री गुरुजी ने केवल चंद शब्दों में उपस्थित सभी नेताओं को स्तब्ध कर दिया था। उन्होंने कहा था–

'जब देश के विभाजन के समय अंधकार की घटाएँ छाई हुई थीं, तब संघ ने राष्ट्र व समाज की रक्षा के रूप में दीपक जलाकर उस घोर अंधकार में प्रकाश की किरणें फैलाने का प्रयास किया था। अनेक स्वयंसेवकों ने अपने प्राण देकर भी समाजबंधुओं के प्राणों की रक्षा की थी। आज हम पुनः राष्ट्र पर हुए आक्रमण के प्रतिकार के लिए जी जान से तत्पर हैं। जिस मोर्चे पर खड़ा होने को कोई उद्यत न हो, उसपर मैं और स्वयंसेवक आपको तैयार खड़े मिलेंगे।'

उनके उपर्युक्त वाक्य सुनकर उपस्थित सभी नेताओं के हृदय आशा व प्रेरणा से फूल उठे थे। मैंने देखा कि श्री लालबहादुर शास्त्री जी स्वयं उस तपस्वी नेता के अंतःकरण के उन उद्गारों को सुनकर फूले न समाए थे। इसके बाद संघ के स्वयंसेवकों ने जिस प्रकार युद्ध में सहयोग दिया, ट्रैफिक व्यवस्था से लेकर रक्तदान तक में बढ़-चढ़कर भाग लिया, वह किसी से छिपा नहीं है।

सन् १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, उसी दौरान एक दिन मुझे श्री गुरुजी से भेंट का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री गुरुजी देश के पहले नेता थे, जिन्होंने आक्रमण से पूर्व ही चीन के आक्रमण की चेतावनी देश को दे दी थी तथा भारत को सैनिक दृष्टि से तेजी से तैयारी करने का आह्वान किया था।

भेंट के दौरान जब मैंने उनकी दूरदर्शिता के विषय में कहा, तब उन्होंने गंभीर होकर कहा कि 'इस देश के शासक आज भी तटस्थता का राग अलापने में लगे हुए हैं। गंगा के तट पर पड़ा तिनका अपने को तटस्थ कहे तो यह उसका व्यर्थ का ही अहंकार है। जल के एक झोंके से उसका यह अहंकार छूमंतर हो जाएगा। हाँ, यदि कोई पहाड़ कहे कि मैं तटस्थ हूँ तो वह अवश्य बड़ी-बड़ी आँधियों के वेग को सहन करने की क्षमता रखता है। अतः उसका कथन ठीक है।'

कहने का अर्थ यही है कि श्री गुरुजी तटस्थता की नीति को समर्थ व शक्तिशाली होने के बाद ही सार्थक मानते थे। धर्मवीर डा. मुंजे व वीर सावरकर की तरह वे भारत के सैनिकीकरण के प्रबल समर्थक थे। वे डा. मुंजे द्वारा स्थापित स्कूल की तरह देशभर में सैन्य शिक्षा देने वाले विद्यालयों

की स्थापना के आकांक्षी थे।

श्री गुरुजी देश को कम्युनिस्ट तानाशाही के खतरे से बचाने के लिए चिंतित रहते थे। वे जहाँ अमरीका के भारत पर सांस्कृतिक आक्रमण को भीषण खतरा समझते थे, वहाँ कम्युनिस्ट देशों के संकेत पर देश को खून में डुबो डालने के कम्युनिस्ट कुचक्र के खतरे से भी पूरी तरह सावधान थे। प्रजातंत्र की सफलता के लिए वे एक स्वस्थ व सबल विरोध पक्ष की आवश्यकता अनुभव करते थे।

सन् १९६९ में दिल्ली में लाला हंसराज गुप्त के निवास स्थान पर मुझे श्री रघुवीर सिंह शास्त्री तथा श्री शिवकुमार शास्त्री के साथ जाकर उनसे काफी देर तक विचार-विनिमय का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने देखा कि वे स्वयं इस बात के आकांक्षी थे कि भारत के प्रति पूर्ण निष्ठा रखनेवाले सभी दल एक सशक्त शालीन व स्वस्थ विरोध पक्ष के रूप में उभर कर सामने आएँ। क्योंकि वे स्वयं राजनीति से अलिप्त थे, अतः इस कार्य में सक्रिय भाग ले नहीं सकते थे।

श्री गुरुजी का विनोदपूर्ण स्वभाव ही उनके स्वास्थ्य, सफलता तथा कर्मठता का रहस्य था। वे बड़ों के साथ बड़ों जैसी बातें करते, तो बच्चों में बैठकर बच्चे का स्वरूप धारण कर लेते थे।

एक बार इंदौर में आयोजित आर्यसमाज के सम्मेलन में भाग लेने गया, तब पता चला कि श्री गुरुजी, पं. रामनारायण जी शास्त्री के यहाँ विराजमान है। मैं उनके दर्शनों का मोह न छोड़ पाया तथा वहाँ जा पहुँचा।

मैंने हँसी मजाक के बीच कह दिया– 'शास्त्रों में वैद्य के नमक को अच्छा नहीं कहा गया है।' वे मेरे कथन को सुनकर ठहाका लगाकर हँस पड़े तथा तपाक् से बोले 'वैद्य, डाक्टरों व शमशान की संगत से जीवन के प्रति मोह व भय कम होता है, यह भी तो शास्त्रों में कहा गया हैं।' मैं उनके प्रत्युत्तर को सुनकर अवाक् रह गया। वे अत्यंत कुशल हाजिरजवाब थे।

श्री गुरुजी आज हमारे बीच नहीं हैं, किंतु राष्ट्र व हिंदू समाज की रक्षा व सेवा के लिए संघ के रूप में जो वरदान वे छोड़ गए हैं, वह सदैव उनके लक्ष्य पर चलकर सफलता प्राप्त करता रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। वे राष्ट्रपुरुष थे तथा राष्ट्र उनसे सदा प्रेरणा ही लेता रहेगा।

(पांचजन्य, ८ जुलाई १९७३)

२१. एक्सरे एक रोगी का

(डा. प्रफुल्ल बी. देसाई, मुंबई, कैन्सर रोग विशेषज्ञ)

आज से ठीक ३ वर्ष पूर्व एक वर्ष आँधी वाली रात को मेरे एक सहयोगी ने मुझे फोन किया और पूछा कि क्या श्री गुरुजी गोळवलकर की डाक्टरी परीक्षा करने का समय दे सकता हूँ।

अगले प्रातः में उन्हें देखने चल दिया। कार की गति के साथ ही अनेक विचार भी मेरे मस्तिष्क में दौड़ रहे थे। हमने गोळवलकर जी के बारे में बहुत पढ़ा और सुना था। हमें मालूम था कि उन्हें अपनी मान्यताओं के प्रति अटूट आस्था है तथा उनकी मान्यताएँ हिंदूराष्ट्र एवं हिंदुत्व पर दृढ़ व अचल हैं और यह कि इस संबंध में वे बहुत ही कट्टरपंथी एवं संकुचित हैं। मैं इस अंतिम विषय में कितना गलत था यह बाद में पता चला। यही कारण था कि मैं दर्शन करने को उत्सुक था और मैं सोच रहा था कि चिकित्सा के विषय में आश्वस्त करने में आज एक विकट व्यक्ति का सामना करना पड़ेगा।

उनका निर्बल और कृश शरीर उनके विषय में मेरी पूर्व जानकारी और कल्पना तथा धारणा के बिलकुल विपरीत था।

पहली ही भेंट में मुझे पता चल गया कि मैं एक गंभीर दृष्टि वाले ज्ञानेच्छुक व्यक्ति के सामने हूँ। वह व्यक्ति तर्कशील है, विनम्र है, प्रबुद्ध है और दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को सुन सकता है, उन्हें समझ सकता है। प्रारंभिक बातचीत से ही मैंने उनके व्यक्तित्व के विषय में बहुत कुछ जान लिया।

'तो डाक्टर, मेरे रोग के विषय में आपका क्या विचार है?' उन्होंने शुद्ध हिंदी में प्रश्न किया।

उनकी तरह शुद्ध हिंदी में बोलने का अभ्यास न होने से मैंने सीधी सादी डाक्टरी भाषा में कहा– 'आपकी दशा से कैन्सर की संभावना का संदेह हो रहा है। इसका ठीक पता लगाने और चिकित्सा हेतु शल्यक्रिया आवश्यक होगी।'

मेरे इस निदान से वे जरा भी नहीं घबराए, जैसा कि आमतौर पर साधारण आदमियों के साथ होता है।

कुछ पल सोचकर गुरुजी ने कहा– 'यदि कैन्सर ही है तो मेरी राय

में उसे यों ही रहने दें। अच्छा, डाक्टर क्या आपको आशा है कि आप उसे ठीक कर लेंगे?'

उन्हें इस रोग और मानव शरीर पर उसके कुप्रभावों का पूरा ज्ञान था।

'क्या यह अन्यत्र भी पहुँच गया है?' उनका अगला प्रश्न था।

उनके जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति को आश्वस्त करने के लिए मुझे तत्काल उत्तर देना था। मैंने कहा, 'यह अपनी राय की बात है। लेकिन इसे यों ही छोड़ दिया जाए, इससे मैं सहमत नहीं हूँ। कैन्सर से निरोग होना इस पर निर्भर है कि रोग कितना व्यापक है। इसका पता आपरेशन से ही चल सकेगा और उसके बाद ही चिकित्सा का प्रकार निश्चित किया जाएगा। इसको यों ही छोड़ देना किसी जलपोत को हिमखंडों की तरफ बढ़ते हुए छोड़ देने के समान होगा। आपकी चिकित्सा करना, स्थिति को सँभालना हो तो, अर्थात् प्रत्यक्ष संकट से आपको दूर ले जाना होगा। अभी यह अन्यत्र नहीं फैला है, किंतु कितना है, इसका पता आपरेशन से ही चलेगा।'

गुरुजी ने स्थिति समझ ली और वे चुप हो गए। शायद विचारमग्न या आत्मदर्शन करने लगे थे। लम्बी चुप्पी के बाद वे बोले– 'अब तो मुझे आपरेशन कराना ही होगा।' उन्होंने धीरता से कहा। उसके बाद वे जैसे अपने विचारों को स्वर देने लगे। अनेक लोगों से मिलना, कार्यक्रम, उत्तरदायित्व, प्रवास आदि जिनकी योजना वे बना चुके थे, के बारे में निर्णय लेना था। उनके साथियों तथा सचिव को आवश्यक आदेश भेज दिए गए। गुरुजी ३० जून १९७० को अस्पताल में भर्ती हो गए और १ जुलाई १९७० को कैन्सर का आपरेशन कर दिया गया।

इस पहली भेंट में ही उनके गरिमामय व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ उजागर हो गई थीं। ज्ञान और विज्ञान को स्वीकार करने की उनकी इच्छा का पता चल गया था।

अपनी शारीरिक दशा के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु उन्होंने कुछ प्रश्न किए थे। उनकी यह आतुरता उनके मस्तिष्क की अंतर्भेदी दृष्टि की द्योतक थी। विषम स्थिति का सामना करने के उनके साहस का परिचायक थी। उनके धैर्य, दूरदर्शिता और अपने काम के प्रति निष्ठा का अगाध प्रमाण थी।

मैंने उनसे कहा था कि आप इससे मुक्त होंगे तो भविष्य में आपके कार्य में बाधा नहीं पड़ेगी। इसके उपरांत उन्होंने तर्क नहीं किया था।

६५ वर्ष की आयु होने पर भी उन्होंने शल्यक्रिया के बाद ही अनुकूल लक्षण प्रस्तुत किए थे। आपरेशन के अगले दिन वह उठ बैठे थे और चलने-फिरने लगे थे। अस्पताल में उनके तीन हफ्ते के निवास ने मुझे उनके मन और व्यक्तित्व का अध्ययन करने का काफी लंबा अवसर प्रदान किया था। उनसे हुई अनेक भेंटवार्ताएँ मेरे जैसे आदमी के लिए ज्ञानवर्धन का माध्यम सिद्ध हुईं। उनके अंतर्चरित्र को स्पष्ट करनेवाली कुछ घटनाएँ मैं नीचे दे रहा हूँ।

वे अपने रोग की गंभीरता एवं व्यापकता के विषय में पूर्ण जानकारी और अपने जीवन की संभावना के बारे में जानना चाहते थे। मैंने सत्य को उनसे छिपाया नहीं था। सभी बातें साफ-साफ बता दी थीं।

'ओह! तब तो ठीक है।' उन्होंने कहा था– 'इतने दिन बहुत हैं और मेरे पास इतने दिनों के हेतु काफी काम हैं।''

आपरेशन के सात दिन बाद गुरुजी मुंबई के उपनगर की एक सभा में गए। उन्होंने वहाँ जाने की आज्ञा डाक्टरों से ले ली थी। मैंने उनसे कहा था कि मैं आपको चला जाने दूँगा बशर्ते आप भाग न जाएँ। इस पर उन्होंने यह कह कर अपनी विनोदप्रियता का परिचय दिया था कि– 'क्या मैं चोर-उचक्का लगता हूँ?'

जितने दिन वे अस्पताल में रहे, वहाँ विनोद और खुशी का वातावरण छाया रहा।

उनके व्यक्तित्व की पूर्ण मीमांसा करने के लिए कोई भी विशेषण उचित और उपयुक्त नहीं लगता। वे एक दार्शनिक व गहन अध्ययनकर्ता थे। मानव, पदार्थ, घटनाक्रम का अपरिसीम ज्ञान उन्हें था। उनकी विचारधारा में विज्ञान, धर्म और संस्कृति का समान समावेश था।

एक दिन उन्होंने कहा था– 'मानव के प्रत्येक विकास के लिए विज्ञान परमावश्यक है।' यह सुनकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ था, क्योंकि यह शब्द एक अगाध धार्मिक आस्थावाले व्यक्तित्व ने कहे थे। वे उन लोगों में से नहीं थे जो अपना दर्शन और अपनी आस्था दूसरों पर थोपते हैं। किंतु वे अपनी मान्यताओं और कथनी के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। उन्होंने कहा था– 'जो मेरी दृष्टि में सत्य और न्यायपूर्ण है, मैं उसके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहा हूँ और रहूँगा।'

यही एक वाक्य उनकी अंतर्भावना और साहस का संक्षिप्त परिचय

था और इस प्रश्न का उत्तर भी था कि उनके अधिक अनुयायी क्यों हैं।

गुरुजी अस्पताल के अल्पकालीन निवास में भी अपना सारा कार्य कर रहे थे। आपरेशन के बाद की गई चिकित्सा भी उनके अनुकूल रही थी। अस्पताल आने की पूर्व संध्या को उन्होंने कहा था कि 'मनुष्य को मृत्यु की चिंता नहीं करनी चाहिए। सभी को मरना होगा। जीवन की अवधि नहीं, उसकी उपयोगिता का महत्त्व होता है। मेरे सामने एक लक्ष्य है और मैं चाहता हूँ कि अंतिम श्वास तक मैं उसके हेतु प्रयत्नशील रह सकूँ।'

मुझे तब ऐसा लगा था कि वे एक ऐसे पुरुष हैं, जो अपना काम पूरा कर लेने के लिए बहुत ही आतुर हैं।

बाद के दो वर्ष वे बहुत ही स्वस्थ्य और कर्मण्य रहे थे। मेरी आशा के विपरीत उनका जीवन बहुत आगे तक चलता रहा। उनके रोग की गंभीरता के कारण मैं उनके अपरिहार्य अंत के प्रति बहुत भयाक्रांत था।

वे एक उल्लेखनीय और बहुत ही सहज रोगी थे। जब भी मुंबई आते थे, परीक्षण के लिए अस्पताल आया करते थे। एकबार मैंने पूछा– 'युवा पुरुष के क्या हाल हैं?'

'दिन पर दिन युवा होता जा रहा है', उन्होंने उत्तर दिया था।

समय किसी को नहीं छोड़ता अतएव उसने गुरुजी को भी नहीं छोड़ा। इस वर्ष फरवरी या मार्च से उन्हें फिर कष्ट होने लगा था। यद्यपि वे कार्यशील थे, परंतु मृत्यु की छाया उनके निकट आती जा रही थी। अप्रैल में लिए गए एक्स-रे से पता चला था कि रोग अत्यंत गंभीर हो गया है। उसके बाद के घटनाक्रम को और लिखने को अब शेष ही क्या बचा है?

इस आलेख का यह उद्देश्य नहीं है कि गुरुजी को मृत्यूपरांत उस रूप में दर्शाया जाए, जो वे जीवन में नहीं थे। वह व्यक्ति, जिसने एक भयंकर रोग के शारीरिक और मानसिक आघात का धीरज और साहस से सामना किया; वह व्यक्ति, अपने देश के हेतु जिसकी मान्यताएँ और आस्थाएँ निष्ठापूर्ण थी; जो उन आस्थाओं से कभी डिगा नहीं; वह व्यक्ति, जो शरीर से दुर्बल और कृश था, किंतु जिसमें अखंड अथाह क्रियाशीलता थी; जिसमें अनुशासन था; आगे बढ़ने की आतुरता थी; वह व्यक्ति जिसने गलत को सही राह पर लाने के लिए अथक प्रयास किया; वह थे– गुरुजी गोळवलकर।

बड़े दुःख की बात है कि वह व्यक्ति अब हमारे बीच नहीं हैं, किंतु मुझे इस बात का गर्व है कि थोड़े समय के लिए ही सही मैं उन्हें पहचान सका था। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसे व्यक्तित्व के चरण इस धरती पर पड़े थे।

(पांचजन्य, ८ जुलाई, १९७३)

२२. वास्तविक संन्यासी
(संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

ऐसे युगपुरुष कभी-कभी ही प्रादुर्भूत होते हैं। वे जिस कुल में प्रकट होते हैं, उस कुल को पावन बना जाते है। जिन माता-पिता से पैदा होते हैं, उन्हें कृतार्थ कर जाते हैं। वह वसुंधरा परम भाग्यवती बन जाती है, जहाँ पर वे प्रकट होते हैं। वे किसी एक देश के, किसी एक जाति के नही होते, वे संसार की एक सार्वजनिक निधि होते है। हमारे गोलवलकरजी ऐसे ही महापुरुषों में थे। ऐसे पुण्यश्लोक पुरुष अवनि के अद्वितीय आभूषण होते हैं। गोळवलकर जी धर्मात्मा थे। वे सतत मानवधर्म का पालन करते थे, नित्य नियम से सन्ध्यावंदन किया करते थे, धर्म के जो धृतिक्षमादि दश लक्षण हैं, उनका वे सहज भाव से पालन करते थे।

पद, प्रतिष्ठा, पैसा, प्रमदा तथा कीर्ति जो लोकधर्म तथा जैव धर्म है, उनसे वे बड़ी सावधानी से बचे रहते थे। हम लोग जो अपने को साधु-संत कहते हैं, गृहत्यागी होने पर भी मठ, मंदिर, आश्रम, पैसा, प्रतिष्ठा के चंगुल में किसी-न-किसी प्रकार फँसे ही रहते हैं। किंतु वे घर में रहते हुए भी इन सबसे सर्वथा दूर ही बने रहते थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक बनकर सतत इस संस्था की सेवा में संलग्न रहते, किंतु उस संस्था के प्रति उनको मोह नहीं था। मोह तो उनको किसी से नही था। किसी ने एक लक्ष रुपए उन्हें दिए और कह दिया- 'आप इसे चाहें जिस कार्य में व्यय कर दें।' यद्यपि संघ उस समय आर्थिक संकट में था, किंतु उन्होंने कहा- 'अमुक स्वामी जी की संस्था को आर्थिक सहायता की आवश्यकता है, उन्होंने एक बार मुझसे कहा था, ये रुपए उन्ही की संस्था में लगा दिए जाएँ।'

कभी एक पैसा रखना नहीं, किसी से याचना नहीं, कोई संग्रह नहीं। एक कमंडलु, एक वस्त्र- यही उनका संग्रह था। परिव्राजक संन्यासी

की भाँति पूरे भारतवर्ष की एक वर्ष में दो परिक्रमाएँ करते रहना, यही तीस वर्षों तक उनका व्यापार था। संन्यासी की भाँति जिसके घर ठहरे, जो भी, जैसा भी भोजन मिल गया, उसी पर निर्वाह। मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा से बहुत दूर। एक दिन मुझसे बोले– 'महाराजजी, लोग समझते हैं कि मैं राष्ट्रपति बनने के लिए ऐसा संगठन कर रहा हूँ। मैं तो जीवन में कोई पद स्वीकार करनेवाला नहीं, ऐसा ही फक्कड़ बना रहूँगा।' सो वे जैसे संघ में प्रविष्ट हुए, वैसे के वैसे ही चले गए। जैसी चद्दर ओढ़ी थी, उसे बिना मैली किए उतारकर रख गए।

साधु पुरुषों के प्रति आस्था के कारण नाममात्र के वेशधारी साधु को भी वे सबके सम्मुख प्रणाम करते थे। मैं तो नगण्य हूँ, फिर भी वे मेरा अत्यधिक आदर करते, सबके सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते, यह उनकी महानता थी। आदर करनेवाला आदरणीय से श्रेष्ठ होता है।

कामतृष्णा तो उनके समीप फटकने नहीं पाती थी; न घर की कामना, न परिवार की कामना, न धन-कामना, न लोकेषणा की कामना। नागपुर में मैं उनके घर पर गया हूँ। एक टूटा-फूटा-सा निर्धनों का-सा किराए का घर था। केवल माता-पिता थे; न भाई, न बहन, न कोई सगा संबंधी। माता-पिता के संतोषार्थ घर से संबंध रखते थे। प्रतिदिन ताई, भाऊजी से मिलने जाते थे। माता-पिता परम सात्विक भोले-भाले। तीर्थयात्रा प्रसंग में वे हमारे आश्रम में आए थे। मैं भी उनके घर गया था। उस घर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह इतने ख्यातनाम महापुरुष का घर है। माता-पिता जब तक जीवित रहे, उस घर से संबंधित रहे। उनके देहांत के पश्चात् संघ-कार्यालय का एक कोना यही उनका निवास, कार्यालय तथा सब कुछ था। त्याग की वे सजीव साकार मूर्ति थे।

दूसरों के दोष वे न देखते न सुनते थे। मैंने जब नेहरू जी के विरुद्ध चुनाव लड़ा, उसके पश्चात् वे आश्रम में आए। एक पंडित ने श्लोकों द्वारा यह बताया कि 'नेहरू जी ने कश्मीरी लड़कियों का नारी-कवच बनाकर विजय प्राप्त की।' इसे सुनकर उन्होंने अप्रसन्नता प्रकट की। वे किसी की भी निंदा सुनना नहीं चाहते थे।

उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य जनताजनार्दन की, असंगठित, अपने लक्ष्य से च्युत हिंदूसमाज की सेवा करना ही था। वे सतत सेवा में ही संलग्न रहते। अपने तन-मन से जिसकी भी जितनी सेवा हो जाए,

उतनी ही करने को वे सदा सन्नद्ध रहते।

सेवा से समय निकालकर वे भगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करते। मैं पहले उन्हें सेवापरायण एक सार्वजनिक नेता ही समझता था। जब पाँच दिन श्रीबद्रीनाथजी में मैंने उन्हें भागवत चरित की भ्रमरगीत की कथा सुनाई, तब मुझे पता चला उनका हृदय तो भगवद्भक्ति से ओतप्रोत है। पाँच दिनों तक मैं जितनी भी देर कथा सुनाता, उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होते रहते। ऐसा श्रोता तो जीवन में मुझे दूसरा नही मिला। मैं उन्हें पूरा सप्ताह सुनाना चाहता था, किंतु उन्हें अवकाश कहाँ? रुग्णावस्था में मैंने लिखा, 'मैं आपको सप्ताह सुनाना चाहता हूँ।' उन्होंने लिखा– 'महाराजजी! आप तो स्वयं शुकदेवजी के स्वरूप है, किंतु मैं परीक्षित की भाँति तो नहीं हूँ। आप मुझे सुनाने की कृपा करेंगे, तो यहाँ सब प्रबंध आपकी इच्छानुसार हो जाएगा।'

उनकी दशा अधिक समय बैठने योग्य नहीं थी। मैं सप्ताह सुनाता तो चाहे जैसे हो, वे बैठते अवश्य। इससे सेवक मन-ही-मन मुझसे क्रुद्ध होते। इससे मैं नागपुर नहीं गया। कह दिया, 'आप स्वस्थ हो जाएँगे, तब सुनाऊँगा'। सो वे बीच में ही चल बसे। तब मैंने रज्जूभैय्या को उनका प्रतिनिधि बनाकर यहाँ झूँसी के संकीर्तन भवन में ही उनकी परलोकगत आत्मा की शांति हेतु सप्ताह सुनाया। इन गुणों के कारण मुझे ऐसा लगा कि श्रीमद्भागवत माहात्म्य में गोकर्णजी ने अपने पिता आत्मदेव को जो यह उपदेश दिया था कि 'पिताजी! तुम धर्म का सतत आचरण करो, लोकधर्मों को छोड़ो, साधु पुरुषों का सत्संग करो, कामतृष्णा को त्यागो। अन्य पुरुषों के दोषों का तथा गुणों का मन से भी चिंतन न करके सेवा-कथारूपी रस का निरंतर पान करते रहो,' यह उन पर स्पष्ट दिखाई पड़ा।

डा. हेडगेवार जी ने हिंदू-समाज के हितार्थ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बीज बोया था। वह बीज पूरा अंकुरित भी नही हुआ था, तभी वे अल्पायु में ही उस अंकुर को गुरुजी गोळवलकर को सौंपकर चल बसे। उस समय गोळवलकर जी की अल्पायु ही थी, वे केवल ३०-३२ वर्ष के युवक थे। किंतु उन्होंने उस अंकुर को बढ़ाया, उसका विस्तार किया। पल्लवित, पुष्पित बनकर जब फल देने लगा, तभी गीता के इस श्लोक 'मा फलेषु कदाचन'– फल की इच्छा कभी न करना, याद करके वे भी फल का बिना उपयोग किए ही चल बसे।

हमारे पास तो १००-५० ही विद्यार्थी रहते हैं। उनमें से शायद ही कोई हमारी बात मानने को तत्पर हो। किंतु संघ के स्वयंसेवक अपना व्यय करके, अपना भोजन करके संघ की सेवा में सदा संलग्न रहते हैं। मेरे एक साथी ने बड़े आश्चर्य से कहा– 'महाराज जी! न जाने गुरुजी स्वयंसेवकों को कौन-सी ऐसी औषधि पिला देते हैं कि जो संघ का स्वयंसेवक हुआ, वह फिर सर्वस्व त्याग करने को उद्यत हो जाता है। कभी संघ को छोड़ता ही नहीं।'

बहुत-से त्यागी तपस्वी होते हैं, वे स्वयं कितने भी महान बन जाएँ, किंतु सबको अपने समान बना लें, यह अत्यंत कठिन है। इसीलिए किसी कवि ने कहा है–

'पारस में अरु संत में, संत बड़ो करि मान।
वह लोहा सोना करे, यह करे आपु समान।।'

इसीलिए भर्तृहरिजी ने कहा है 'हम उस सुवर्ण के सुमेरु पर्वत की, तथा चाँदी के कैलास पर्वत की प्रशंसा क्या करें, क्योंकि इन पर्वतों के वृक्ष, वृक्ष ही बने रहते हैं। हम तो उस मलयाचल की ही प्रशंसा करते हैं, उसी को धन्य मानते हैं, जिस पर उगे नीम, कंकोल, कुटज जैसे वृक्ष भी चंदन ही बन जाते है।'

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा, यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण। कंकोल-निम्ब-कुटजा अपि चन्दनाः स्युः।।
(नीतिशक-७५)

('आरती आलोक की', २४ नवंबर १९८०)

२३. साधनामय व्यक्तित्व

(श्री बच्छराज व्यास, राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ)

सन् १९३४ में मैंने प्रथम बार श्री गुरुजी का दर्शन किया था। एक बौद्धिक वर्ग में जब उनका परिचय कराया गया और वे हम स्वयंसेवकों के समक्ष वक्ता के रूप में बोलने लगे, तब की स्मृति आज भी ताजी हो उठती है। प्रारंभ में धीमे स्वर से और फिर क्रमशः स्वर ऊँचा करते हुए और गति को तेज करते हुए वे विचार प्रकट करने लगे थे और हम लोग उनके भाषण में 'खो' गए थे।

उसी वर्ष वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नागपुर में तुलसीबाग में चलनेवाली केंद्र-संघशाखा के कार्यवाह नियुक्त हुए थे। संघ के स्वयंसेवकों में तब उनका काशी हिंदू विश्वविद्यालय के उन छात्रों द्वारा दिया गया 'गुरुजी' नाम प्रचलित हो गया था। स्वयं डा. हेडगेवार जी भी उन्हें 'गुरुजी' ही कहा करते थे। यद्यपि गुरुजी उस समय एक संघ शाखा के कार्यवाह मात्र थे।

विश्व हिंदू परिषद् के प्रयाग अधिवेशन के अंतिम दिन श्री गुरुजी का जो भाषण हुआ, उसके प्रवाह में मैंने हजारों प्रतिनिधियों, जिनमें जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, कई महामंडलेश्वर और अनेक पराकोटि के विद्वान और विचारक शामिल थे, को उसी तरह देखा जैसे हम सन् १९३४ के कुछ युवक कार्यकर्ता संघ के नित्यक्रम के उस बौद्धिक में स्वयं को 'खो' बैठे थे।

श्री गुरुजी की वाणी में माँ सरस्वती की वीणा के तारों की हृदयस्पर्शी झंकार है, भगवती दुर्गा की शत्रुमर्दिनी हुंकार है और समुद्र सा गांभीर्य है। सन् १९४६ के दिल्ली शाखा के वार्षिकोत्सव के प्रसंग पर उनके भाषण के पश्चात् उत्सव की अध्यक्षता करते एक नामांकित वकील और प्रमुख कांग्रेसी कर्णधार डा. कैलासनाथ काटजू को मैंने श्री गुरुजी के हिंदूराष्ट्र और उसके विजयी जीवन संबंधी विचारों को सहर्ष, मंत्र-मुग्ध व्यक्ति की भाँति दोहराते देखा है। दक्षिण भारत के सुविख्यात उदारमतवादी और दुर्लभ विद्वान नेता स्वर्गीय श्री टी.आर. वेंकटराम शास्त्री ने सन् १९४६ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की चेन्नै शाखा के उत्सव पर आना स्वीकार करते समय कार्यकर्ताओं के सामने शर्त रखी थी कि 'आपका आग्रह है तो आऊँगा अवश्य, परंतु मुझे जो कहना है, वही कहूँगा। उसे सुनने की आपकी तैयारी हो, तो मुझे बताइये।' उत्सव में श्री गुरुजी ने अति विनम्रतापूर्वक प्रारंभ करके ४५ मिनट तक अपना संघ की भूमिका को स्पष्ट करनेवाला धाराप्रवाह, तर्कशुद्ध और ओजस्वी भाषण दिया। श्रद्धेय शास्त्रीजी इतने प्रभावित हो चुके थे कि उनके भाषण में वही विचार बरबस निकल पड़े।

आज देशभर में श्री गुरुजी राष्ट्रीय विचारधारा हिंदुत्व के प्रखर और प्रभावी विचारक और मार्गदर्शक माने जाते हैं। उनका सतत प्रवास, निरंतर मेहनत, अनुपम कार्यशीलता और इन सबके बीच उनके चेहरे पर सदा झलकनेवाली युवक-सुलभ, प्रफुल्ल आत्म-विश्वास की चमक किसी को

यह याद ही नहीं करने देती कि अब वे युवा नहीं हैं।

श्री गुरुजी का सारा जीवन गंगोत्री के जल के समान पवित्र, नर्मदा के प्रवाह के समान गतियुक्त, महर्षि दधीचि के जीवन के समान त्यागपूर्ण और 'गौरीशंकर' की चोटी के समान उत्तुंग सिद्ध हुआ है। जिन्होंने २ वर्ष की छोटी आयु में कई संस्कृत श्लोक कंठस्थ कर लिए थे, विद्यार्थी जीवन में जो 'उत्पाती' होते हुए भी 'एकपाठी' विद्यार्थियों में से रहे, काशी हिंदू विश्वविद्यालय में जिन्होंने अपनी विद्वत्ता, तेजस्विता और स्पष्टवादिता से 'महामना' तक को प्रभावित किया था। वे संघ के हजारों-लाखों कार्यकर्ताओं को नाम से पहचाननेवाले; पुरानी पहचान को कभी न भूलनेवाले; एक बार जिससे मिले उसे सदा के लिए याद रखनेवाले; स्वयंसेवकों के सुख-दुख, आशा-आकांक्षाओं से अधिकतम परिचित; संघ के शारीरिक शिक्षणक्रम की दृष्टि से सिद्धहस्त थे। अधिकारियों को सदा शंका रहती है कि 'गुरुजी' की पैनी नजर से उनकी कोई भी 'भूल' छिप नहीं सकेगी, और बौद्धिक दृष्टि से निष्णात कार्यकर्ताओं को भी श्री गुरुजी की उपस्थिति में भाषण देने का प्रसंग आए, तो बड़ा अटपटा सा लगता। फिर भी हर स्वयंसेवक को अथवा अधिकारी को अपने मन की बात उनसे साफ कहने में संकोच नहीं होता।

श्री गुरुजी में लेखन की असामान्य प्रतिभा होते हुए भी वे 'लेखक' नहीं है। उन्हें अपने भारतव्यापी संचार में प्रायः प्रतिदिन हजारों की सभा से लगाकर, ५-२५ कार्यकर्ताओं, या मिलने आए विशिष्ट व्यक्तियों से बोलना पड़ता है (और लोग उन्हें आज भारत में विद्यमान सर्व-प्रभावी वक्ताओं में से एक मानते भी है), किंतु उन्हें 'वक्ता' कहलाना पसंद नहीं। श्री गुरुजी ने हजारों नवयुवकों को घर-बार का मोह छोड़कर राष्ट्रकार्य की त्यागमय साधना के मार्ग की ओर बढ़ाया है, किंतु यह भी उनकी आँखों में कोई विशेष बात, महत्त्व की बात नहीं है। वे तो स्वयं को 'राष्ट्र-विषयक कसक' से अभिभूत पाते हैं और अपने शरीर को साधना में 'दिनोंदिन घुलाने' और 'वर्षानुवर्ष जलाते-रहने' में उन्हें सहज आनंद की प्राप्ति होती है।

दो दशकों से भी अधिक काल से चली आ रही इस एक ही साधना का उन्होंने जिस अद्‌भुत ढंग से और सातत्य से संचालन और पालन किया है, उसकी मिसाल आज के भारत में तो मुझे कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। समुद्र के तूफान में लहरें कहीं की कहीं बह जाती है और जो उनकी चपेट में आए उसे बहा ले जाती हैं या डुबो देती हैं, किंतु समुद्र का

किनारा अपना न तो स्थान छोड़ता है, न निश्चय। इसी प्रकार परिस्थितिनिरपेक्ष संघकार्य का संचालन, भारत की क्षण-क्षण बदलती परिस्थितियों में श्री गुरुजी ने कर दिखाया है।

श्री गुरुजी के जीवन का रहस्य उनकी शारीरिक व मानसिक शक्तियों से भी अधिक उनकी आध्यात्मिक शक्ति में है। वे चमत्कारों में विश्वास नहीं करते। 'गुरुडम' से उन्हें घृणा है, किंतु भारत में परंपराप्राप्त आत्मशक्ति पर उनकी श्रद्धा है और स्वीकृत कार्य के 'ईश्वरीय' कार्य होने में उन्हें रंच मात्र संदेह नहीं।

किंतु स्वयं उनकी दृष्टि में वे संघ के एक साधारण स्वयंसेवक और संघ संस्थापक डा. हेडगेवार जी को अपना 'इष्टदेव' माननेवाले एक निष्ठावान साधक मात्र हैं।

(युगधर्म, १६ फरवरी १९६६)

२४. सहज संकोची

(श्री बबुआजी, क्षेत्र संघचालक बिहार)

जहाँ तक स्मरण आता है, मैंने पहले-पहल श्री गुरुजी को सन् १९३९ में पटना स्टेशन पर देखा था। गया में संघ शाखा प्रारंभ हो चुकी थी। उन दिनों संघ में कार्यकर्ताओं को डाक्टर हेडगेवार जी के बाद जिन तीन व्यक्तियों का नाम बताया जाता था, उनमें श्री गुरुजी, बाबासाहब आप्टे तथा दादाराव परमार्थ थे।

अभी ठंड शुरू नहीं हुई थी। बरसात का अंत था, उसी समय कहीं से श्री गुरुजी रात की गाड़ी से कोलकाता जा रहे थे। स्टेशन पर थोड़ा प्रयास करने के बाद उनको ढूँढ लिया। दाढ़ी-बालों वाला चेहरा सहज ही पहचान में आ गया। तब से लेकर अंत तक उनसे मेरा घनिष्ठ संपर्क रहा।

वे स्वभाव से बड़े ही संकोची थे। बड़े-बड़े कार्यक्रमों में शामिल होने, वहाँ भाषण देने, बैठकों में खुलकर बोलनेवाले नित्य के व्यवहार में संकोच से काम लेते थे। सन् १९४२ का ही प्रसंग लें। जेल से रिहा होने के बाद सावरकर जी मेरे घर पर ठहरे हुए थे। उसी मंजिल के

दूसरे कमरे में श्री गुरुजी भी ठहरे हुए थे। उस समय तक आबाजी उनके साथ नहीं रहते थे। सावरकर जी को प्रातः मेल से जाना था। श्री गुरुजी उनके कमरे में जाकर उन्हें नमस्कार करना चाहते थे। सावरकर जी के कमरे में रोशनी जल रही थी। वे प्रवास पर जाने की तैयारी में होंगे। श्री गुरुजी उनके कमरे में न जाकर तब तक बाहर खड़े रहे, जब तक वे स्वयं बाहर न निकले आए।

उनका मुक्त हास्य स्वयंसेवकों को सदा स्मरण रहेगा। मैं भी उनकी हँसी में थोड़ा बहुत साथ देता रहा हूँ। सन् १९४१ में हिंदू महासभा के अखिल भारतीय अधिवेशन पर बिहार सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। महासभा ने प्रतिबंध तोड़कर सम्मेलन करने का निश्चय किया। सारे भारत से आए कार्यकर्ता गिरफ्तारियाँ दे रहे थे। सावरकर जी का भाषण पढ़ने के कारण मुझे भी गिरफ्तार किया गया। उस समय श्री गुरुजी मुझसे मिलने जेल आए थे। मुझे देखते ही जोर से ठहाका लगाते हुए कहा—'Let me have your laugh' (अपनी मुक्त हँसी का आनंद तो लेने दीजिए)।

फिजूलखर्ची उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं थी। नागपुर में प्रतिनिधि सभा की बैठक के लिए गया था। बैठक रेशमबाग में थी। प्रातः पाँच बजे देखता क्या हूँ कि बरामदे में हल्के पावर के कई बल्ब जल रहे थे, उन सबको उन्होंने स्वयं जाकर बुझाया।

भोजन संबंधी किसी विशिष्ट पदार्थ को बनाने के लिए उन्होंने कभी नहीं कहा। मैं ही इस बात का ध्यान रखने का प्रयत्न करता कि उन्हें उनकी रुचि का भोजन मिल सके। वे बड़े साफ-सुथरे और अच्छे ढँग से रहते थे, लेकिन उनमें पूरी सादगी थी। नागपुर में उनके बैठक कक्ष में दरी के अलावा कभी गद्दा नहीं देखा। प्रारंभ में तो उनको कई बार साइकिल पर चलते देखा है।

वे सच्चे साधु थे। उनका जीवन पूरी तरह एक संन्यासी की तरह का था, पर उन्होंने कभी साधु का वस्त्र नहीं पहना। वे जनसाधारण की तरह ही रहते थे। इसीलिए हमें प्रभावित करते थे, हमारे अपने लगते थे।

(श्री गुरुजी जीवन प्रसंग, भाग १)

२५. हमारे आप्त

(श्री बाबासाहेब घटाटे, नागपुर संघचालक)

परम पूजनीय गुरुजी का जब स्वर्गवास हुआ, मैं वही उनके पास ही खड़ा था। आज गुरुजी नहीं हैं– केवल उनकी स्मृतियाँ ही शेष हैं। ऐसी स्मृतियाँ जिनमें पग-पग पर उनके दर्शन होते हैं। मेरा यह सौभाग्य था कि पिछले ३४ वर्षों से मेरा उनका निकट का संबंध बना रहा। डाक्टर हेडगेवार जी ने मेरा उनसे परिचय कराया था। तब से लेकर पिछले ३४ वर्षों का काल बीत गया। स्मृतियाँ इतनी अधिक हैं कि सोच पाना भी कठिन हो रहा है कि किसे अनुक्रम दूँ।

सन् १६३६ की गर्मियाँ थीं, जब गुरुजी के निकट का संपर्क पहली बार आया। मैं अपने परिवार के साथ देवलाली गया था। डाक्टर साहब से मैंने कहा था कि वे भी विश्रांति हेतु वहाँ आएँ। संघ शिक्षा वर्ग समाप्त होने के बाद डाक्टर साहब गुरुजी के साथ देवलाली आए और करीब एक माह तक वहाँ रहे। वहीं डाक्टर जी को डबल निमोनिया हो गया। गुरुजी दिन-रात उनकी सेवासुश्रुषा में जुटे रहते। मुझे याद है जब माननीय कृष्णराव जी मोहरील डाक्टर जी का स्थास्थ्य देखने नागपुर से आए, तब उन्होंने कहा– 'कृष्णा, मेरी बीमारी में भी समय नष्ट नहीं हुआ है। संघ को एक मूल्यवान निधि प्राप्त हुई है। मैंने तय कर लिया है कि माधवराव को (वे गुरुजी को माधवराव ही कहा करते थे) सरकार्यवाह बनाया जाए। गुरु पौर्णिमा उत्सव के समय हम इसकी घोषणा करेंगे।

उसी दिन मुझे भी नागपुर का संघचालक बनाया गया। उस दिन से मैं गुरुजी के निर्देशन में कार्य करता रहा। हम लोगों के बीच संबंध दृढ़तर बनते गए। उस समय तो डाक्टर साहब के शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आ पाया था कि ऐसी कौन-सी मूल्यवान निधि मिली है, पर उनके देहांत के पश्चात् गुरुजी ने कभी उनका (डाक्टर जी) अभाव हमें खटकने नहीं दिया। डाक्टर जी के देहांत से निर्माण हुई रिक्तता की पूर्ण रूप से उन्होंने अपने कार्य से पूर्ति कर दी थी।

गुरुजी अनुशासन का कड़ाई से पालन करने में विश्वास रखते थे। उनकी इस कड़ाई से कई बार बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न होती, तो

कई बार मनोरंजक घटनाएँ हो जातीं।

मेरे ज्येष्ठ पुत्र का व्रतबंध था। डाक्टर साहब ने उसमें उपस्थित रहने की स्वीकृति दे दी थी। पर एकाएक राजगीर, जहाँ वे विश्राम हेतु गए थे, से मुझे एक पत्र मिला कि वे उपस्थित नहीं रह सकेंगे। मैं निराश हो गया। समझ नहीं पा रहा था कि क्या किया जाए गुरुजी उस समय नागपुर में थे। उन्होंने कहा- 'यदि तार भेजा जाए, तो डाक्टर साहब अवश्य आएँगे।'

उन्होंने स्वयं तार लिखा- 'your presence imperative (आपकी उपस्थिति अनिवार्य है) तार जाते ही जवाब आया कि 'वे आ रहे हैं। जबलपुर में यदि कार की व्यवस्था हो सके तो वे समय पर नागपुर पहुँच सकेंगे।'

गुरुजी को जब डाक्टर साहब का उत्तर बताया गया, तब तो वे स्वयं कार से जबलपुर गए और उन्हें साथ ले आए। बाद में मुझे जब यह पता चला तो मेरी बड़ी विचित्र स्थिति हुई कि डाक्टर साहब ने राजगीर में स्वयंसेवकों को बताया कि उन्हें तार को शिरोधार्य मानना पड़ा। वे भले ही सरसंघचालक हों, पर पहले एक स्वयंसेवक हैं और नागपुर संघचालक के आदेश का उल्लंघन कैसे करते?

गुरुजी ने तार को लिखते समय डाक्टर साहब की क्या प्रतिक्रिया रहेगी, इसका बिलकुल सही-सही मूल्यांकन किया था। गुरुजी स्वयं भी जब मैं कुछ सुझाता मुझे यही जवाब देते थे। अपने व्यवहार से उन्होंने स्वयं को अनुशासन का उच्च आदर्श प्रस्थापित किया था।

श्री गुरुजी के व्यवहार की यह विशेषता थी, उनके स्वभाव का यह अंग बन चुका था कि वे कभी यह अनुभव नहीं होने देते थे कि वे एक साधारण व्यक्ति से कुछ अलग हैं, अधिक हैं। जबकि वे वास्तव में बहुत बड़े थे। जब हम दोनों ही जेल में रहे थे मैं उनके पूर्व स्नान कर लेता था। पहले दिन मेरे गीले कपड़े पूजा कर लेने के बाद धोने के लिए पड़े रहे। पर जब पूजा खत्म कर स्नानगृह में गया तो चकित रह गया। गुरुजी ने मेरे कपड़े धो डाले थे। जब मैंने इसका विरोध किया तो वे बोले— 'इससे क्या फर्क पड़ता है। हम दोनों को यहाँ काम ही क्या करना पड़ता है?' दूसरे दिन से मैं पूजा के पूर्व ही कपड़े धोने लगा।

गुरुजी की यह विशेषता ही थी कि वे प्रथम बार के संपर्क में ही लोगों को जीत लेते थे और लोग उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे।

मुझे आज तक ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो इतने सारे विषयों के बारे में इतनी बारीक जानकारी रखता हो। तत्त्वज्ञान, धर्म, राजनीति, विज्ञान आदि पर वे साधिकार बोलते। उनके ज्ञान की नित्य नई क्षितिज रेखा देख मैं विस्मित रह जाता।

अभी-अभी की घटना है, जब पिछले दिसंबर १९७२ में जनरल करिअप्पा नागपुर आए थे। स्व. डा. मुंजे की प्रतिमा का अनावरण उनके हाथों हुआ था। गुरुजी ने डा. मुंजे जन्मशताब्दी समारोह में स्वयं रुचि ली थी। समारोह समिति के लोग जनरल करिअप्पा के साथ दोपहर के भोज पर मेरे यहाँ थे। जनरल को जलेबी पसंद आ गई थी। वे जलेबी कैसे बनी इसकी जानकारी पूछ रहे थे। गुरुजी जनरल को लेकर रसोईघर में ही पहुँच गए। यही नहीं उन्होंने जलेबी कैसे बनती है, उसकी सारी क्रिया भी उन्हें समझाई। यह सब समझाने के बाद वे मेरी ओर मुड़े और मुझसे पूछा 'ठीक है न।' मैंने अपनी हँसी के बीच 'हाँ' में सिर हिलाया।

दुनिया के लिए वे एक महान सामाजिक कार्यकर्ता थे। एक अनुशासित संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वोच्च अधिकारी थे पर मेरे लिए वे मेरे परिवार के एक अविभाज्य अंग थे। मेरे परिवार के बच्चों के मार्गदर्शक थे। मेरे बच्चे बचपन से उन्हें जानते थे। उन्हें भाँति-भाँति के प्रश्न कर परेशान करते, पर वे शांति से उनका समाधान करते। बच्चों के लिए उनके पास हमेशा समय रहता और बच्चे इसे जानते थे।

अपने अंतिम दिनों में उन्होंने मेरे पुत्र से, पीएच.डी. का प्रबंध जो वह गुलाबराव महाराज पर लिख रहा है, पढ़ने के लिए माँगा और कई सुझाव भी दिए।

उनकी मृत्यु से एक महान देशभक्त, एक कर्मयोगी का अंत हो गया, पर मेरे परिवार का सदस्य खो गया। मेरे लिए यह कल्पना भी कठिन है कि मैं उन्हें फिर नहीं देख पाऊँगा।

(युगधर्म स्मृति अंक, ८ जुलाई १९७३)

२६. आध्यात्मिक अधिष्ठान का नेतृत्व

(महामहोपाध्याय श्री बालशास्त्री हरदास)

वर्तमान भारत के राजकीय एवं सामाजिक नेताओं की चौखट रखा जाए, ऐसा श्री गोलवलकरजी का नेतृत्व नहीं है। उनके जीवन का अधिष्ठान आध्यात्मिक है। उनकी आध्यात्मिक जीवननिष्ठा केवल वैचारिक व बौद्धिक परिणति के स्परूप की न होकर उपासना, साधना एवं गुरुकृपा का आधार लेकर उस हेतु जीवन को सुखाकर प्राप्त अनुभूति की परिणति है। इस कारण व्यक्तिगत भाव को अंतःकरण में कोई स्थान नहीं है।

यह धारणा न होती तो संघ पर और उनपर जो संकट और जो प्रसंग आए और जिन स्थितियों से संघ जा रहा है, उससे कोई भी भग्नहृदय ढेर हो जाता। पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जी ने भारतीय राष्ट्रजीवन का आमूलाग्र भाव परिवर्तन करने के उद्दिष्ट से प्रत्येक व्यक्ति का जीवन गढ़नेवाली यंत्रणा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रूप में खड़ी की। एक विशिष्ट मर्यादा तक संघ पहुँचा ही था कि डाक्टर जी का लौकिक जीवन समाप्त हो गया। कार्य की धुरा उस समय सरकार्यवाह रहे श्री माधवराव गोलवलकर पर आई। अल्पावकाश में उन्होंने संपूर्ण जीवन संघ के लिए समर्पण करनेवाले प्रचारकों की प्रभावी यंत्रणा तैयार की। उसी के कारण संघ का इतना विस्तार हुआ कि सन् १९४७ में राष्ट्रजीवन के तत्कालीन कर्णधारों को भी संघ की धाक अनुभव होने लगी। संघ के साथ अपने संबंध निकट के हों, इस हेतु से वे लोग प्रयत्न करने लगे। स्वयं महात्मा गाँधी संघ का निकट से परिचय पाने के लिए संघ शाखा को भेंट देने आए। पंडित जवाहरलाल नेहरू गुरुजी से चर्चा के लिए उत्सुक हुए। सरदार पटेल ने संघ से संबंध स्थापित किया।

विभाजन पूर्व काल में बिहार और विभाजन के समय तथा बाद में पंजाब और दिल्ली में संघ के स्वयंसेवकों ने जो पौरुष प्रकट किया, त्याग का जो आदर्श निर्माण किया, अनेक खिलते जीवनपुष्पों ने आपत्ति के अग्निकुंड में जलकर जो इतिहास निर्माण किया, उसका जनमानस पर जबरदस्त प्रभाव रहा। राष्ट्रजीवन में जिस महान सामुदायिक कर्तृत्व से यह स्थित्यंतर हुआ, उस कर्तृत्व की प्रेरणा एवं स्फूर्ति श्री माधवराव गोलवलकर ही थे।

इस स्थित्यंतर का उपयोग कर राष्ट्रजीवन को योग्य आकार देने

के प्रयास में वे थे कि गाँधीजी की हत्या का अनर्थकारी प्रकरण हुआ। संघ के हितशत्रुओं ने उसका पूरा-पूरा लाभ उठाकर राष्ट्रहित से पक्षहित, व्यक्तिगत लाभ व सत्ता उनको अधिक महत्त्व की प्रतीत होती थी। उन्होंने, संघ को उखाड़ने का षड्यंत्र रचा। सत्तारूढ़ पक्ष और उनके स्वार्थांध साथियों ने योजनापूर्वक अपप्रचार कर संघ के विरुद्ध इतना प्रचंड सामाजिक क्षोभ उत्पन्न किया कि कुछ भी बाकी न रहे। उस सामाजिक क्षोभ के समय जो क्षुद्रता, जो कृतघ्नता अनुभव हुई, उससे अनेक धैर्य खो बैठे। कोई आमूलाग्र परिवर्तन की भाषा बोलने लगे, तो कोई कहने लगे– 'कार्य की आवश्यकता ही नहीं'।

समाज इतना कृतघ्न है तो उसकी सेवा की झंझट में क्यों पड़ें? यह कहकर कुछ निवृत्त हुए। पुनः माला में एक-एक मणि गूँथने का वह समय था। पूजनीय डाक्टर जी के समय विपरीत वातावरण और सामाजिक क्षोभ का सामना करने की स्थिति नहीं थी। अब वह भीषण रूप में सामने थी। इस सबका जिसपर कोई परिणाम नहीं हुआ, ऐसे श्री गोलवलकर ही थे। उनकी दृष्टि में लोकक्षोभ में ईश्वर अल्पधारिष्ट देख रहा था। इस परीक्षा में अविकंपित रहना ही साधना थी। उनकी भूमिका समाजसेवक की थी। सेवकों पर धनी नाराज हो सकता है, पर सेवक को नाराज होने का अधिकार नहीं रहता। अहमदाबाद में एक शिविर में उनके साथ रहने का सौभाग्य मुझे मिला था। उस समय एक भाषण में स्वयंसेवक बंधुओं के सम्मुख उन्होंने कहा था– 'समाज संघ पर नाराज हो सकता है, पर संघ समाज पर नाराज नहीं हो सकता। क्योंकि संघ समाज की सेवा के लिए है, समाज संघ की सेवा के लिए नहीं।' वे ईश्वर की सेवा के महत्त्व की तरह ही समाज सेवा की ओर देखते थे। दैवी संपदा की समाज जीवन में प्रतिष्ठापना करना और उसके द्वारा समाज के कल्याण की साधना कर अविरत प्रयत्न करना यही साधना का स्वरूप है। इस धारणा से ही उस भीषण परिस्थिति में वे अविकंपित रहे। बंधनमुक्त होते ही 'पुनश्च हरि ओ३म्' कहकर पहले के ही समान प्रसन्नवृत्ति से उन्होंने कार्य को चालना दी। संघकार्य के स्वरूप में कोई भी परिवर्तन न करते हुए उनकी प्रेरणा से वह पुनः उभर आया और वर्धिष्णु स्वरूप में राष्ट्रजीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रभावी हो रहा है।

'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनिकुसुमादपि' की आध्यात्मिक धारणा के कारण से ही ईश्वर और समाज को छोड़ अन्य कोई विषय उनके पास नहीं

था। इसे नहीं समझ पानेवाले, स्वयं को उनके विशेष प्रेम का मानकर अहंकार धारण करनेवाले लड़खड़ा कर गिर पड़े। उनके आत्यंतिक प्रेम के इन विषयों के प्रति जिन्हें निष्ठा और प्रेम नहीं, उसकी सेवा का भाव जिनके अंतःकरण में नहीं, उन्हें आत्मीय संबंध रहने पर भी उन्होंने सहज कठोरता से दूर कर दिया। विशिष्ट कर्तृत्व का अहंकार और सेवाभाव का लोप होते ही व्यक्तिभाव का उदय होता है। यह भाव जिनमें उत्पन्न हुआ वह कर्तृत्वशाली व्यक्ति भी राष्ट्रकार्य के लिए हानिकर होता है। वर्षों से समाजकार्य में रहे कार्यकर्ता के मन के भावों का पोषण श्री गोलवलकर के परिसर में नहीं हो सकता, इस कारण रुष्ट होकर दूर गए या कठोरता से दूर किए व्यक्ति से उनके निजी संबंध कभी बिगड़े नहीं।

इसी कारण केवल मतभिन्नता उनके स्नेह की आड़े नहीं आ सकी। राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक उस दल के या मत के व्यक्तियों को वे सहकार्य देते, उनसे मिलते मार्गदर्शन का प्रयत्न करते। आज के राजकर्ताओं ने अनेक बार उनके सहकार्य का हाथ झिड़क दिया। फिर भी, जब भी जरूरत रहती, वे सहकार्य के लिए सिद्ध रहते।

भारत के राष्ट्रजीवन की मूलभूत अस्मिता जनमानस में प्रज्ज्वलित करने के लिए, उसे विशुद्ध रखने हेतु श्री गोलवलकर समान आध्यात्मिक धारणा के तपस्वी की आवश्यकता रहती है।

श्री गोलवलकर जी को सांप्रदायिक माननेवाले लोग, विश्व हिंदू परिषद् द्वारा सारी दुनिया के हिंदुओं के संप्रदायों के एकत्रीकरण का जो महान प्रयत्न हुआ है, उसका निर्विकार मन से चिंतन भी करें, तो उनका भ्रम दूर होगा। पक्षोपपक्षता एवं सीमित दृष्टिकोण की बाधा केवल राजकीय जीवन को ही नहीं हुई, वह धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को भी हुई है। या ऐसा कहें कि धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन पहले बाधित हुआ और उसका परिणाम राजकीय जीवन में हुआ।

एक ही वैदिक संप्रदाय के शांकर, माध्व, रामानुज, वल्लभ आदि पीठों के आचार्य एकत्र आएँ और धर्मजीवन का, समाजजीवन का विचार करें, यह असंभाव्य रहा। बौद्ध, जैन, लिंगायत, सिख, नामधारी, तंत्रमार्गी, वारकरी, रामदासी आदि संप्रदायों का एकत्र आना तो कठिन ही था। निरहंकारिता के अधिष्ठान पर निर्माण हुए इन संप्रदायों का अहंकार इतना बढ़ा कि एक-दूसरे के मंडप में जाना तो संभव ही नहीं था। इन सभी को

एकत्र लाने का अभूतपूर्व प्रयोग समाज धारणा के व्यापक अधिष्ठान से गोलवलकर जी ने सफल कर दिखाया।

आध्यात्मिक अधिष्ठान के आधार पर खड़े श्री गोलवलकर जी का नेतृत्व भारत को उपलब्ध हुआ। इसका विचार करने पर 'कथमिव भवनोऽस्मिन् तादृशाः सम्भवन्ति' का अनुभव होता है।

(तरुण भारत, नागपुर)

२७. कार्यरत रहना ही सच्ची श्रद्धांजलि

(श्री बालासाहब देवरस)

मेरा यह अहोभाग्य रहा कि मेरा संघ के दो महापुरुषों– संघ निर्माता डा. हेडगेवार तथा उनके पश्चात् अपने पूजनीय श्री गुरुजी के साथ बड़ा निकट का संबंध रहा। डाक्टर जी के समय छोटी आयु के कारण मेरी समझ कम थी तथा उनके सहवास में मेरा गठन हो रहा था। मेरे समान ही मेरे अन्य साथियों, जो आज भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रमुख के नाते कार्य कर रहे हैं, की स्थिति थी। जब पूजनीय गुरुजी के साथ हमारा संबंध आया, तब हम डाक्टर जी द्वारा गढ़े जा चुके थे। हम लोगों की व्यावहारिक शिक्षा भी समाप्त हो चुकी थी और उस समय तक कोई नागपुर में, तो कोई भिन्न-भिन्न प्रांतों का कार्यभार सँभालने लगा था। जब पूजनीय गुरुजी के साथ संपर्क आया, तब हम अनुभवी हैं, हमने कुछ कार्य किया है, हम कुछ जानते हैं– ऐसा भाव या अहंकार मन के कोने में नहीं रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि सन् १९४० में पूजनीय डाक्टर जी के देहांत के पश्चात् पूजनीय श्री गुरुजी सरसंघचालक बने, तथापि उसके पूर्व भी हम लोगों का उनके साथ संबंध आया था। परंतु उनके संबंध में उस समय हमारी निश्चित कोई धारणा नहीं बन पाई थी। वैसे वे बुद्धिमान तथा बहुश्रुत हैं, यह हम लोगों ने सुना था। उन गुणों का हम अनुभव भी करते थे। परंतु उन्होंने अपने भावी जीवन की दिशा तब तक निश्चित नहीं की थी। उनकी रुचि हमें आध्यात्मिकता की ओर अधिक दिखाई दी। सर्वसाधारण लोगों जैसी वेशभूषा करनेवाले गुरुजी को हमने कुछ दिनों के बाद दाढ़ी-केश बढ़ाए हुए देखा। इन सब बातों के कारण हम लोग उनके विषय में कोई

निश्चित धारणा नहीं बना पाए।

इन प्रारंभिक संबंधों के बाद सन् १९३९ में डाक्टर जी की उपस्थिति में सिंदी में हुई एक दीर्घकालीन बैठक में उनके निकट संपर्क में रहने का अवसर मिला। उस बैठक में हम लोगों ने श्री गुरुजी की वादविवाद पटुता, बुद्धिमत्ता तथा अभिनिवेश के साथ स्वमत प्रतिपादन की विशेषताएँ देखीं। साथ ही बैठक में एक निर्णय हो जाने पर उसे शिरोधार्थ मानकर चलने की उनकी संघवृत्ति (टीम-स्पिरिट) का भी परिचय हुआ।

सन् १९३८ से १९४० में उनके साथ मेरा और घनिष्ठ संपर्क आया। १९४० के नागपुर संघ शिक्षा वर्ग के वे सर्वाधिकारी थे। उनके साथ ४० दिन के इस सहवास के काल में मुझे उनके व्यक्तिमत्व के विभिन्न पहलुओं तथा गुणों का परिचय हुआ। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि डाक्टर जी उनकी ओर विशेष दृष्टि से देखते हैं। डाक्टर जी १९३८ से संघकार्य के बारे में कुछ चिंतित से दिखाई देने लगे थे। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, जिसके कारण वे मनचाहा दौरा नहीं कर पाते थे। आज जैसा संघकार्य का उस समय वटवृक्ष के समान विस्तार नहीं हो पाया था। गुरुजी के साथ संपर्क बढ़ने पर वे प्रसन्न हुए और हम लोगों से कहने लगे कि मुझे अंग्रेजी व हिंदी दोनों भाषाओं में धाराप्रवाही विचार रख सकने की जिसकी क्षमता है, ऐसा पुरुष मिल गया है। हम लोगों ने जब श्री गुरुजी का प्रथम अंग्रेजी भाषण सुना, तब उनका अंग्रेजी भाषा पर असाधारण प्रभुत्व देखकर हम स्तंभित रह गए। श्री डाक्टर जी के व्यक्तित्व में ऐसा कुछ अवश्य था कि एक बार मिलने के लिए आया हुआ व्यक्ति बार-बार उनके संपर्क में आने की इच्छा करने लगता। श्री गुरुजी का भी वही हुआ और वे डाक्टर जी की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट हुए और डाक्टर जी ने १९४० में संघकार्य का संपूर्ण दायित्व उनपर सौंप दिया। उस समय श्री गुरुजी की आयु लगभग ३४-३५ वर्ष की होगी। उनका सार्वजनिक जीवन का अनुभव भी अधिक नहीं था। उन्होंने अपने अंतिम पत्र में जो कहा है कि उन पर जब सरसंघचालक पद का भार आ पड़ा, तब वे कुछ जानते नहीं थे। वह औपचारिकता नहीं, वस्तुस्थिति थी। अर्थात् उन्होंने सफलता का काफी श्रेय सहयोगियों को दिया है, परंतु स्वयं श्री गुरुजी का श्रेष्ठ व्यक्तिमत्व भी कारण है। सरसंघचालक पद का भार ग्रहण करने के बाद अत्यंत श्रद्धा तथा लगन के साथ वे कार्य में जुट गए। उनके स्वभाव में आमूलाग्र परिवर्तन हो गया। प्रारंभ में वे क्रोधी थे। पर उन्होंने अपना

स्वभाव बदल डाला। प्रारंभिक दिनों में बैठक में कभी-कभी श्री गुरुजी उग्र रूप धारण तो कर लेते थे, परंतु कुछ मिनटों के बाद वे कोई ऐसी बात छेड़ देते थे कि बैठक का गंभीर वातावरण दूर होकर हँसी का वातावरण फैल जाता था। वे हम लोगों से कहते थे कि यद्यपि वे शीघ्रकोपी हैं, तथापि दीर्घद्वेषी नहीं हैं।

देश के विभाजन तथा संघ पर प्रतिबंध के समय उनकी क्षमावृत्ति और उग्रवृत्ति दोनों का अनुभव मैंने स्वयं किया है। नवंबर १६४७ से जनवरी १६४८ तक, अर्थात् संघ पर प्रतिबंध लगने तक मुझे श्री गुरुजी के साथ दौरा करने का अवसर मिला था। विभाजन के कारण हिंदुओं पर जो संकट आया था उसमें संघ स्वयंसेवकों ने अपने बंधुओं को बचाने में जो साहस प्रकट किया था, उसके कारण श्री गुरुजी जहाँ भी जाते वहाँ लाखों लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्र हुआ करते थे। लाखों लोगों का सभाओं में आना, उनका श्रद्धा से नतमस्तक होना देखकर दूसरा कोई व्यक्ति होता तो अंहकार से फूल उठता। श्री गुरुजी के मन में विभाजन की पीड़ा थी, अपने भाषण में उसकी वे आलोचना भी करते थे। फिर भी वे लोगों को क्रोध न करने तथा संतुलन न खोने का परामर्श देते थे। मुंबई की महती सभा में उन्होंने जो भाषण दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने वहाँ कहा था कि बाहरी आक्रमण के समय 'वयं पंचाधिकं शतम् (हम एक सौ पाँच) हैं'।

परंतु जब शासनकर्ताओं ने बिना कारण संघ पर प्रतिबंध लगाया, तब उन्होंने शासनकर्ताओं के प्रति कड़ा रुख अपनाया था। प्रतिबंध काल में सहस्रों स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह कर कारावास स्वीकार किया। श्री गुरुजी को भी बंदी बनाया गया। संघ पर लगाई गई पाबंदी के विषय में उन्होंने सरकार का कड़े शब्दों में निषेध किया। गृहमंत्रालय के एक अधिकारी ने श्री व्यंकटराम शास्त्री के निकट जो उन दिनों संघ और सरकार के बीच मध्यस्थता कर रहे थे, कहा भी था कि पूजनीय गुरुजी के पत्रों की भाषा बहुत कड़ी रहती है। इस पर श्री व्यंकटराम शास्त्री ने एक वक्तव्य देते हुए उन्हें उत्तर दिया था-

Mr. M.S. Golwalkar is a blunt man, innocent of the etiquette required in a correspondence with Government. The soft word that turneth away wrath is not among his gifts."

गुरुजी क्रोध का शमन करनेवाली मधुर भाषा नहीं जानते थे, ऐसा

नहीं था। परंतु संघ की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने उस समय अत्यंत कड़ा रुख अपनाया था।

उनकी कार्यपद्धति की अनेक विशेषताएँ हैं। प्रतिबंध काल और कैन्सर के आपरेशन के बाद का ३-४ मास का समय छोड़ दें तो लगभग ३२ वर्ष लगातार प्रतिवर्ष एक बार संघ शिक्षा वर्ग के निमित्त और दूसरी बार प्रांतशः कार्यक्रमों के निमित्त संपूर्ण देश का प्रवास करते रहे। उनका अंतिम प्रवास मार्च के मध्य में समाप्त हुआ और उसके ढाई महीने बाद उनकी मृत्यु हुई। उनके जैसा अपने देश का इतना विस्तृत दौरा विश्व के किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया होगा। इस दौरे में किसी न किसी व्यक्ति के घर में वे ठहरा करते थे तथा उस घर के सभी व्यक्तियों को अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित कर लेते थे। इस प्रकार उनका संबंध लाखों परिवारों के छोटे-बड़े व्यक्तियों से आया तथा वे श्री गुरुजी को अपने परिवार का ही एक निकट व्यक्ति मानने लगे थे। श्री गुरुजी उनके संबंध की पूर्ण जानकारी रखते थे और दुबारा भेंट होने पर प्रत्येक के विषय में नाम लेकर जानकारी पूछते थे। उनकी मृत्यु के बाद जो शोक-संवेदना पत्र यहाँ आए हैं, उनमें कईयों ने लिखा है कि हम पुनः अनाथ हो गए हैं। जैसा उनका प्रत्यक्ष संपर्क अद्भुत था, वैसा उनका पत्रव्यवहार भी था।

पूजनीय डाक्टर जी पत्र लिखते थे, तब पत्र के एक-एक शब्द पर डाक्टर जी हम लोगों के साथ चर्चा करते थे। उस समय देश की परिस्थिति और संघकार्य का फैलाव के कारण अधिक पत्र लिखने की आवश्यकता हो- ऐसा नहीं था। परंतु श्री गुरुजी के कार्यकाल में पत्रलेखन के क्षेत्र की कल्पना करते ही किसी एक व्यक्ति द्वारा यह होना असंभव लगता है।

परंतु श्री गुरुजी स्वयं पत्र लिखते थे। आसपास मिलने आए हुए स्वयंसेवक बैठे हुए हैं, वार्तालाप चल रहा है, हास्य विनोद हो रहा है, और उसी बीच गुरुजी पत्र लिखते जा रहे है, यह दृश्य सबके लिए परिचित था। प्रतिदिन पाँच पत्र के हिसाब से पूरे ३३ वर्षों में उन्होंने कितने पत्र लिखे होंगे इसका गणित करें तो आश्चर्यचकित होना पडेगा। पत्र लिखने का भी यह एक 'विश्व-विक्रम' (World-Record) हुआ कहना पड़ेगा।

अपनी विशिष्ट कार्य पद्धति के द्वारा उन्होंने संघकार्य का आज का स्वरूप खड़ा किया है। डाक्टर जी ने संघकार्य की आधारशिला रखी और श्री गुरुजी ने प्रासाद खड़ा किया। वे संघकार्य रूपी प्रासाद के शिल्पी थे।

अनेक संकटों में से उन्होंने संघकार्य को बढ़ाया। संकटों के सामने वे विचलित नहीं हुए, जैसा एक संस्कृत सुभाषितकार ने कहा है कि–

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तसमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

जिस प्रकार उदय तथा अस्त के समय सूर्य का रक्तवर्ण एक-सा रहता है, वैसे ही महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। उसी प्रकार श्री गुरुजी का व्यवहार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में एक-सा रहा।

उनके व्यक्तिमत्त्व का हर पहलू आश्चर्यजनक था। उनका स्वास्थ्य प्रारंभ में उत्तम था और वे मलखंभ के चैम्पियन थे। हम लोगो के सामने तो उनका दुर्बल शरीर ही रहा। इसलिए ये बातें सुनकर संभव है आश्चर्य लगता होगा। वे उत्तम संगीतज्ञ थे। स्वयं उत्तम वंशीवादक थे। नागपुर के सुप्रसिद्ध अंध-गायक सावळाराम उनके अभिन्नहृदय मित्र थे। परंतु संघकार्य में जुट जाने के बाद उन्होंने सारा लक्ष्य उसी ओर केंद्रित किया। अपने स्वास्थ्य की चिंता नहीं की। अखंड कार्यरत रहे। अपनी शारीरिक पीड़ाओं के संबंध में कभी किसी से कुछ नहीं कहा, पर दूसरों के स्वास्थ्य के बारे में दस बार पूछा करते थे। नागपुर में रहते, तब बीमार स्वयंसेवकों के घर मिलने जाते, मेडिकल कॉलेज में रुग्ण स्वयंसेवक को देखने जाते थे।

उनके आदर्श के कारण संपूर्ण देशभर में संघकार्य का एक विशेष वायुमंडल निर्माण हुआ। जब किसी संगठन के छोटे से लेकर बड़े तक सभी एक विशिष्ट व्यवहार करते हैं, तब उस संगठन का वायुमंडल निर्माण होता है। आज जो कुछ संघ के विषय में लोभनीय, प्रशंसनीय दिखाई देता है उसका संपूर्ण श्रेय पूजनीय गुरुजी को है। वे हमारे बीच से चले गए हैं। वैसे, मानव मर्त्य है– कहकर मन को कितना भी समझाने का प्रयत्न किया, तो भी धैर्य नहीं बँधता।

परंतु यह भी हम स्मरण रखें कि यदि हम शोक करते बैठे रहे, तो क्या वह गुरुजी को अच्छा लगेगा? अंत तक जिन्होंने संघ की प्रार्थना की, कार्यशील स्थिति में देह शांत किया, उनके हम अनुयायी दुःख करते नहीं बैठेंगे। उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण करना तभी होगा, जब हम अपना कर्तव्य पूर्ण करने की दृष्टि से प्रतिदिन संघ-शाखा में जाने का निश्चय करेंगे। श्री गुरुजी का दैनिक शाखा का आग्रह अत्यधिक था। शाखा पर

सामूहिक जीवन का संस्कार होता है। तथाकथित बुद्धिवादी संस्कार-श्रद्धा आदि बातों की हँसी उड़ाया करते हैं, परंतु उन लोगों का बुद्धिवाद उथला है। गुरुजी बुद्धिवादी तो थे, पर मानते थे कि सच्चा बुद्धिमान वही है, जो श्रद्धा, संस्कार आदि का महत्त्व समझता है।

अपने दैनिक जीवन के २४ घंटों में से एक घंटा भी राष्ट्र कार्य के लिए न देनेवाला व्यक्ति राष्ट्र के लिए कुछ नहीं कर सकता। प्रतिदिन कंधे से कंधा लगाकर कार्य करने का जिसे अभ्यास हुआ हो, जिसकी एकात्मता की अनुभूति प्रतिदिन साथियों के साहचर्य से परिपुष्ट हुई हो, वही राष्ट्रहित के कार्य में आगे आ सकता है।

हम स्वयंसेवक अपने व्यवहार को निर्दोष बनाकर तथा अपने कर्मक्षेत्र में अपना कर्तव्य प्रामाणिकता से पूर्ण करते हुए समाजजीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। जीवन में हम विभिन्न भूमिकाओं में काम करते हैं। जीवननिर्वाह के लिए कोई नौकरी करता है तो कोई अन्य कुछ। पारिवारिक जीवन में पिता, भाई, पुत्र आदि संबंध से बँधा रहता है। परिवार में, कार्यक्षेत्र में, नागरिक के नाते हम सबका व्यवहार आदर्श रहना चाहिए। दैनंदिन शाखा में जाने से अपनी संघशक्ति बढ़ेगी तथा अपने उत्तम आचरण से समाजजीवन में हम विशिष्ट परिवर्तन ला सकेंगे।

बड़ा तूफान आने के बाद जो हानि होती है, उसी प्रकार परमपूज्य गुरुजी की मृत्यु से एक बहुत बड़ा आघात हुआ है। आज गुरुजी हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उन्होंने जो मार्गदर्शन किया उसके अनुसार चलने का हम दृढ़ संकल्प करेंगे, तो ही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

(युगधर्म, श्री गुरुजी स्मृति अंक, ८ जुलाई १९७३)

२८. धीरोदात्त पुजारी

(श्री भालजी पेंढारकर, संघचालक एवं चलचित्र निर्माता)

श्री गुरुजी की मूर्ति आँखों के सामने आते ही उनकी 'शिवभक्ति' और उनकी धीरोदात्तता– दोनों लोकोत्तर गुण सामने आते हैं। उनके इन दोनों गुणों का दर्शन करानेवाली घटना मैंने स्वयं अनुभव की है, जो अत्यंत मुखर और मार्गदर्शक हैं।

संघ में छत्रपति शिवाजी महाराज की देवता समान पूजा होती है।

यह केवल दिखावटी या लोकप्रियता हेतु नहीं है। अंतःकरण से शिवाजी महाराज के प्रति प्रेम संघ स्वयंसेवकों में भरा है, इसका अनुभव संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी के व्यवहार में दिखाई दिया।

श्री गुरुजी कोल्हापुर होते हुए रत्नागिरी जा रहे थे। कोल्हापुर में मेरी उनसे भेंट हुई। उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। 'विश्रांति के लिए पन्हाला चलिए', यह अनुरोध मैंने उनसे किया। वे एक शर्त पर तैयार हुए। शर्त थी पन्हाला मे श्री शिवप्रभु के निवासस्थान की जगह दिखाना। हम पन्हालगढ़ पहुँचे। साथ मे डा. आबाजी थत्ते और श्री मोरोपंत पिंगले थे।

पन्हाला में हम वहाँ पहुँचे, जहाँ शिवप्रभु के वास्तव्य की वास्तु थी। वहाँ मात्र परती भूमि है। पूर्ण रूप से भग्नावस्था में पड़े उस स्थान को श्री गुरुजी दस मिनट तक अस्वस्थ व व्यथित नजर से निहारते रहे। मन में उठ रहा तूफान, अस्वस्थ चेहरे पर दिखाई दे रहा था। फिर वे झुके। वहाँ की मिट्टी कपाल पर लगाई और उसी विषण्ण मनस्थिति में हम घर लौटे। छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति उनकी यह भक्ति देखकर मैं दंग रह गया।

गाँधी हत्या का निराधार और घृणास्पद आरोप कर भारत सरकार ने संघ पर प्रतिबंध लगाया। संघ के ऐतिहासिक सत्याग्रह के बाद सरकार ने आरोप वापस लिया। प्रतिबंध हटा लिया। सरकार ने मान्य किया की गाँधीहत्या में संघ का हाथ नहीं है। फिर भी विशेषतः दक्षिण महाराष्ट्र की जनता वह निष्कर्ष मानने के लिए तैयार नहीं थी। या यूँ कहें कि उस क्षेत्र में संघविरोधी राजकीय नेता इस घटना का लाभ उठाकर संघकार्य को पुनः पनपने का अवसर नहीं देना चाहते थे। उन्होंने जनता को भड़का दिया था।

प्रतिबंध हटते ही श्री गुरुजी दक्षिण महाराष्ट्र के प्रवास पर आए। उस समय प्रचंड मात्रा में उपद्रव हुआ। इस प्रयास में श्री गुरुजी को सही सलामत नहीं जाने देंगे, यह मानो उन्होंने तय कर लिया था, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। पर उस अत्यंत गंभीर संकट के समय भी श्री गुरुजी ने किंचित भी विचलित न होते हुए शांति रखी। यही नहीं तो हमेशा की सहजता से ही कोल्हापुर के अपने कार्यक्रम पूरे किए। उनकी वह धीरोदात्तता देख उन्हें 'स्थितप्रज्ञ' कहना होगा। इतने वर्षों बाद भी सारा प्रसंग किसी चलचित्रपट सा आँखों के सामने आता है।

उस दिन श्री गुरुजी रेल से सवेरे कोल्हापुर पहुँचेंगे– यह पहले ही घोषित हो चुका था। उनका प्रवेश रोकने के लिए ही चार-पाँच हजार प्रदर्शनकारियों की भीड़ स्टेशन के बाहर जमा थी। पूर्व योजनानुसार स्टेशन पर उतरते ही श्री गुरुजी चार शब्द बोलें, इसलिए मंच भी बनाया था। श्री गुरुजी के स्टेशन के बाहर आते ही प्रदर्शनकारियों ने भीषण पथराव शुरू किया। परिणामतः भाषण का कार्यक्रम रद्द किया। श्री गुरुजी को एक मोटर गाड़ी में तेजी से वहाँ से निकाला। मोटर में ही उन्हें सुझाया कि सुरक्षा की दृष्टि से सीधे अपने स्टुडियो में चलेंगे, पर उन्होंने इनकार किया। कहा– 'डा. बापट के यहाँ चलेंगे। वहाँ जाकर श्री अंबादेवी का दर्शन करेंगे। फिर स्टुडियो में चलेंगे।' तब तक शहर में उपद्रव फैल गया था। पर गुरुजी ने अत्यंत शांति से स्नानादि से निवृत होकर देवी के दर्शन किए। बाद में वे स्टुडियो आए। स्टुडियो में आते ही उन्होंने कहा कि– 'मैं स्वयंसेवक बंधुओं से मिलने आया हूँ। वह कार्यक्रम होना चाहिए, श्री गुरुजी स्टुडियो में पहुँचे हैं, यह वार्ता बाहर फैलते ही चार-पाँच हजार प्रदर्शनकारियों ने स्टुडियो को घेर लिया।

दोनों रास्ते पत्थर रखकर बंद किए गए थे। अंदर हमेशा के ही वातावरण में बैठक चल रही थी। जैसे शहर में मानो कुछ हुआ ही नहीं। श्री गुरुजी स्वयंसेवकों से पूछताछ कर रहे थे। बैठक में मुझे न देखकर उन्होंने मुझे बुलवाया। कोई विशेष गड़बड़ नहीं हो, यह सोचकर मैं दरवाजे पर खास रक्षण कर रहा था। हमारी जिद थी, श्री गुरुजी को यहाँ से सुरक्षित बाहर ले जाएँ, मेरे स्वभाव से वे अच्छी तरह परिचित थे। भड़ककर मैं कुछ न करूँ, इसीलिए मुझे बुलाकर शांत रहने की ताकीद दी।

बैठक समाप्त हुई। वातावरण अधिक भड़कने के पूर्व वहाँ से निकला जाए, यह सुझाव हमने रखा। उसपर श्री गुरुजी ने कहा 'कोल्हापुर आकर श्री जगदंबा का दर्शन करना और यहाँ के स्वयंसेवक बंधुओं से मिलना, यही इच्छा थी। अब आप लोगों को अधिक कष्ट नही दूँगा। जैसा कहोगे, वैसा करूँगा।

उनकी सम्मति मिलते ही तत्कालीन पुलिस अधिकारी की कल्पकता और बहुमूल्य सहकार्य से, लोग समझ भी नहीं पाए, इस तरह से पुलिस की बंद गाड़ी में उन्हें बाहर निकाला गया। टेमलाई में दूसरी गाड़ी तैयार रखी थी।

उस गाड़ी से वे सांगली की और रवाना हुए। इस बीच कुछ

विरोधियों ने श्री गुरुजी से भेंट के निमित्त स्टुडियो में प्रवेश भी किया था। वे उनका कमरा ढूँढ रहे थे, पर यह जम नहीं पाया। श्री गुरुजी पुलिस की गाड़ी में बाहर निकले हैं, यह ध्यान में आते ही टेमलाई तक उन्होंने पीछा भी किया। पर तब तक श्री गुरुजी कोल्हापुर से बाहर जा चुके थे।

मैं धन्य हुआ। इस प्राणों पर बीते प्रसंग से उस महापुरुष को सकुशल बाहर ले जाने पर हमें अत्यंत समाधान हुआ। अपने जीवन में मैंने अनेक अच्छे-बुरे प्रसंग देखे हैं। मैं स्वयं को अत्यंत हिम्मतवाला समझता हूँ। पर उस समय मैं भी गड़बड़ा गया था। परंतु श्री गुरुजी स्टेशन पर उतरने से लेकर कोल्हापुर से बाहर निकलने तक अत्यंत शांत थे। उनकी वह धीरोदात्तता देख मैं धन्य हो गया। पिछले अनेक वर्षों में उनसे कई बार मिला। अनेक स्मृतियाँ, प्रसंग हुए, पर ये दोनों घटनाएँ अपने जीवन में भूल पाना मेरे लिए संभव नहीं। ऐसे उस महापुरुष की स्मृति में शतशः प्रणाम!

(श्री गुरुजी श्रद्धांजलि विशेषांक, तरुण भारत, पुणे)

२६. अनुयायी होने का धर्म

(सरकार्यवाह श्री माधवराव मुल्ये)

श्री गुरुजी गए। मृत्यु का क्रूर प्रहार हुआ। हम सब जिस बात की आशंका मात्र से व्यथित थे, वह हो गई। लाखों स्वयंसेवकों और करोड़ों हिंदुओं की व्याकुलता की कल्पना करना कठिन है। अपने परमपूज्य सरसंघचालक जी के इंगित मात्र पर जीवनसर्वस्व की बाजी लगा देने के लिए सदा तैयार रहने वाले लाखों निष्ठावान स्वयंसेवकों को विधाता का यह क्रूर निर्णय स्वीकार करना पड़ा।

परमपूजनीय गुरुजी की तपोसाधना से राष्ट्रकार्य का जो तेजस्वी रूप निर्माण हुआ है, वह हम सबका मार्गदर्शन कर रहा है। वही हमको सांत्वना प्रदान कर सकता है। जो कुछ चला गया, वह तो केवल भौतिक काया मात्र है। उनका कीर्तिरूप व्यक्तित्व अजर-अमर है।

हमने उनके मुँह से ही सुना है कि यौवन की गंध से भरपूर पूरा खिला हुआ जीवनपुष्प ही मातृभूमि के चरणों पर चढ़ा कर हमें आराधना करनी चाहिए। हमने उनके मुँह से यह भी सुना है कि आयु का क्षण-क्षण तथा शक्ति का कण-कण लगा कर कार्य करें और सब कुछ राष्ट्रकार्य में अर्पित कर गन्ने को निचोड़ने के बाद जिस प्रकार छूछा बचा रहता है, उस

प्रकार शरीर छोड़ दें। सन् १९४० में उनके सरसंघचालक बनने के बाद विगत ३३ वर्षों में संगठन पर कितनी ही आपत्तियाँ आईं, अंग्रेजों के शासन की कुटिल चालों और अपने ही देश के कर्णधारों की अज्ञानतापूर्ण दुर्नीतियों के कारण विकट परिस्थितियाँ निर्माण हुईं, परंतु श्री गुरुजी के नेतृत्व में हिंदूराष्ट्र के निर्माण का यह कार्य अबाध गति से आगे ही बढ़ता गया।

श्री गुरुजी के विभिन्न गुणों का परिचय अपनी क्षमतानुसार हम सबको है। कठोर तपस्या द्वारा उन्होंने आध्यात्मिक शक्तियाँ अर्जित की थीं। विभिन्न विषयों के अध्ययन द्वारा उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। श्रेष्ठ महापुरुषों के संपर्क और मार्गदर्शन में उन्होंने जीवन लक्ष्य की श्रेष्ठतम अनुभूति का साक्षात्कार किया था। योगी, ज्ञानी, तपस्वी अनेक रूपों में उनके दर्शन अनेक लोगों ने किए थे, किंतु इन सब गुणों को उन्होंने राष्ट्रकार्य में समर्पित किया। निःस्वार्थ भाव से और पूरी तन्मयता से अखंड राष्ट्रसेवा का आदर्श उन्होंने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उनके इतने गुणों को अपने जीवन में निर्माण करना हमारे लिए भले ही असंभव हो परंतु उनके अनुयायी होने के नाते हमारे लिए इतना करना निःसंदेह सरल है कि हम भी उनके समान अखंड कर्ममय जीवन का निश्चय धारण करें। राष्ट्रकार्य के लिए जिन-जिन गुणों की आवश्यकता है, उनका अपने जीवन में निर्माण करने का दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करें और जितनी शक्ति भी हमें प्राप्त हो, वह सब राष्ट्रकार्य में समर्पित करें। हमें विश्वास होना चाहिए कि हमारे इस निश्चय में उनका आशीर्वाद और उनकी अनुकम्पा सदैव हमारे साथ रहेगी।

श्री गुरुजी ने हम सभी स्वयंसेवकों को संबोधित कर जो पत्र लिख छोड़े हैं, उनमें भी यही बात निहित है। उन्होंने लिखा है कि 'अपना कार्य राष्ट्रपूजक है, व्यक्ति-पूजा को उसमें स्थान नहीं है।' श्री गुरुजी ने यह वाक्य लिखकर इसी बात का स्मरण दिलाया है कि हम राष्ट्र के लिए समर्पित व्यक्तित्व वाले लोग हैं।

हम सभी स्वयंसेवकों को उनके मार्गदर्शन में कार्य करने का भाग्य प्राप्त हुआ है। हममें से कई बंधु विशेषतः भारत से बाहर विदेशों में ऐसे भी हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष उन्हें देखने का अवसर नहीं मिला। फिर भी उनके जीवन की कठोर साधना से निःसृत चिंगारियाँ अपने-अपने स्थान पर चलनेवाले संघकार्य के माध्यम से हम सभी को छू गई हैं। संघ के स्वयंसेवक

होने के नाते व्यक्तिपूजा से ऊपर उठकर तत्त्वपूजा के हम सब पथिक हैं। इसलिए हम सबके लिए यही योग्य है कि उनकी पुनीत स्मृति में ध्येयपूर्ति पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित करें। उनके योग्य अनुयायी होने का परिचय हम तभी दे सकते हैं, जब हम उनके अखंड कर्मयोगी जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर अपना जीवन भी कर्ममय बनाएँ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों के लिए ऐसा ही एक प्रसंग उस समय उपस्थित हुआ था, जब संघ के आद्य सरसंघचालक डा. हेडगेवार जी का निधन हुआ था। तब दुनिया ने अनेक आशंकाएँ प्रकट की थीं। परंतु तत्त्व के पुजारी संघ के स्वयंसवकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि डा. हेडगेवार के अनुयायी अपने प्रिय नेता के पदचिह्नों पर चलकर कठोर निश्चय और कार्यपूर्ति की धुन लेकर आगे बढ़ने वाले लोग हैं। डा. हेडगेवार जी के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने के लिए, उसी वर्ष कितने ही तरुण कौटुंबिक मोह-ममता छोड़कर घरों से निकल पड़े। विभिन्न प्रांतों में कार्य विस्तार की होड़ लग गई। दुनिया आश्चर्यचकित रही कि इस भीषण आपत्ति की चोट से स्वयंसेवकों के हृदय सुन्न पड़ने के स्थान पर अधिक उत्साह, निश्चय और लगन से भर उठे हैं। आपत्तियों में इसी प्रकार दृढ़तापूर्वक ध्येयमार्ग पर अग्रेसर होने की अपनी परंपरा रही है।

अस्तु। इन कठिन क्षणों में अपने हृदय में अपने परमपूज्य दिवंगत सरसंघचालक की अखंड कर्ममय मूर्ति की स्थापना करें। उनके तैंतीस वर्षों की भारी दौड़धूप का स्मरण करें। कार्य पूर्ण करने को उनकी अधूरी अभिलाषा की कसक को अपने भीतर सँजोए दुनिया को यह दिखाने का अवसर हमारे सामने आया है कि श्री गुरुजी के नेतृत्व में कार्य करने वाले लोग किस धातु के बने हैं।

श्री गुरुजी ने हम स्वयंसेवकों को लिखे पत्र में कहा भी है कि 'अपने कार्य की स्नेहपूर्ण एकात्मता की पद्धति, व्यक्ति निरपेक्षता, ध्येयनिष्ठा आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर सब छोटे-बड़े स्वयंसेवक बंधु अपने परमपूज्य सरसंघचालक जी के मार्गदर्शन में संघकार्य की पूर्ति हेतु काया-वाचा-मनसा जुटे रहेंगे। कार्य शीघ्र लक्ष्यपूर्ति कर सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अपने दिवंगत नेता के इसी विश्वास के पात्र बन कर हमें अपने नूतन सरसंघचालक के नेतृत्व में कार्यपूर्ति कर दिखानी है। इसी में अपने जीवन की सार्थकता है।

(श्री गुरुजी के निधन पर स्वयंसेवकों के लिए प्रसारित संदेश)

३०. अनामिक पथिक
(श्री मोरोपंत पिंगले)

सड़सठ वर्ष पूर्व की माघ वद्य एकादशी शक संवत् १८२७, याने १९ फरवरी १९०६ को सौ. लक्ष्मीबाई और श्री सदाशिवराव गोळवलकर के यहाँ एक बालक ने नागपुर में जन्म लिया। अपने पर्वतमय कर्तृत्व से कालप्रवाह की भी दिशा बदल डालने का सामर्थ्य! पर अपना नाम भी पीछे न रहे इस भाँति निरहंकार भाव का यह अनामिक यात्री!

इस दम्पति की पूर्व की संतानें काल की अकाली छाया से नहीं रही थीं। इस बालक का नाम लाड़ से 'माधव' रखा गया। पर सभी माधव की अपेक्षा 'मधु' कहकर ही पुकारते। नियति के संकेत का मानो यह प्रथम चिह्न ही था कि नाम के प्रति ममत्व नहीं रहे। इस व्यक्ति को लोग अपनी पसंद के नाम से पुकारें, शायद नियति को यही लगा हो या इस बालक की नैसर्गिक मधुरता देख माता-पिता के मुँह से स्वाभाविकतः 'मधु' यह नाम निकला हो। केवल यही बालक बच पाया था। बचा और बड़ा हुआ। बहुत-बहुत बड़ा हुआ। सभी अर्थों से बड़ा हुआ और अपने अखंड ध्येयरत जीवन की कालावधि समाप्त कर ज्येष्ठ शुद्ध पंचमी शक संवत् १८९५, याने ५ जून १९७३ की रात्रि को पंचतत्त्व मे विलीन हो गया।

अपने जीवन में उन्होंने इतने सारे कार्य किए कि उनकी गिनती ही संभव नहीं। कार्य का प्रभाव भी इतना प्रचंड है कि इस कार्य का भावी युग में क्या परिणाम होगा, कार्य का फल कितना भव्य होगा, इसका निश्चित अनुमान करना इतिहास के बड़े-बड़े अध्ययनकर्ताओं के लिए भी असंभव सा है। कार्य की गिनती करना कठिन और महत्ता बताना भी कठिन। प्रत्येक कार्य इस तोल का है कि उस एक कार्य करनेवाले का जीवन भी धन्य हो जाए।

अपने जाने के बाद अपने पीछे कीर्ति की पताका फहराती रहे, यह आकांक्षा बड़े-बड़े कर्तृत्वान पुरुषों की रहती है। यह आकांक्षा उनके कर्तृत्व की गरिमा के अनुसार ही होती है, पर अपना श्राद्ध भी अपने ही हाथों से करनेवाला यह केशधारी संन्यासी निरहंकार के उत्तुंग हिमालयतुल्य शुभ्र शिखर पर ऐसी लीनता से खड़ा रहा कि आसपास उफन रही अहंकार की मैली-मटमैली लहरों के कल्लोल की एक बूँद भी, उसके चरण तो दूर रहे, पर वह जहाँ खड़ा था, उस पर्वत को भी स्पर्श नहीं कर पाई। घनांधकार

में और शोर मचा रही झंझा में भी दीप की ज्योत अखंड जलती रही और ऐसी समा गई कि पीछे राख भी नहीं बची। कपूर की भाँति जलती रही ज्योति।

यज्ञ ऐसा किया की समिधा से उठनेवाली ज्वालाओं की गरमी किसी को नहीं लगी। यज्ञ ऐसा किया कि समिधा की आहुति की आवाज तक नहीं। कहीं चरचर तक नहीं। यज्ञ ऐसा किया की अग्नि के शांत होने पर स्थंडिल भी शेष नहीं रहे।

अहंकार की हवा नहीं लगने पाए, यह कोई उनका व्रत नहीं था, प्रयत्नपूर्वक की गई कोई कठोर तपश्चर्या नही थी। वह तो उनका सहज स्वभाव था। उसमें कोई प्रयास नही था। यह निरहंकार इतना स्वयंभू और सभी ओर से अखंड था कि दांभिकता को कहीं प्रवेश के लिए अवसर ही नहीं था। मानो इसीलिए नियति या परमेश्वर भी उनकी इस वृत्ति का साथ दे रहा था।

जन्मस्थान महान लोगों की स्मृतियाँ पीछे छोड़नेवाला एक मोटे तौर पर स्मृतिचिह्न होता है। नई पीढ़ियों को औत्सुक्यपूर्ण करने के लिए महान लोगों के जन्मस्थान, घर संरक्षित रखे जाते हैं। अपने ऐसे स्मृतिचिह्न पीछे नहीं रह पाएँ, यह वे मन से चाहते थे। और किसी के सोचे बगैर वैसा ही होता रहा। श्री गुरुजी का जन्म किस घर में हुआ, यह नागपुर में कोई भी दिखा नहीं सकेगा, क्योंकि वह घर सड़क चौड़ा करने के कार्य में कभी का नष्ट हो चुका है। यात्री बनकर वे आगे चलते गए और अपनी स्मृतियाँ पीछे नहीं रहें, उनके इस शुद्ध एवं प्रामाणिक भाव को पूर्ण करने के लिए नियति मानो उनके पीछे-पीछे पथ के चरणचिह्न भी पोंछती गई।

वंशपरंपरागत संपत्ति, घर जैसी स्थावर बातें, एक प्रकार का स्मारक होता है। पर अपनी ऐसी जो कुछ भी मालमत्ता पिता द्वारा अर्जित थी, जो पैसा आदि था, वह भी वे समर्पित कर चुके थे। तो उस प्रकार के स्मृतिचिह्न भी रहने का प्रश्न नहीं था।

आगे चलकर बढ़नेवाली वंश वेल भी महान व्यक्ति का स्मरण देती रहकर एक स्मृतिचिह्न बनती है। पर गुरुजी के मामले में वह भी संभवनीयता नहीं रही। माता-पिता के इकलौते सुपुत्र और वह भी आजन्म ब्रह्मचारी! इस कारण वंशवेल यहीं पूर्ण हो गई।

प्रेम का स्पंदन दुहरा होता है। अपने मन में उभरनेवाली भावना

वह दूसरे के मन में अचूक और हल्के से पहुँचाता है। अपने प्रति प्रेम के कारण और आदर की भावना से, अपने बाद संघ के स्वयंसेवक निश्चित रूप से कुछ स्मारक खड़ा करने का उपक्रम करेंगे, इसकी कल्पना उन्हें थी। इसी कारण 'स्मारक' नहीं बनाया जाए, यह सुस्पष्ट ताकीद उन्होंने स्वयंसेवकों को दी। ताकीद नहीं, वह आज्ञा ही थी। संगठन के सर्वोच्च पद पर रहकर भी उन्होने कभी किसी को कोई आज्ञा नहीं दी और आज आखिरी क्षण में ऐसी आज्ञा दी कि हमारा हृदय हिल उठे। नम्र शब्दों में धीमे, पर अत्यंत प्रसन्नता से वे ऐसा कुछ कहते कि उनके शब्द झेलने के लिए अनेकों ने अपना जीवन समर्पित कर दिया। पर उन्होंने जाते-जाते धीमे से ऐसा एक शब्द कह डाला कि अत्यंत कर्तव्यकठोर कार्यकर्ता का हृदय भी पसीज उठे। स्मारक बनाने की इच्छा रहने पर भी वह साकार नहीं करनी थी। हृदय की इच्छा हृदय में ही रखकर उनकी स्मृति की मूर्ति से हमारे क्षुद्र हृदयों को भी मंदिर सी शोभा मिलेगी।

अपने आखिरी पत्र में उन्होंने यह कहा कि उनका कोई स्मारक नहीं बनाया जाए। उसी प्रकार स्मृति रखने के विषय में एक विशेष बात भी कही। स्वयंसेवकों को ही देवता संबोधित कर उन्होंने 'करा छाया कृपेची' यह नम्र हृदय से संत तुकाराम के शब्दों में उन्होंने कहा-

अंतिम ये प्रार्थना, संतजन सुनें सभी,
विस्मरण न हो मेरा, आपको प्रभो कभी।
अधिक और क्या कहूँ, विदित सभी श्री चरणों को।
तुका कहे पैरों पड़ूँ, करे कृपा की छाँह को।।

अलेक्जेंडर पोप की कविता की चार पंक्तियाँ वे हमेशा उद्धृत किया करते थे। वे है-

Thus let me live unseen unknown
Unlamented let me die
Steal from the world and not a stone
Tell where I lie.

ऐसा भाव मन में रख उन्होंने पूरा जीवन व्यतीत किया। कुछ स्मृतिचिह्न पोंछ डालने में नियति ने उन्हें साथ दिया हो पर आगे भी ऐसा ही हो, ऐसा नहीं। नियति को भी मात देनेवाली बलवत्तर शक्तियाँ हैं। श्री गुरुजी ने अपने पीछे अपना कुछ नहीं रहे, यह अंतःकरणपूर्वक प्रयत्न किया यह सच है, पर जो स्मृतिचिह्न पोंछे नहीं जा सकते, उनका क्या? उनके

पीछे लाखों स्वयंसेवक हैं। उन्हीं के हैं। हिंदू समाज के लिए उन्होंने अहोरात्र अपनी देह को चंदन सा प्रयुक्त किया। यह कोटि-कोटि का हिंदू-समाज उनका अनुयायी है। भारत माँ का यह महान सुपुत्र हम लोगों के बीच से गया, तो भी उसके पीछे यह साक्षात् भारतमाता है। वह अपने लाड़ले पुत्र की स्मृति क्या कभी भुला सकेगी? जिस भूमि के एक कोने से दूसरे कोने तक, सभी दिशाओं में जिन्होंने भ्रमण किया, उनकी स्मृति इस मिट्टी का कण-कण क्या भूल सकता है? जिस पावन नर्मदा में उनकी रक्षा का विसर्जन हुआ, वह नर्मदा क्या उनका स्मरण सदा नहीं रखेगी?

(श्रद्धांजलि विशेषांक, तरुण भारत, जुलाई १९७३)

३१. मेरा अहोभाग्य

(पं. मौलिचंद्र शर्मा, राजनेता)

मैंने पहले-पहल श्री गुरुजी के दर्शन सिवनी जेल में उस समय किए थे, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर गाँधी-हत्या का झूठा व बेहूदा आरोप लगाकर प्रतिबंध लगा दिया गया था और श्री गुरुजी व उनके सहयोगियों को सहस्रों-सहस्रों की संख्या में जेलों में डाल दिया गया था। तब मुझसे यह अन्याय सहन नहीं हुआ। श्री एकनाथ रानडे तथा श्री वसंतराव ओक से संपर्क हुआ और जनाधिकार समिति की स्थापना हुई। जनाधिकार समिति के मंच से मैंने देशभर में भ्रमण करके इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई तथा राष्ट्र व समाजभक्त सहस्रों स्वयंसेवकों को तुरंत रिहा किए जाने की माँग की।

मध्य प्रांत के गृहमंत्री श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने कहा— 'नागपुर चलो, अब संघ के मामले को निपटाना ही है।'

मैंने कहा, 'आपने प्रतिबंध लगाया नहीं, अतः आप उसे हटा नहीं सकते। मैं कच्ची गोलियों से नहीं खेलता कि बिना बात आपके साथ चला चलूँ।'

उन्होंने कहा कि 'भाई मैं देहरादून से आ रहा हूँ।' उन दिनों सरदार पटेल देहरादून में स्वास्थ्य लाभ के लिए गए हुए थे। यह सुनकर मैं पहली ट्रेन पकड़कर ही नागपुर गया।

नागपुर पहुँचते ही श्री भैयाजी दाणी तथा श्री बालासाहब देवरस

से परामर्श करके जो नीति निश्चित हुई, तदनुसार सिवनी जेल गया। गुरुजी को एक कमरे में एकांत में रखा गया था, जिसमें दो ओर से हवा आने का स्थान था। मैंने उनके दर्शन करते ही चरण स्पर्श किए और अपने आने का उद्देश्य कहना प्रारंभ किया था कि उन्होंने मेरे मुँह पर हाथ रखते हुए कहा 'ये सब बातें पीछे होंगी। आप मेरे पास आए हैं, तो पहले आपका सत्कार करना मेरा कर्तव्य है।' पास के कोने में रखी बोरी में से उन्होंने स्टोव निकाला उसे जलाया तथा झटपट अपने हाथों चाय बना डाली। मैं उस महापुरुष की इस लीला को देखकर जैसे खो गया तथा मेरी आँखें नम हो गईं।

उन्होंने दो प्याले चाय मुझे पिलाई व एक प्याला स्वयं ली। उनके चेहरे की निश्चिंतता, उदारता व आत्मीयता एक-एक क्षण में मुझे प्रभावित किए जा रही थी और मेरे हृदय ने अनुभव किया कि मैं एक अलौकिक महापुरुष के सान्निध्य में बैठा हूँ।

वे बोले- 'आपने व मेरे सहयोगी मित्रों ने जो सोचा होगा, वह ठीक ही होगा। उन्होंने अपने नाम के कागज पर पत्र लिखकर मुझे दिया। अपना काम समाप्त होने के कारण मुझे उठकर विदा ले लेनी चाहिए थी, किंतु मैं उस महापुरुष के साथ इतना लीन हो गया कि उठने को जी नहीं करता था। अतः और बहुत सी चर्चा छिड़ गई। अंततः उन्होंने ही मुझे स्मरण कराया- 'भाई शाम होने जा रही है, आपको नागपुर भी तो लौटना है?' अस्तु मुझे मजबूरी में चरणस्पर्श कर कर विदा लेनी पड़ी।

नागपुर पहुँचकर श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र के घर से दोनों पत्र सरदार पटेल को देहरादून फोन करके सुनाए। उन्होंने कहा कि इन दोनों पत्रों को मेरे पास भेज दीजिए। मैंने अपने पत्र के साथ उन्हें सरदार के पास भेज दिया तथा अनुरोध किया कि संघ पर प्रतिबंध व सहस्रों व्यक्तियों को जेल में रखने का औचित्य नहीं है।

खैर, श्री गुरुजी ससम्मान रिहा किए गए और जेल से छूटकर नागपुर पहुँचे तो नागपुर में उनका जो भव्य स्वागत हुआ, उसे मैं भुला नहीं पाऊँगा। सारा नागपुर उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ा था। आबाल नर-नारी व बच्चे, वृद्ध अपने तपस्वी नेता की जय-जयकार कर रहे थे। श्री गुरुजी अपनी माता के चरणस्पर्श के लिए गए। एक कच्चे से मकान में उनके साथ पहुँचते ही मैंने भी उस महान आदर्श हिंदू जननी के चरणस्पर्श किए, जिसने राष्ट्र व हिंदू समाज को गुरुजी के रूप में एक

वरदान दिया था। गुरुजी ने माताजी से कहा– 'यह वह व्यक्ति हैं, जिन्होंने संघ पर से प्रतिबंध हटाने के लिए भारी प्रयास किया है।' माताजी ने मुझे गले से लगा लिया व काँसे की थाली में अपने हाथों प्रेम से भोजन कराया। तब मेरी आँखों के समक्ष माताजी के रूप में जीजाबाई की प्रतिमा आ खड़ी हुई। जिस प्रकार जीजाबाई ने महान हिंदू-राष्ट्र की स्थापना के लिए शिवाजी को मुगलों के विरुद्ध खड़ा किया था, उसी प्रकार इन माताजी ने गुरुजी को हिंदू-समाज के पुनरुत्थान के लिए पैदा किया है। मैं उस दिन धन्य-धन्य हो गया।

इसके बाद अनेक अवसर श्री गुरुजी के संपर्क में आने के मिले। जनसंघ की स्थापना के दौरान उनसे अनेक बार मिलने का सौभाग्य मिला। कुछ ही दिन बाद मैं जनसंघ से छूट गया, किंतु गुरुजी व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से छूटना तो दूर रहा उल्टे उसके महान राष्ट्रकार्य के प्रति मेरी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

कैन्सर के आपरेशन के पश्चात् दिल्ली में उनका जो अभिनंदन हुआ, उसमें मैं उपस्थित था। स्वागत का उत्तर देते समय भाषण करते हुए श्री गुरुजी की पैनी निगाह मुझ पर पड़ी होगी और जब सभा विसर्जित हुई तो उन्होंने संघ के एक अधिकारी को मुझे बुलाने के लिए भेजा। इसलिए कि मैं चाय उनके साथ लूँ। उनसे आत्मीयतापूर्ण बातचीत हुई। मैंने उनके अस्वस्थ होने पर चिंता व स्वस्थ होने पर संतोष प्रकट किया तो वे मुस्कुरा दिए। उस दिन चाय पीते समय मुझे सिवनी में गुरुजी के हाथों तैयार चाय याद आ गई।

इसके पश्चात् राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली कार्यालय में उनके दर्शन व बातचीत का अवसर मिला। उस दिन मैं अपने अंतःकरण का कष्ट उन्हें सुनाने गया था। उन्होंने मेरी वेदना को गंभीरता से सुना। उसके बाद उन्होंने मेरे कंधे दोनों हाथों से पकड़कर कहा– 'आप तो स्वयं पंडित हैं। इस हिंदू-समाज की रक्षा मेरे या आप पर निर्भर नहीं है। जो अपने से बना, किया; जो बन रहा है, वह कर रहे हैं; इससे भी अधिक जो बन पाएगा, करते रहेंगे। अपना, कर्तव्य हमें करना है, उत्तरदायी भगवान है। वही इसका रक्षण करेगा, हम तो नाम मात्र के साधन कहला सकते हैं।'

उन्होंने आँखें मूँदी व कुछ देर रुककर उनकी धीमी वाणी गूँज उठी– 'हमें परमशक्तिवान परमात्मा में विश्वास रखना चाहिए। मेरा दृढ़ निश्चय है कि यह जाति उठेगी, इसका अभ्युदय होगा और हिंदू राष्ट्र

संसार के सामने अपने आदर्शों को रखकर विश्व का मार्गदर्शन करेगा।'

वे फिर मौन हुए तथा कुछ देर रुक कर बोले— 'इस रोग के बाद मेरे शरीर का भरोसा नहीं कि कितना चले। शरीर जो आता है, वह जाता ही है। इसलिए इतने पर ही संतोष करना चाहिए कि हमने यथाशक्ति किया और आगे यह क्रम चलता रहे, इसके लिए अपने सदृश साथी तैयार करें। शेष यह श्री भगवान का काम है कि वह इन साथियों को सामर्थ्य प्रदान करे।'

उनकी इस दृढ़ निष्ठा व अटूट विश्वास को देखकर मैं अंतस्थल तक आप्लावित हो उठा। मैं उस दिन हृदय की तमाम वेदना से मुक्त होकर उनके पास से लौटा।

मैंने उन्हें पूर्ण ब्राह्मण व ऋषि कहा है, किंतु अब मैं उन्हें 'आदर्श हिंदू' कहने में अधिक आनंदित हो रहा हूँ। हिंदू का जैसा दर्द उन्हें था, वे ही जानते हैं, जो उनके संपर्क में आए हैं। इस दर्द का इलाज भी उन्होंने अपने जीवन में करके दिखाया। वह था इस हिंदू समाज के संगठन के लिए सर्वस्व अर्पण व भगवान में अनंत श्रद्धा।

'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम'— यह पुरानी कहावत उनके जीवन भर चरितार्थ रही। आपको अब वह सब करना है, जो शेष रह गया है। यही मेरी व आपकी उस महापुरुष के प्रति श्रद्धांजलि होगी।

(पांचजन्य, ८ जुलाई १९७३)

३२. केशव-माधव मिलन

(श्री यादवराव जोशी)

सन् १९२५ में संघकार्य के प्रारंभ से ही डा. हेडगेवार जी के अखंड परिश्रम से संघकार्य की प्रगति हो रही थी। सन् १९२९-३० में डा. हेडगेवार संघकार्य प्रारंभ करने के लिए काशी गए।

दो महान विभूतिओं को निकट लानेवाला यही प्रथम अवसर था। एक विभूति राष्ट्र के उत्तरोत्तर पुनरुत्थान के मार्ग पर बढ़ रही थी, तो दूसरी राष्ट्रोत्थान के मार्ग पर बढ़ने के लिए मार्ग खोज रही थी। पहली विभूति, याने डा. हेडगेवार तथा दूसरी, याने परमपूजनीय गुरुजी।

काशी की एक बैठक में कई प्रौढ़ एकत्रित हुए थे। गुरुजी भी उनमें

थे। पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जी द्वारा प्रकट की गई संघ की भूमिका अत्यंत स्पष्ट और मन को स्वीकार्य हो, ऐसी ही थी। इस कार्यक्रम के अंत में गुरुजी को काशी संघशाखा का संघचालक नियुक्त किए जाने की घोषणा डाक्टर जी ने की। उसी दिन काशी संघशाखा का आरंभ हुआ और गुरुजी के ध्येयजीवन का प्रारंभ हुआ।

डाक्टर जी ने अत्यंत दूरदृष्टि से विचार करके ही काशी में संघकार्य का आरंभ किया था। पंडित मदनमोहन मालवीय के पुण्यप्रसाद से काशी एक महान विद्याकेंद्र बना था। भारत के कोने-कोने से अनेक विद्यार्थी वहाँ आते थे। संघकार्य की जड़ें वहाँ जम जाने पर संघकार्य देश भर में फैलाना सरल होगा, यह डाक्टर जी के मन में था। हिंदू संस्कृति के विकसित सुगंधी पुष्प के समान स्थित काशी विश्वविद्यालय को एक महान मेधावी प्राध्यापक, काशी संघशाखा के संघचालक के रूप में प्राप्त हुए, इसपर डाक्टर जी को अत्यंत प्रसन्नता हो रही थी।

काशी की संघशाखा दिनोंदिन सुदृढ़ होती गई। सभी प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों के अंतःकरण संघ विचार से प्रभावित हो जाने के कारण शाखा बढ़ रही थी।

एक बार विश्वविद्यालय का स्नेह-सम्मेलन था। संघ स्वयंसेवकों के अनुशासनबद्ध व्यवहार का पूरा ज्ञान होने से विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने समारोह की सारी व्यवस्था गुरुजी पर सौंप दी थी। व्यवस्था उत्तम थी। स्त्रियों के लिए अलग से प्रबंध किया गया था। समारोह के समय एक प्राध्यापक स्त्रियों के लिए निश्चित द्वार से अंदर जाने लगे, तब स्वयंसेवकों ने उन्हें रोका और पुरुषों के लिए बने द्वार से जाने का अनुरोध किया। वे प्राध्यापक पं. मदनमोहन मालवीय के अत्यंत प्रिय थे, इसी कारण वे सारे द्वार अपने लिए मुक्त मान रहे थे। उन्हें रोका गया। अनुशासन के मामले में अत्यंत कड़े रहनेवाले, वहाँ के कार्यवाह श्री सद्‌गोपाल, उक्त प्राध्यापक को महिलाओं के लिए निर्धारित द्वार से प्रवेश नहीं दे रहे थे। गुरुजी भी उक्त प्राध्यापक महोदय को वही समझा रहे थे। पर वे नहीं माने और लौट गए। समारोह व्यवस्थित रूप से पूर्ण हुआ। समारोह की व्यवस्था और संघ के अनुशासन की सभी ने मुक्तकंठ से स्तुति की।

परंतु इस घटना का परिणाम समारोह की समाप्ति के बाद अनुभव होने लगा। पं. मालवीयजी के पास जानकारी पहुँच चुकी थी। उन्होंने

गुरुजी को और श्री सद्गोपाल को बुलवाया। गुरुजी ने सारी घटना मालवीय जी को बताई और कहा– 'व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी हम पर सौंपी गई थी। अतः उसका पालन हर किसी को करना चाहिए था। इसमें गलत क्या हुआ? हमसे गलती हुई हो तो एक बार नहीं, सौ बार क्षमा माँगने के लिए हम तैयार हैं। पर जब हमारा वर्तन (व्यवहार) न्यायपूर्ण है, तो क्षमा माँगने का प्रश्न ही नहीं उठता।

पूजनीय डाक्टर जी को जब यह सब पता चला, तो किसी भी मामले में न्यायपूर्ण मार्ग का अवलंब कर चलने की गुरुजी की दृढ़ नीति पर उन्हें आनंद हुआ।

इस घटना का उल्लेख डाक्टर जी अपनी बैठकों में अनेक बार करते थे। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, गुरुजी संबंधी अनेक उदाहरण डाक्टर जी पर गहरा परिणाम कर रहे थे।

गुरुजी कुछ दिनों तक नागपुर में वकीली का बोर्ड लगाए थे। उन्हीं दिनों वकीलों की एक बैठक बुलाई गई। गुरुजी भी उसमें थे। संघकार्य की आवश्यकता और अनिवार्यता बताकर डाक्टर जी ने वकीलों से भी इस कार्य की जिम्मेदारी उठाने का आह्वान किया।

बैठक में उपस्थित कुछ वकीलों ने टालमटोल शुरू की। दैनंदिन कार्य से हम थक जाते हैं। बाहर के कामों के लिए समय ही नहीं मिलता। जिनके पास बहुत समय है पर कोई दूसरा उद्योग नहीं, वे ही यह कार्य करें, यह भी कुछ ने कहा। इस पद्धति से विचार करने में कितने दोष हैं, यह समझाने का प्रयास डाक्टर जी कर रहे थे। पर भाँति-भाँति के कारण बताकर वकील स्वयं को बचाना चाहते थे। गुरुजी ने इस पर तुरंत कहा, 'हाँ, आप लोगों की बात ठीक है। श्मशान घाट जाने की राह देखनेवालो को ही यह कार्य करना है।' गुरुजी के इन उद्गारों पर हँसी फूट पड़ी और सारा विवाद वहीं समाप्त हुआ।

करीब १९३३ में गुरुजी काशी से नागपुर लौटे और डाक्टर जी के निकट सहवास में आए, तब तक सर्वत्र संघ की प्रगति और संघकार्य का प्रभाव अनुभव हो रहा था। उसी वर्ष कांग्रेस ने अन्य प्रांतों की भाँति, मध्यप्रांत में भी चुनाव में विजय प्राप्त कर मंत्रिमंडल बनाया था। उसके बाद प्रांतीय कांग्रेस समिति का अधिवेशन नागपुर में हुआ। उस समय की विषय नियामक समिति की कार्यक्रम पत्रिका पर चर्चा के लिए 'संघ' यह

विषय रखा गया था। इस संबंध में डाक्टर जी से पत्र-व्यवहार करने का अधिकार, प्रांतीय कांग्रेस समिति के कार्यवाह को दिया गया था। उन्होंने डाक्टर जी को जो पत्र लिखा, उसमें कहा गया था- 'संघ के बारे में कांग्रेस की क्या भूमिका है, यह अनेक लोगों द्वारा पूछा जा रहा है। अतः हमने चर्चा के लिए 'संघ' यह विषय रखा है। आपको संघ का ध्येय नीति स्पष्टतः हमें तुरंत सूचित करनी चाहिए।' गुरुजी ने जब वह पत्र देखा तो वे डाक्टर जी से बोले- 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह पत्र सीधे ढँग से नहीं लिखा गया है। चुनाव में प्राप्त विजय से उनका दिमाग ठिकाने पर नहीं है। अतः इस पत्र का योग्य उत्तर देना चाहिए।' डाक्टर जी को गुरुजी का विचार योग्य प्रतीत हुआ। उन्होंने कांग्रेस कार्यवाह को उत्तर लिखा- 'पिछले बारह वर्षों से हम यह कार्य करते आ रहे हैं। अब तक अनेक आमसभाओं में संघ का उद्देश्य विस्तार के साथ बताया जा चुका है। आप भी नागपुर में रहते हैं, अतः संघ के बारे में स्वाभाविकतः आपको जानकारी है। उससे अधिक बताने लायक मेरे पास कुछ है, ऐसा नहीं लगता।'

कांग्रेस कार्यवाह ने डाक्टर जी के इस पत्र का जो उत्तर भेजा, उससे गुरुजी का संदेह सत्य प्रमाणित हुआ। उन्होंने लिखा- 'आपका उत्तर मूल विषय को 'बगल' देनेवाला है। जो प्रश्न हमने पूछा है उसके उत्तर में नहीं है। अतः नीचे दिए विषयों पर स्पष्टीकरण दें।' इसके साथ एक लंबी प्रश्न सूची उन्होंने डाक्टर जी के पास भेजी थी। डाक्टर जी ने उसके उत्तर में लिखा- 'मेरे उत्तर को आपने बगल देनेवाला उत्तर कहा है। परमेश्वर की कृपा से ऐसे शब्द मेरे पास नहीं हैं। परंतु हमसे व्यवहार करते समय अधिक जिम्मेदारी के साथ शब्दों का प्रयोग करना ठीक होगा। किसी परीक्षा में बैठकर पत्रों के उत्तर देने का काल बीत चुका है। संघ और कांग्रेस के परस्पर संबंधों पर तो यही कहना है कि अपने-अपने क्षेत्र में काम करने का पूर्ण अवसर देकर, संपूर्ण देश के कल्याण की दृष्टि से परस्पर आदर एवं अभिमान रखना ही योग्य होगा।'

कांग्रेस के अधिवेशन में संघ पर चर्चा के लिए यह पत्र-व्यवहार सबके सामने रखा जाना आवश्यक था। परंतु अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज को वह पत्र-व्यवहार देखकर अपने पक्ष की गलती की अनुभूति हुई थी। उसमें भी 'बगल देना' इस शब्द प्रयोग में तो भारी गलती थी। सभी सदस्यों के सामने वह पत्र-व्यवहार रखने का धैर्य उन्हें नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि कार्यक्रम की विषयपत्रिका में 'संघ' पर चर्चा के लिए

महत्त्वपूर्ण स्थान रहने पर भी उस पर चर्चा न कर, उसे छोड़ दिया गया।

डाक्टर जी व गुरुजी के परस्पर संबंध दिनोंदिन बढ़ रहे थे। श्री गुरुजी संघकार्य से पूर्णतः एकरूप हो चुके थे। डाक्टर जी ने अपनी दूरदृष्टि से गुरुजी के अंतर्यामी हिमालय स्वरूप उत्तुंग कर्तृत्व को पहचान लिया था। डाक्टर जी ने अपने देश के दो प्रमुख केंद्र माने जानेवाले मुंबई और बाद में कोलकाता, इन शहरों में संघकार्य हेतु श्री गुरुजी को भेजा। नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग में गुरुजी कई वर्षों तक सर्वाधिकारी रहे। कुछ ही दिनों में वे सरकार्यवाह बने। इन बढ़ती जा रही जिम्मेदारियों को गुरुजी द्वारा अत्यंत दक्षता एवं कुशलता से पूर्ण करते रहे देखकर डाक्टर जी का अंतःकरण आनंद से पुलकित होता था।

सन् १९४० में नागपुर में संघ शिक्षा वर्ग चल रहा था। डाक्टर जी इस वर्ग में दो दिन भाग ले सके। पहले गुरुजी को भाषण करने के लिए कहा गया। भाषण का विषय था– 'शिवाजी द्वारा जयसिंह को लिखा गया पत्र।' अत्यंत ओजस्वी वाणी में तीन घंटों तक गुरुजी का भाषण चलता रहा। वक्तृत्व मानो अपने पूर्ण वैभव के साथ ही प्रकट हुआ था। भाषण में हृदय पुलकित करनेवाला प्रेरक विचार सुनकर गुरुजी के प्रति डाक्टर जी के मन में आनंद और अभिमान की भावना ही भर आई। बाद में जब डाक्टर जी रुग्णशैया पर पड़े तो मिलने के लिए आनेवाले स्वयंसेवकों से 'सबसे उत्तम भाषण किसका रहा'। यह पूछते और अब तक के भाषणों में गुरुजी का भाषण विचारों से परिपूर्ण था, यह स्वतः ही कहते।

अपना शरीर 'अब अधिक समय तक काम नहीं कर सकेगा', यह डाक्टर जी को प्रतीत हो रहा था। कभी-कभी वे चिंतातुर होकर कहते– 'मुझे जैसा व्यक्ति चाहिए, नहीं मिला है।' पर इस समय वे जिसकी खोज में थे, वही यह भावी नेता है– इस दृष्टि से वे इस तरुण की ओर देख रहे थे। डाक्टर जी की सूक्ष्म दृष्टि को गुरुजी के प्रत्येक शब्द व प्रत्येक कृति से उनके सर्वस्पर्शी उत्तुंग व्यक्तिमत्व का परिचय होता ही था। अपने इस महान प्राचीन राष्ट्र को वैभव मार्ग पर ले जानेवाला समर्थ पुरुष– इस रूप में वे गुरुजी को देख रहे थे। डाक्टर जी के अंतिम दिनों में उन्हें समाधान एक ही बात का था और वे थे गुरुजी।

वे हमेशा गुरुजी के बारे में, उनके तेजस्वी गुणों के बारे में ही बोला करते। ऐसे समय आंतरिक समाधान व श्रेष्ठ आनंद के भाव उनके

चेहरे पर स्पष्ट दिखाई देते। विशेषतः अंतिम कुछ दिनों में गुरुजी के प्रति अपने सूक्ष्म अवलोकन के बारे में वे मुझे खुलकर बताया करते थे।

डाक्टर जी जब नासिक में अस्वस्थ थे, उन दिनों उनकी सेवा सुश्रुषा गुरुजी ने कैसे की, यह एक बार डाक्टर जी ने मुझे बताया था। एक बार तो पूरे छह घंटों तक डाक्टर जी की नाड़ी धीमे चल रही थी। 'वास्तविक सेवा सुश्रुषा क्या होती है, यह केवल गुरुजी ही जानते हैं।' यह कह कर छोटी-छोटी आवश्यकताओं के प्रति भी, रात्रि-रात्रि जागरण कर, गुरुजी कैसे सतर्क रहा करते इसका वर्णन करते। डाक्टर जी कहते- 'एक शब्द में कहें तो माँ के समान ही' सेवा करते थे। गुरुजी पर डाक्टर जी का अत्यंत विश्वास था।

एक बार डाक्टर जी ने एक स्वप्न बताया। स्वप्न में एक लखपति संघ को भारी रकम देने आया। उसकी माँग यही थी कि संघ उसके पक्ष को समर्थन दे। डाक्टर जी ने उसे गुरुजी के पास भेजा। गुरुजी ने एक क्षण भी विचार न करते हुए उसे कहा- 'यह संगठन एक उच्च ध्येय की साधना के लिए है। त्रैलोक्य का राज्य आने पर भी उसके बदले हम एक इंच भी हट नहीं सकते।' लखपति का आग्रह जारी था कि आप अपने ध्वज में थोड़ा परिवर्तन कर ले तो भी बहुत होगा। गुरुजी ने इसे भी अस्वीकार कर कहा- 'हजारों वर्षों से चला आ रहा यह राष्ट्रध्वज है। उसमें तिलमात्र परिवर्तन भी संभव नहीं।' लखपति निराश होकर लौट गया। दूसरे दिन सभी समाचार-पत्रों ने छापा- 'संघ ने लखपति की लाखों रुपयों की राशि ठुकरा दी।' स्वप्न में भी डाक्टर जी को श्री गुरुजी के प्रति इतना विश्वास था।

डाक्टर जी के जीवन के वे अंतिम दिन थे। दिनोंदिन अधिकाधिक खराब होते जा रहे स्वास्थ्य से भी चिंता में थे पर अपने रक्त के खाद पानी से बढ़ाए इस संगठन के भविष्य के प्रति डाक्टर जी चिंता कर रहे थे।

मैं हमेशा उनके पास ही रहा करता था। उनकी मृत्यु के तीन दिन पूर्व उन्होंने मुझे पास बुलाया और एक विचित्र प्रश्न किया। संघ के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी की मृत्यु होने पर क्या उसकी अंत्ययात्रा सैनिकी पद्धति से निकाली जाएगी?' यह प्रश्न किसके बारे में किया जा रहा है, यह मन को वेदना हो, इतना स्पष्ट था। मैंने उसे टाल दिया, यह कहकर कि औषधि लेने का समय हो गया है। पर वे उसका अर्थ समझ गए। मुझे निकट बुलाकर उन्होंने कहा- 'संघ के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी की मृत्यु होने पर

उसकी अंत्ययात्रा सैनिकी पद्धति से निकाली जाना उचित नहीं होगा। थोड़ा रुककर उन्होंने कहा कि 'संघ क्या है? गुरुजी को इसकी पूरी कल्पना है। संघ के बारे में अनेक लोगों की अनेक कल्पनाएँ हैं, परंतु गुरुजी का विचार परिपूर्ण है।'

उस दिन के उनके वे शब्द मुझ तक ही रहे। घंटे-घंटे में उनका स्वास्थ्य खराब होता जा रहा था। आखिर वह दुर्दिन भी आया। गुरुजी और अन्य सभी अत्यंत दुःखित अंतःकरण से आँखों में वहाँ आँसू भरे खड़े थे। डाक्टर जी की शारीरिक यातनाएँ असह्य थीं वे कभी सचेत रहते, तो कभी अचेत। डाक्टरों ने उनका लंबर पंक्चर करना पड़ेगा, यह निर्णय लिया। यह सुनते ही डाक्टर जी ने आँखें खोलीं। गुरुजी की ओर दृष्टि डालकर कंपित आवाज में उन्होंने कहा– 'गुरुजी इस कार्य की धुरा अब आप पर है।' इसके बाद वे अचेत हो गए। उन शब्दों की तीव्रता सभी को अनुभव हुई, पर उसका अर्थ उस समय ध्यान में नहीं आया। डाक्टर जी ने भावी सरसंघचालक की नियुक्ति कर अपने अंतिम कर्तव्य की पूर्ति कर ली है, ऐसा किसी को नहीं लगा।

स्वास्थ्य देख रहे डाक्टरों का निर्णय कान पर पड़ते ही अपना अंतिम समय निकट आ गया है, वह उन्होंने पहचान लिया और पूरी तरह होश में रहते हुए उन्होंने यह वाक्य कहा था। दूसरे दिन सबेरे लंबर पंक्चर के बाद डाक्टर जी का देहांत हो गया। लाखों हृदयों में प्रकाश निर्माण कर स्फूर्ति देनेवाला वह महान व्यक्तित्व अपने शाश्वत स्थान पर लौट गया, तब सभी को उनके शब्दों का स्मरण हुआ।

उस श्रेष्ठ आत्मा को धारण करनेवाले पुण्यशाली शरीर का अंतिम दर्शन करने के लिए हजारों स्वयंसेवक नागपुर दौड़े चले आए। अंतिम यात्रा की सिद्धता चल रही थी, तब कई स्थानिक व्यक्तियों ने सुझाया कि अंत्ययात्रा सैनिकी पद्धति से होनी चाहिए। अनेकों की कल्पना भी ऐसी ही थी कि अनुशासनबद्ध व प्रबल इस अतुलनीय संगठन के जन्मदाता की अंत्ययात्रा सैनिकी पद्धति से होनी चाहिए। गुरुजी को उन्होंने आग्रह के साथ यह सुझाया भी। डाक्टर जी द्वारा सौंपे गए कार्य की जिम्मेदारी स्वीकार करने के पहले दिन ही गुरुजी की यह विचित्र परीक्षा हो रही है, ऐसा मुझे लगा। पर गुरुजी किसी के दबाव में नहीं आए। डाक्टर जी का कहना ही सच निकला। संघ कोई निजी सैनिक संगठन नहीं, इसकी पूरी

कल्पना गुरुजी को थी। संघ आज या कल सारे समाज का समावेश कर लेनेवाले एक बड़े परिवार के रूप में रहे, यह वे पहचान चुके थे। बाद में सारे क्रियाकर्म एक पारिवारिक स्वरूप में, याने पिता की मृत्यु के बाद जिस स्वरूप में होने चाहिए, उसी में हुए। परिवार के बड़े लड़के द्वारा पिता को अग्निस्पर्श करने से लेकर तो सारे क्रियाकर्म गुरुजी ने किए। उसके बाद बड़े लड़के के नाते से ही डाक्टर जी द्वारा दी जिम्मेदारी उन्होंने ग्रहण की। तबसे अब तक संघकार्य की प्रगति देख अनेकों के मन में यह भाव आया होगा कि प्रत्यक्ष पिता ही पुत्र के रूप में पुनः जन्म लेकर आया है, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं।

(*युगधर्म स्मृति-अंक, जुलाई १९७३*)

३३. अनोखे भावविश्व में

(श्री रज्जू भैया)

पूज्य श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी की बड़ी इच्छा थी कि श्री गुरुजी एक बार श्री बदरीनाथ धाम चलें। इस इच्छा के अनुसार यात्रा कार्यक्रम बनने में बड़ा सहारा मिला। श्री गुरुजी के गुरुभाई स्वामी अमूर्तानंदजी भी कई बार बदरी-केदार की यात्रा का कार्यक्रम बनाने के लिए कह चुके थे। पर श्री गुरुजी भला वहाँ क्योंकर जाने लगे? बदरीनाथ जाने के लिए कोई समुचित कारण चाहिए ही। जहाँ संघ की शाखा और स्वयंसेवक हैं, वहाँ अपने स्वयंसेवकों से मिलने के लिए ही श्री गुरुजी के जाने का कार्यक्रम साधारणतः बनता है। अतः श्री महाराजजी ने एक मार्ग निकाला। बदरीनाथ धाम में लोगों के ठहरने के लिए संकीर्तन भवन की ओर से एक भवन का निर्माण कराया गया था, उन्होंने उसका उद्घाटन श्री गुरुजी से करवाने का तय किया और आग्रहपूर्ण निमंत्रण उनके अगले प्रवास तय होने के पूर्व ही जुलाई मास में श्री गुरुजी के पास भेज दिया।

संघ शिक्षा वर्ग के पूर्व श्री गुरुजी का जाना असंभव ही था, इसलिए सितंबर मास में यात्रा की योजना बनाई गई। श्री गुरुजी, डा. आबाजी थत्ते, स्वामी अमूर्तानंदजी, लाला हंसराजजी और उस क्षेत्र के कुछ तरुण कार्यकर्ता प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी के साथ यात्रा पर निकले।

हरिद्वार में विश्व हिंदू परिषद् की बैठक हुई। ऋषिकेश में 'दैवी

जीव संस्थान' में आश्रमवासियों के मध्य श्री गुरुजी का प्रवचन हुआ। श्रीनगर में स्वयंसेवकों का एक कार्यक्रम हुआ।

यात्रा में एक एम्बेसडर कार, एक जीप तथा श्री गुरुजी के लिए देहरादून के संघचालक जी की एक बड़ी इम्पाला कार थी। ब्रह्मचारी जी की अपनी गाड़ी थी। अभी असली चढ़ाई प्रारंभ भी नहीं हुई थी कि इम्पाला कार ने दम तोड़ना आरंभ कर दिया। ऐसा लगा कि वह विदेशी कार स्वदेशी तीर्थ स्थानों पर जाना नहीं चाहती थी। अतः उसे वापस लौटा दिया गया। उसके यात्री शेष वाहनों में बँट गए और काफिला केदारनाथ की ओर चल दिया।

अभी केदारनाथ का रास्ता पूरी तरह बना नहीं था, अंतिम चढ़ाई भी काफी कठिन थी। श्री गुरुजी को अब पैदल चलने का अधिक अभ्यास न होने के कारण थकावट हो सकती थी। इसलिए घोड़े की सवारी अथवा डांडी से यात्रा करने का सुझाव दिया। जिसको अभ्यास न हो, उसे घोड़े पर बैठकर यात्रा करना भी कष्टदायक होता है। सारा शरीर दुःखने लगता है। पर श्री गुरुजी डांडी में बैठने को तैयार नहीं थे। अधिक आग्रह करने पर उन्होंने साफ कह दिया कि मनुष्य के कंधों पर चढ़कर चलने के लिए उन्होंने केवल अंतिम महायात्रा का प्रसंग निश्चित कर रखा है।

तब हमने श्री महाराज जी से निवेदन किया कि शास्त्र की कोई बात बताकर वे इसके लिए श्री गुरुजी को मनाएँ। श्री महाराज जी के कहने पर उन्होंने इतना ही कहा कि वहाँ चलकर देखेंगे। पर केदारनाथ जाने का प्रसंग ही नहीं आया। वर्षा के कारण रास्ते में कई स्थानों पर पहाड़ खिसक आया था और मार्ग अवरुद्ध हो गए थे। सड़क के टूट जाने से केदारनाथ की यात्रा हो नहीं पाई। बदरीनाथ के रास्ते साफ होने के लिए ही हमको दो दिन रुद्रप्रयाग में रुकना पड़ा।

पहाड़ों पर सर्दी बहुत पड़ती है और श्री गुरुजी धोती छोड़कर अन्य कुछ पहनते नहीं। मैं श्री गुरुजी के लिए सूती बुना हुआ एक नया पाजामा लेता गया था, जो धोती के नीचे पहना जा सकता है। यह इसलिए कि सर्दी में श्री गुरुजी को कष्ट न हो, परंतु श्री गुरुजी ने उसका प्रयोग कभी नहीं किया। मोजे और जूते की भी व्यवस्था की थी, परंतु उसका भी उपयोग श्री गुरुजी ने नहीं किया। मेरे अतिशय आग्रह करने पर उन्होंने उत्तर दिया कि 'पहाड़ पर अनेकों व्यक्ति शीत-निवारक वस्त्र के बिना काम

चलाते हैं, तो मुझे सर्दी से बचने के लिए इतने वस्त्रों की क्या आवश्यकता है? श्री गुरुजी को चाय पीने का चाव तो अवश्य है, पर कई वर्षों से उन्होंने चाय के साथ कुछ खाना छोड़ दिया था। न तो सायंकाल भोजन करते थे और न रात्रि में दूध लेते थे। दिन भर में केवल एक बार भोजन और वह भी अत्यल्प करते थे। हम लोगों को बड़ी चिंता थी कि यह अल्प आहार पहाड़ की सर्दी से बचने के लिए कैसे पर्याप्त शक्ति और उष्णता प्रदान कर पाएगा। यह सब सोचकर हम लोगों ने कुछ सूखे मेवे तथा मुनक्का निर्मित लड्डू अपने साथ ले लिए थे। मैंने उनसे कहा कि पहाड़ पर चाय के साथ कुछ लेना अत्यंत आवश्यक है। एक दिन उनको आग्रहपूर्वक एक लड्डू खिलाया। परंतु यह कह कर कि इसमें मेरे दाँत चिपक जाते हैं, न तो उन्होंने आगे लड्डू ही खाया और न मेवा का ही प्रयोग किया। श्री महाराज जी श्री गुरुजी के लिए विशेष रूप से मूँग के लड्डू बनवा कर लाए थे, पर उन लड्डुओं को भी हम कार्यकर्ताओं को ही खाना पड़ा। पूरे प्रवास में श्री गुरुजी का वही पूर्ववत एक बार भोजन का तथा शुद्ध चाय का प्रयोग बना रहा।

केदारनाथ जी यात्रा न हो पाने के कारण श्री बदरीनाथ क्षेत्र में पाँच दिन ठहरने का अवसर मिला। श्री गुरुजी ने बड़े भक्ति-भाव से भगवान श्री बदरीनाथ जी का सविधि अभिषेक कराया। श्री अलखनंदा जी के तट पर ब्रह्म-कपाली में अपने माता-पिताजी के लिए तथा पूर्वजों के लिए विधिवत पिंड-दान दिए। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना भी श्राद्ध कर दिया। अपने लिए किए गए श्राद्ध की बात उन्होंने भरसक अप्रकट ही रखी। अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ श्री गुरुजी माना ग्राम भी गए, जो भारत का सीमावर्ती अंतिम ग्राम है। माना ग्राम के छोटे-छोटे सभी बच्चों को एकत्रित करके अपने देश व धर्म के विषय में प्रश्न पूछे तथा सभी को मिठाई देने की व्यवस्था करवाई। श्री बदरीनाथ जी से तीन मील की दूरी पर माना ग्राम है और ग्राम से आगे तीन मील पर वसुधारा है। श्री गुरुजी का विचार वसुधारा भी जाने का था। माना तक तो जीप से गए पर माना से आगे पैदल जाना था। श्री गुरुजी डेढ़ मील तो जैसे-तैसे चले, पर फिर साँस फूलने लगी। वसुधारा केवल डेढ़ मील रह गई थी। लेकिन वहीं से लौट आना पड़ा। आने पर श्री गुरुजी ने श्री महाराज जी से कहा- 'आज मुझे अनुभव हुआ कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। माना के आगे डेढ़ मील के बाद

मुझे एक पद चलना भी भारी हो गया।'

बदरीनाथ में एक दिन वहाँ के सभी तीर्थ पुरोहितों की बैठक हुई। उस बैठक में श्री गुरुजी ने सभी से पूछा कि वे अपने कर्मकांड के विषय में कितना जानते हैं। श्री गुरुजी ने सभी को सुझाव दिया कि दक्षिणा में क्या मिलता है, कितना मिलता है, इसका विचार न करते हुए सभी तीर्थ-पुरोहितों को अपना-अपना कार्य शास्त्रसम्मत रीति से करना चाहिए ऐसा करने से ही हिंदू समाज की श्रद्धा-भावना टिकी रह सकती है। श्री बदरीनाथ जी के मंदिर के पुजारी केरल प्रदेश के नंबूद्री ब्राह्मण हुआ करते हैं। उन दिनों मंदिर के जो रावल थे, उन्होंने अपनी विद्यार्थी अवस्था में श्री गुरुजी का भाषण केरल में सुना था। संघ से भी उनका अच्छा परिचय था। उनके साथ भी श्री गुरुजी की बातचीत हुई। बदरीनाथ के अन्य नागरिकों के साथ भी भेंट-वार्ता हुई। सभी से श्री गुरुजी ने यही कहा कि अपने धर्म पर आस्थापूर्वक चलें और अपने बंधुओं के साथ स्नेह-संबंध सुदृढ़ बनाए रखें।

इन्हीं दिनों श्री महाराज जी के श्रीमुख से भागवत कथा सुनने का अवसर श्री गुरुजी को प्राप्त हुआ। दोपहर को तीन बजे से घंटे-डेढ़ घंटे उनकी रसमयी वाणी से कथा-श्रवण का आनंद हम सभी को प्राप्त होता था। श्री महाराज जी कथा इतनी तन्मयता के साथ कहते, प्रसंगों का वर्णन इतना रोचक होता, पात्रों की भाव-भावनाएँ इतनी सुंदर रीति से व्यक्त होतीं कि सुनने वाले उस कथा गंगा में पूर्णतः बह जाते। प्रेमाश्रु-पूर्ण नेत्रों से श्री गुरुजी भी उस कथा को सुनते थे। श्री महाराज जी नित्य श्रीकृष्ण-चरित्र की कथा सुनाया करते थे। प्रसंग था भ्रमर-गीत का। श्री गुरुजी की भाव-विभोरता को देखकर श्री महाराज जी ने बाद में कहा- 'अब तक तो मैं उन्हें एक सामाजिक नेता के रूप में समझता था, किंतु भगवत्कथा के समय मैं जान पाया कि वे तो नारियल की भाँति हैं। नारियल जो ऊपर से तो दृढ़ कठोर दिखलाई देता है, पर जिसके भीतर स्वच्छ निर्मल नीर परिपूर्ण रूप से भरा रहता है। जितनी देर वे कथा सुनते, उनकी आँखों से रह-रह कर अश्रु प्रवाहित होते रहते थे।

अपनी इस तीर्थ-यात्रा तथा कथा-श्रवण के बारे में श्री गुरुजी ने स्वयं एक पत्र में लिखा है- 'श्री बदरीनारायण क्षेत्र में श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज ने संकीर्तन भवन का निर्माण कराया था और उसका

उद्घाटन मुझे ही करना चाहिए, ऐसी उनकी इच्छा थी। श्री महाराज जी की इच्छा को आदेश मानकर मैंने श्री बदरीनाथ की यात्रा करने का निश्चय किया। सोचा कि वर्षों की उत्कट इच्छा पूर्ण करने के लिए परम कृपालु श्री बदरीनाथ ने ही यह संयोग बनवाया होगा और अपने अंतरंग भक्त श्री ब्रह्मचारी जी महाराज को मुझे भवन के उद्घाटन करने के हेतु निमंत्रित करने की प्रेरणा दी होगी। इस कार्यक्रम को निमित्त बनाकर मुझ पर श्री भगवान ने दया कर मुझे अपने पास खींचकर ले जाने का मेरे लिए भाग्य का सुयोग प्राप्त करा दिया। अकारण करुणा करने का यह पवित्र खेल, खेलकर मुझ पर अपना वरदहस्त रख दिया। श्री बदरीनाथ पहुँच कर पाँच रात्रि वहाँ भगवच्चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और श्री महाराज जी के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के कुछ अंश का विवरण सुनने का असीम सुख प्राप्त कर सका। भगवान श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण शोक विह्वल गोप-गोपियों और विशेषकर नंद बाबा और यशोदा मैया की भाव-विभोर अवस्था का उनके द्वारा किया हुआ वर्णन पत्थर को पिघला सकने वाला कारुण्य रस का उत्कट आविष्कार था। उनको सांत्वना देने के लिए श्री भगवान के द्वारा प्रेषित उद्धव जी के आगमन पर गोप, गोपी, यशोदा माई आदि की स्थिति, उनकी भावनाएँ उनका उद्धव जी के साथ हुआ संभाषण श्री ब्रह्मचारी जी के श्रीमुख से सुनते-सुनते मन एक सुखद वेदना का अनुभव कर द्रवित हो जाता था। इस अनुभव का वर्णन किस प्रकार करूँ?'

श्री गुरुजी की विह्वल स्थिति की बात तो उनके अनोखे व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। उसकी चर्चा ही क्या की जाए, जबकि हम जैसे शुष्क व्यक्ति भी कथा की समाप्ति के बाद एक अनिर्वचनीय अतृप्ति का अनुभव करते थे। श्री बदरीनाथ यात्रा का यह कथा-श्रवण प्रसंग अद्भुत और अभूतपूर्व था। एक दिन श्री गुरुजी ने मुझसे कहा– 'अब यहाँ से जल्दी ही चलना चाहिए, नहीं तो हिमालय की यह शांति और ब्रह्मचारी जी की यह कथा कहीं मुझे यहीं रह जाने के लिए विवश न कर दे।' ऐसे प्रसंगों पर प्रकट हो जाता था कि यद्यपि श्री गुरुजी ने डाक्टर साहब के कहने पर अपना अध्यात्म-परक प्रथम प्रेम छोड़कर समाज-सेवा का व्रत अपनाया था, परंतु फिर भी वह प्रथम आकर्षण जब-तब उचित उद्दीपन पाकर प्रबल हो उठता था और श्री गुरुजी उसे प्रयत्नपूर्वक दबाकर रखते थे।

(जीवन प्रसंग-१, पृष्ठ ३६)

२४.श्रद्धावान विभूति

(भक्त रामशरणदास, पिलखुवा)

हमारे देश का नेतृत्व दो प्रकार के नेताओं के हाथ में रहा। एक प्रकार के नेता वे थे, जो भौतिकवाद की चकाचौंध में फँसे रहने के कारण भौतिक प्रगति को ही सर्वोपरि मानकर भारत को अमरीका, ब्रिटेन व फ्रांस की तरह घोर भौतिकवादी देश बना डालने का स्वप्न देखते रहे। उनकी दृष्टि में भारतीय दर्शन, अध्यात्मवाद आदि का कोई महत्त्व ही नहीं था। भारत पश्चिमी देशों का अंधानुकरण कर तेजी से भोगवाद की ओर अग्रसर हो— यह उनकी आकांक्षा रही। दूसरी ओर भारत के प्राण धर्म, संस्कृति तथा उनके महान दर्शन को ही भारत की प्रगति तथा सच्ची समृद्धि माननेवाले नेता थे। भारत की स्वाधीनता के बाद देश में दोनों प्रकार के प्रयास चलते रहे। भारत तेजी से भौतिकवाद की ओर दौड़ने लगा और उसके दुष्परिणाम घोर अशांति, असंतोष तथा अनुशासनहीनता के रूप में तत्काल सामने आने लगे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी राष्ट्र के उन अग्रणी नेताओं में से थे जो घोर भौतिकवाद के दुष्परिणामों को भली-भाँति जानते थे, अतः उन्होंने स्वाधीनता प्राप्त होने से पूर्व स्वाधीन भारत की कल्पना करते समय 'स्वाधीन भारत' को भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन तथा अध्यात्मवादी मूल्यों से युक्त धर्मप्राण अखंड भारत का स्वप्न हृदय में सँजोया था। अपने इस महान स्वप्न की पूर्ति के लिए वे जीवन के अंतिम क्षणों तक अनवरत प्रयास करते रहे। स्वामी विवेकानंद तथा स्वामी रामतीर्थ की तरह धर्मप्राण भारत के आध्यात्मिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए उन्होंने देश भर का भ्रमण कर जो अथक प्रयास किया, वह भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

श्री गुरुजी ने भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था— 'हमारी संस्कृति के प्राचीन एवं जीवनदायी लक्षणों को पुनः तारुण्य प्रदान करने के कार्य की अविलंब आवश्यकता और सर्वोपरि महत्ता हमारे राष्ट्र के वर्तमान संदर्भ में ही नहीं है, वरन् अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में भी है। हमारी सांस्कृतिक दृष्टि को ही, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम एवं सामंजस्य के लिए सच्चा आधार प्रदान करती है और जीवन के संपूर्ण दर्शन को मूर्त करती है, आज के इस युद्ध से ध्वस्त हुए

विश्व के सामने प्रभावी ढंग से रखने की आवश्यकता है।'

'हमें विदेशी वादों की मानसिक शृंखलाओं और आधुनिक जीवन के विदेशी व्यवहारों तथा अस्थिर 'फैशनों' से अपनी मुक्ति कर लेनी होगी। परानुकरण से बढ़कर राष्ट्र की अन्य कोई अवमानना नहीं हो सकती। हम स्मरण रखें कि अंधानुकरण माने प्रगति नहीं। वह आत्मिक पराधीनता की ओर ले जाता है।'

'हमारी महान संस्कृति की जड़ें अमरता के स्रोतों में अत्यंत दृढ़ता से एवं गहराई तक जमी हुई हैं, जो सरलता से सूख नहीं सकती। वे अपने प्राचीन ओज एवं जीवन शक्ति को निश्चय के साथ प्रकट करेंगी ही एवं अपनी संपूर्ण पुरातन शुद्धता एवं भव्यता के साथ एक बार पुनः अंकुरित होंगी।'

श्री गुरुजी के उपरोक्त शब्दों में भारतीय संस्कृति की महानता के साथ-साथ उनके इस दृढ़ विश्वास की झलक मिलती है कि भारतीय संस्कृति को बड़ी से बड़ी शक्ति भी हिला नहीं सकती। विपरीत परिस्थितियों में भी वे इसी दृढ़ आशा व विश्वास के कारण भारतीय संस्कृति के रक्षण व संवर्धन के लिए अनवरत प्रयास करते रहे। बड़ी-बड़ी बाधाओं व आरोप-प्रत्यारोपों से जूझते हुए भी वे प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा का सिंहनाद करते रहे।

श्री गुरुजी दृढ़ ईश्वर विश्वासी तथा सनातन धर्मी थे। वे प्रत्येक कार्य को प्रारंभ करते समय ईश्वर वंदना करना न भूलते थे। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास का परिचय उन्होंने संघ पर लगे प्रतिबंध के समय अनेक बार दिया था।

उन्हें सरकार ने छह माह तक एकांत कारावास में रखा, तब उन्होंने एकांतवास का उपयोग प्रभुभक्ति में किया। उनके स्वास्थ्य की जानकारी के लिए जब जस्टिस मंगलमूर्ति ने कारावास जाकर उनसे भेंट की तो उन्होंने हँसते हुए कहा था– "मैंने अपनी जीवन-पूँजी 'ईश्वर' नामक उस बैंक में लगाई है, जो कभी डूब नहीं सकता।" उनके ये शब्द उनकी ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था के ही प्रतीक हैं।

गुरुजी ने एक बार संघ के स्वयंसेवकों तथा हिंदू समाज के प्रत्येक घटक के नाम दिए अपने संदेश में कहा था–

"विजय निश्चित है। क्योंकि धर्म के साथ श्री भगवान और उनके

साथ विजय रहती है। तो फिर हृदयाकाश से जगदाकाश तक 'भारत माता की जयध्वनि' ललकार कर उठो, और कार्य पूर्ण करके ही रहो।"

वे ईश्वर, देवी-देवता, तीर्थस्थानों, गाय, गंगा, गायत्री आदि सभी के प्रति आस्था रखते थे। संघकार्य हेतु प्रवास के दौरान मंदिरों व तीर्थस्थलों में एक श्रद्धालु के नाते जाकर दर्शन करते थे। अटक से लेकर कटक तक तथा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के तीर्थों तथा देवमंदिरों के संभवतः उन्होंने सबसे अधिक बार दर्शन किए होंगे। वे ब्रजयात्रा के दौरान द्वारकाधीश जी या भगवान बांकेबिहारी जी के मंदिर में जाते, तो भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा के समक्ष पहुँचते ही लीन हो जाते थे।

श्री गुरुजी को निकट से देखने का मुझे अनेक बार अवसर प्राप्त हुआ। कभी संत प्रभुदत्त ब्रम्हचारी जी के यहाँ तो कभी द्वारिका के जगद्गुरु शंकराचार्य जी महाराज के यहाँ। मैंने उनके व्यक्तित्व में महान आस्तिकता के दर्शन किए।

प्रयाग के कुंभ के अवसर पर विश्व हिंदू परिषद् के मंच पर हिंदू-समाज के सभी संप्रदायों के धर्माचार्यों को एक साथ एकत्रित करने का श्रेय श्री गुरुजी के विनम्र व प्रभावी व्यक्तित्व को ही है। मंच पर चारों पीठों के जगद्गुरु शंकराचार्य तथा अन्य धर्माचार्य विराजमान थे। श्री शंकराचार्य महाराज ने प्रवचन से पूर्व 'श्री राम जय राम जय जय राम' महामंत्र का गायन प्रारंभ किया कि श्री गुरुजी तन्मयता के साथ संकीर्तन में मग्न हो गए। इसके पश्चात् संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के झूंसी आश्रम में उन्होंने भगवन्नाम संकीर्तन में तन्मयता से भाग लिया। भगवान श्रीकृष्ण की लीला का रसास्वादन करते उन्हें हमने स्वयं देखा था।

गुरुजी धर्माचार्यों एवं संत-महात्माओं के प्रति पूर्ण आदर की भावना व्यक्त करते थे। गोहत्या विरोधी आंदोलन के दौरान जब भी वे श्री शंकराचार्य से भेंट करते अत्यंत विनम्रता के साथ उनके चरणस्पर्श करते। यही विनम्रता एवं निरहंकारिता उनके बड़प्पन की सबसे बड़ी थाती थी। एक सच्चे व आस्तिक व्यक्ति में भला अहंकार जैसा दुर्गुण पास फटक भी कैसे सकता है?

पूजनीय गुरुजी का मुझसे बहुत स्नेह था। मेरे कट्टरपंथी सनातनी विचारों की अनेक बातें ऐसी हैं, जिन्हें वे भले ही ठीक न समझते हों तथा मैं भी भले ही उनके सुधारवादी दृष्टिकोण के कई पहलुओं से मतभेद

रखता होऊँ, किंतु व्यक्तिगत रूप से उनका मुझ पर बराबर स्नेह बना रहता था। विचारभिन्नता ने उनकी कृपा या स्नेह में कभी कोई कमी नहीं आने दी।

एक बार मुझे भीषण रोगी रहना पड़ा तो मित्रवर श्री अक्षयकुमार जैन (संपादक, नवभारत टाईम्स) मुझे देखने पिलखुवा पधारे। श्री गुरुजी ने प्रवास के दौरान 'नवभारत टाईम्स' में यह समाचार पढ़ लिया। उन्होंने तुरंत पत्र लिखा तथा स्वास्थ्य की कामना की। मेरठ में अथवा दिल्ली या प्रयाग में जब भी उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्होंने संघ अधिकारियों से परिचय कराते समय अत्यंत स्नेह प्रकट कर अपनी विशाल हृदयता का परिचय दिया।

गोरक्षा आंदोलन के दौरान १९६१ में द्वारिका पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ जी महाराज दिल्ली पधारे हुए थे। कर्जन रोड स्थित श्री कुंदनलाल के निवासस्थान पर मैं अपने पुत्र शिवकुमार गोयल के साथ उनके पास बैठा वार्ता कर रहा था। अचानक श्री गुरुजी वहाँ आ पहुँचे तथा शंकराचार्य जी के चरणस्पर्श कर बैठ गए। शंकराचार्य जी ने कहा– 'आप इन्हें जानते हैं? वे तपाक से मुस्कराकर बोले– 'ये पिलखुवा जी हैं? हमारे हिंदू समाज को लेखनी से सचेत करने का विभाग इन्हीं के पास है।'

मेरे निवासस्थान पिलखुवा के कारण वे मुझे प्रायः 'पिलखुवा जी' कहकर संबोधित करते थे।

पूजनीय गुरुजी धर्मप्राण ऋषि-मुनियों के देश भारत की पवित्र भूमि पर गोहत्या के कलंक के जारी रहने से अत्यंत दुखित रहते थे। गोहत्या के इस भीषण कलंक को मिटाने के लिए उन्होंने समय-समय पर भारी प्रयास किया। संघ के स्वयंसेवकों ने पौने दो करोड़ से अधिक हस्ताक्षर संग्रहित कर गोहत्या बंदी की माँग की। जब भी गोरक्षा आंदोलन प्रारंभ हुआ, उन्होंने उसमें पूर्ण योग दिया। इसी प्रकार जब कभी कांग्रेसी सरकार ने हिंदू धर्म पर आघात किए, उन्होंने उनका डटकर उत्तर दिया। देश की जनता को समय-समय पर सचेत कर उसे राष्ट्र व धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित किया।

मुझे भली-भाँति स्मरण है कि सन् १९६२ से पूर्व ही उन्होंने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि चीन भारत पर आक्रमण करेगा, अतः हमें

सतर्क रहना चाहिए। किंतु हमारे अदूरदर्शी प्रधानमंत्री आदि ने इस भविष्यवाणी को 'पागलपन' तक कहकर मजाक में उड़ा दिया था। किंतु जब चीन ने आक्रमण कर दिया तो इस महापुरुष की दूरदर्शिता पर सभी ने आश्चर्य व्यक्त किया था।

आजकल बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षा के युग में नेता लोग अपने व्यक्तिगत प्रचार के लिए नई-नई तिकड़में अपनाते हैं। स्वयं प्रयास कर अपने बारे में अभिनंदन-पत्र तथा अभिनंदन-ग्रंथ प्रकाशित कराने का प्रयास करते हैं। अनेक ने तो अपने ही सामने अपनी मूर्तियाँ तक बनवा लीं, ताकि मरते समय यह आशंका ही न रहे कि बाद में कोई पूछेगा भी नहीं।

दूसरी ओर गुरुजी जैसे अपने प्रचार से कोसों दूर रहने वाले महापुरुष आज के युग में विरले ही होते है। उनके महान व्यक्तित्व व कार्यों को देखते हुए एक क्या, एक दर्जन विशाल अभिनंदन-ग्रंथ भेंट किए जा सकते थे, किंतु उन्होंने इस प्रकार का आयोजन कभी स्वीकार ही नहीं किया। गोलोकवासी होने के पूर्व दो अप्रैल १९७३ को लिखी अपनी अंतिम इच्छा में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'अपना कार्य व्यक्तिपूजक नहीं, राष्ट्रपूजक है, अतः मेरा स्मारक आदि बिल्कुल न बनाया जाए।

गुरुजी धर्मशास्त्रों की मर्यादा व परंपरा के पालन के प्रति कितने सजग थे, यह भी उनकी अंतिम वसीयत से प्रकट होता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार संन्यासी अथवा अविवाहित व्यक्ति के लिए स्वयं अपने जीवनकाल में अपने हाथों श्राद्ध क्रिया कर लेने का विधान है। उन्होंने ब्रह्मकपाल जाकर स्वयं अपना श्राद्ध कर रखा था। यह उनके अंतिम पत्र से रहस्योद्घाटन हुआ। उनके अंतिम उद्‌गार जो उन्होंने संत तुकाराम के भजन को उद्‌धृत कर व्यक्त किए थे, वे अत्यंत मार्मिक व उनकी दृढ़ ईश्वरनिष्ठा के परिचायक हैं। उन्होंने अपने कुलदेवता अर्थात् भगवान को संबोधित करते हुए कहा था- 'मेरे देवता मेरी तुमसे यही अंतिम प्रार्थना है कि तुम मुझे भूल न जाना।'

श्री गुरुजी के निधन को हिंदू समाज की अपूरणीय क्षति मानते हुए आज तमाम देश शोकमग्न है। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, किंतु हम उनके कृतित्व व व्यक्तित्व से निरंतर प्रेरणा प्राप्त कर धर्म व समाज की सेवा के मार्ग पर चल सकते है।

(युगधर्म, जून १९७३)

३५. दलितों के प्रति दुर्भाव नहीं था

(श्री रा.सु.गवई, रिपब्लिकन नेता)

गुरुजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था और चातुर्वर्ण्य का समर्थन किया। यह समर्थन हमारे जैसे कार्यकर्ताओं को कभी भी मान्य नहीं हो सकता था, पर उन्होंने यह समर्थन दलितों के प्रति दुर्भाव से नहीं किया था। कम से कम मैं तो यह मानने को तैयार नहीं हूँ।

गुरुजी के विचार प्रामाणिक थे। हम कार्यकर्ताओं ने उसकी जो आलोचना की, वह केवल तात्विक मतभेद के कारण ही। उनके प्रति दुर्भावना हमारे मन में स्पर्श तक नही कर पाई थी।

गुरुजी के मत और हमारे मत देखें तो वह विचारों का प्रामाणिक मतभेद है, यही मानकर उस ओर देखना होगा। ऐसा नहीं होता तो वर्णव्यवस्था का विरोध करनेवाले हम कार्यकर्ता गुरुजी के विरोध में खड़े रहते, पर ऐसा नहीं हुआ। गुरुजी विचारों के प्रति कठोर, मत के प्रति आग्रही थे, पर प्रत्यक्ष दर्शन में भेट के समय और सहवास में अत्यंत मृदु, नम्र, विनयशील थे। उनसे मिलने का दो-तीन बार अवसर मिला। गुरुजी प्रखर तत्त्व के थे। ऐसे लोगों को दूसरों से जमा लेना कठिन जाता है। पर गुरुजी इसके अपवाद थे।

राष्ट्रीय एकात्मता का निस्सीम भक्त, इस रूप में उनका उल्लेख करना होगा। उनकी प्रत्येक कृति में राष्ट्रभक्ति और त्याग था। उत्तम संगठक, त्यागी, विद्वान, अनुशासनप्रिय– ऐसा यह नेतृत्व था। ऐसे लोग, देश को उनकी जरुरत रहते बिछुड़ रहे हैं, यह दुर्भाग्य है।

(मराठा श्री गुरुजी श्रद्धांजलि विशेषांक, मुंबई, जुलाई १९७३)

३६. नेता हो तो ऐसा

(श्री वसंतराव ओक)

सितंबर १९४७ के दिन थे। पंजाब में भीषण बाढ़ आई हुई थी। परमपूजनीय श्री गुरुजी को जालंधर से फगवाड़ा के कार्यक्रम में शामिल होने के लिए जाना था।

जालंधर के पास नदी में भीषण बाढ़ के कारण रेलवे पुल के बीच

के खंबे बह गए थे तथा रेल पटरियाँ केवल इधर-उधर के दो आधारों पर लटकी हुई थीं। जालंधर से नदी पार करने का और कोई मार्ग था ही नहीं। लटकी हुई रेल पटरी को पार करना खतरे से खाली नहीं था।

श्री गुरुजी फगवाड़ा के कार्यक्रम में पहुँचने को दृढ़ संकल्प थे। उन्हें खतरे के नाम पर रोका नहीं जा सकता था।

हमने योजना बनाई कि सबसे आगे मैं रहूँगा, बीच में श्री गुरुजी तथा पीछे अन्य व्यक्ति– इस प्रकार सतर्कता से स्लीपरों पर पैर रखते हुए उसे पार कर लेंगे। जैसे ही पुल पर पहुँचे कि श्री गुरुजी तेजी से आगे बढ़कर हम सबसे आगे हो लिए। हमारी योजना धरी की धरी रह गई। नाम मात्र को लटकी हुई रेल पटरी के स्लीपरों पर वे निर्भीकता के साथ अपने चरण बढ़ाते हुए पार हो गए। मुझे तब तक जान में जान नहीं आई, जब तक वे सकुशल पार नहीं पहुँच गए।

किसी भी कार्यक्रम में समय पर पहुँचना तथा बड़े से बड़े खतरे का स्वयं आगे रहकर सामना करना– यह श्री गुरुजी की सदा ही प्रवृत्ति रही। किसी संकट या खतरे से भयभीत या विचलित होना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था।

भारत विभाजन के दौरान श्री गुरुजी अमृतसर में थे। संघ के स्वयंसेवक पाकिस्तान बने क्षेत्रों से मारे-पिटे व लुटकर आने वाले हिंदू बंधुओं की हर प्रकार सेवा में तत्पर थे। श्री गुरुजी जब लाहौर मुल्तान, कराची, आदि अनेक स्थानों पर अपने हिंदू जनों की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने व अत्याचार सहन करने की घटनाएँ सुनते तो उनका हृदय द्रवित हो उठता।

एक दिन प्रख्यात नेता श्री मेहरचंद महाजन तथा जस्टिस रामलाल उनसे भेंट करने आए। श्री महाजन ने कहा, 'गुरुजी! हम तो रिफ्यूजी हैं।'

श्री गुरुजी ने यह वाक्य सुनते ही कहा 'नहीं, आप रिफ्यूजी नहीं, यह समस्त राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति का है, आप सब उसके समान अधिकारी हैं। कोई अपने ही देश में 'रिफ्यूजी' कैसे हो सकता है। वे कुछ क्षण रुके तथा बोले– 'जो हिंदू बंधु अपने पावन धर्म की रक्षा के लिए दर-दर की ठोकरें खाकर भी इधर आ रहे है, उनके बलिदानों को कभी नहीं भुलाया जा सकता। वे इस भीषण परीक्षा में सफल हुए हैं।'

सायंकाल अमृतसर में एक विराट सभा का आयोजन था। कुछ ही

देर पूर्व हिंदू बंधुओं के बलिदानों व अत्याचारों की घटनाएँ सुनकर विदीर्ण हुए हृदय ने सभा में पूर्ण धैर्य का परिचय दिया। उनकी वाणी में न उत्तेजना थी न आवेश। शांत भाव से उपस्थित लाखों विस्थापितों को संबोधित किया।

यह बात भारत विभाजन से पूर्व १९४६ की है। मैं श्री गुरुजी के साथ हैदराबाद व कराची आदि के प्रवास पर था। हैदराबाद में मुस्लिम आततायियों ने हिंदुओं पर आक्रमण कर अनेकों को जान से मार डाला था। इस दंगे में संघ के एक कर्मठ कार्यकर्ता की भी हत्या कर दी गई थी।

हैदराबाद पहुँचते ही श्री गुरुजी ने स्वयंसेवकों से पूछा– 'उस हुतात्मा स्वयंसेवक के घर में कौन है?' जब उन्हें बताया गया कि उसकी विधवा पत्नी है। तो वे स्वयं उसके पास जाकर मिले। उसे सांत्वना दी तथा कार्यकर्ताओं को उस शहीद पत्नी के जीवन निर्वाह की व्यवस्था का निर्देश दिया। इस प्रकार सदैव ही वे संघ के प्रत्येक कार्यकर्ता के योगक्षेम की चिंता राष्ट्रकार्य के समान रखते थे।

इन दिनों कराची में साधु टी.एल.वासवानी की अध्यक्षता में श्री गुरुजी की जो सभा हुई थी, वह बहुत विराट सभा थी। श्री गुरुजी के एक शब्द से वहाँ के हिंदुओं में आशा का संचार हो उठा था।

गोवा को पुर्तगाली दासता से मुक्त कराने का संकल्प लेकर १९५५ में जब मैंने दिल्ली से सत्याग्रही जत्था ले जाने का निर्णय किया तो श्री गुरुजी को पत्र लिखकर गोवा संग्राम को सफलता के लिए उनके शुभाशीर्वाद की कामना की।

श्री गुरुजी ने पत्र मिलते ही मुझे जो शब्द लिखे वे मेरे जीवन के लिए प्रेरणा के अजस्र स्रोत बन गए।

उन्होंने लिखा था– 'यदि मेरे पास अपनी कुछ पुण्याई है, भगवान की कृपा है, तो वह समस्त पुण्याई तुम्हारे साथ है। शुभकार्य में सफलता का विश्वास लेकर आगे बढ़ो तथा यशस्विता से वापस लौटो।'

पूजनीय श्री गुरुजी इस युग के ऐसे राष्ट्रपुरुष थे कि जिनके व्यक्तित्व-कृतित्व से विश्वभर के व्यक्ति व राष्ट्र समाजसेवा, अनुशासन तथा संगठन की प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। उनका विराट व्यक्तित्व नवसृजन का प्रतीक था। विभिन्नता में एकता के विश्वश्रेष्ठ भारतीय जीवनदर्शन के वे मूर्तिमान स्वरूप थे। उनकी प्रत्येक कृति और विचार में संपूर्ण भारत की

अखंडता का दर्शन होता है।

उनके साथ अनेक वर्ष बिताने, उनसे बहुत कुछ सीखने उनके विराट व महान व्यक्तित्व को निकट से देखने का मुझे जो सौभाग्य प्राप्त हुआ वह मेरे जीवन की अमूल्य थाती रहेगी।

(पांचजन्य, जुलाई १९७३)

३७. वह प्रकाश

(श्री हो.वे.शेषाद्रि)

२० जून १९४०। नागपुर। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक पूज्य डाक्टर केशवराव हेडगेवार की अस्वस्थता विषम स्थिति को पहुँची है। उन्हें भास होने लगा है कि अंतिम क्षण आ रहे हैं। उन्होंने गुरुजी तथा संघ के अन्य प्रमुखों को अपनी शय्या के पास बुलाया और गुरुजी को संबोधित कर 'अब से संघ का सारा उत्तरदायित्व आपको ग्रहण करना होगा' कहते हुए एक ही वाक्य में समाप्त कर दिया। इसके अगले दिन उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

इस बात के पश्चात् लगभग ३३ वर्ष व्यतीत हो गए। इसी वर्ष ६ जून १९७३ को सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि का आगमन हुआ है, परंतु नागपुर का रेशमबाग मैदान प्रकाशित हो रहा है। वह कौन-सा प्रकाश है?

डा. हेडगेवार जी के समाधिस्थल पर उनका स्मृतिमंदिर है। उसमें उनकी पूर्णाकृति की भव्य प्रतिमा है। वे पूर्व दिशा की ओर एकटक देखते हुए बैठे हैं। प्रत्येक दिन प्रातः उषःकालीन स्वर्णकिरणों को निहारने वाले उनके नेत्र आज रात्रि के समय वही स्वर्ण किरणें देख रही हैं। वह कौन-सा प्रकाश है? वह एक चिता की ज्वाला है। डा. हेडगेवार जी ने संघ का कार्यभार जिन्हें सौंपा था, उन श्री गुरुजी की चिता की ज्वाला है वह। डा. हेडगेवार जी द्वारा सौंपे गए कार्य की सिद्धि हेतु अपनी संपूर्ण आयु यज्ञकुंड के समान लगातार जलाकर अब श्री गुरुजी अपनी जो पूर्णाहुति दे चुके हैं, उसकी साक्षीभूत ज्वाला है यह! ध्येय सिद्धि के अपने जीवनयज्ञ में उनके द्वारा दी गई पूर्णाहुति से प्रज्ज्वलित ज्वाला का प्रकाश है वह। उस रात को दिन के रूप में परिवर्तन करने वाला स्वर्ण प्रकाश है वह!

उस दिन ६ जून को रेशमबाग मैदान में मात्र चमका हुआ एक

प्रकाश नहीं है वह। उस प्रकाश की प्रखरता अपूर्व है, अपार है। उस प्रकाश का सामर्थ्य इतना है कि वह दूरी और काल की सीमा को पार कर सकता है। केवल चंदन की लकड़ियों को लगी ज्वाला का ही नहीं, अपितु ६७ वर्षों की आयु के अखंड तप की अग्नि का प्रकाश है वह!

उस तप का स्वरूप क्या है? किस कार्य की सिद्धि के लिए वह तप चला? स्वयं के लिए स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से? मोक्ष सिद्धि के लिए? आत्म साक्षात्कार के लिए? नहीं, नहीं! इनमें से किसी के लिए भी नहीं। भारतीय जनता को इस लोक में ही स्वर्गतुल्य सुख प्राप्ति की कामना से किया गया तप है वह। आज हमारे राष्ट्र पर आच्छादित सैंकड़ों समस्याओं व संकटों से राष्ट्र की मुक्ति हेतु किया गया तप है वह! आत्मविस्मृति तथा आत्महीनता की भावना अंधकार में छटपटा रही हमारी पीढ़ी को अपने राष्ट्रीय ध्येय का वास्तविक ज्ञान कराने हेतु किया गया तप है वह! राष्ट्रीय आत्म साक्षात्कार के लिए किया गया तप है वह!

पूज्य डा. हेडगेवार जी ने सन् १९२५ की विजयादशमी को नागपुर में संघ का बीज बोया। देश के पुनरुत्थान के लिए 'हिंदू संगठन' का बीजमंत्र दिया। उस मंत्र की सिद्धि के लिए एकनिष्ठ वीरव्रतियों का एक समुदाय गठित किया। मंत्र-सिद्धि की एक परिणामकारी पद्धति भी उन्होंने प्रदान की। पंद्रह वर्षों तक अपने जीवन की संपूर्ण शक्ति को उँडेल कर उस मंत्र की प्राण प्रतिष्ठापना भी की। शरीर त्यागने से पूर्व अपने हाथ के हिंदू संगठन के ध्येय मंत्र की ज्योति को भावी नेता श्री गुरुजी के हाथों में सौंपकर वे चले गए।

'हिंदू संगठन' शब्द के दो भाग है। पहला है 'हिंदू'। वह जैसे हमारा समाजसूचक शब्द है, वैसे ही हमारे राष्ट्रीय ध्येय का सूचक भी है। श्री गुरुजी की जीवन-साधना का सबसे प्रमुख पहलू है– जनमानस में हमारे राष्ट्रीय ध्येय को ग्रसित करनेवाले ग्रहण को दूर करने के लिए उनके द्वारा की गई प्रभावकारी साधना।

हिंदुत्व के ध्येय मंत्र की उपासना किए बिना यह आशा करना कि भारत पुनः विश्व के लिए उदात्त मानवीय आदर्शों का, आध्यात्मिक संस्कृति का गुरु बनकर चमकेगा, मृग-मरीचिका का पीछा करना ही है। इसीलिए श्री गुरुजी ने एकाग्रनिष्ठा से इसकी उपासना अपनाई।

उस दिन जब डाक्टर हेडगेवार जी ने हिंदू संगठन का ध्येय मंत्र

दिया, राष्ट्रजीवन के किसी भी क्षेत्र में हिंदुत्व की छाया नहीं दिखाई देती थी। सब ओर हिंदुत्व के प्रति घृणा व धिक्कार की भावना ही व्याप्त थी। 'हिंदू' शब्द से नाक भौं सिकोड़ने वाले आत्मक्लैब्य का शिकार था हमार जनमानस। परंतु आज वह परिस्थिति नहीं रही। विद्यार्थी, श्रम, शिक्षा, धर्म, राजनीति, साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में हिंदुत्व की सुगंधि फैली हुई है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में सैंकड़ों, हजारों ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता प्रत्येक प्रांत में कार्यरत हैं। संपूर्ण राष्ट्रजीवन में इस भूमि की सत्य राष्ट्रीयता का सिंहगर्जन आज सर्वत्र प्रतिध्वनित है। अराष्ट्रीय वादों के नारों के मोहक आवरण उखड़ने लगे हैं। भारत पुनः अपने आत्मप्रकाश में सचमुच भारत प्रकाशपूर्ण बन ऊपर उठ रहा है। ६ जून की संध्या को पूज्य डा. हेडगेवार जी के मुख मंडल को जिस चिताज्वाला के प्रकाश ने प्रज्ज्वलित किया, वह भारत के आत्मप्रकाश का प्रतिरूप है। श्री गुरुजी के ३३ वर्षों के अखंड आत्मयज्ञ का अमृतमय प्रतिफल है।

'हिंदू संगठन' शब्द में 'संगठन' का भाग उसका दूसरा अत्यंत मुख्य पहलू है। हिंदू जनता को अपने राष्ट्रीय ध्येय के प्रखर ज्ञान से प्रेरणा पाने के अतिरिक्त अपनी सभी सामाजिक विघटन व विषमताओं को त्याग कर एक अखंड संगठित राष्ट्रपुरुष के रूप में उत्तिष्ठ होना राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए उतना ही आवश्यक है।

डा. हेडगेवार जी के शरीर त्याग से पहले इस हिंदू संगठन का कार्य अधिकतया महाराष्ट्र व विदर्भ तक ही सीमित था। देश के अन्य भागों में उसका केवल प्रारंभ हुआ था। तब से अब तक श्री गुरुजी के नेतृत्व में संगठन बृहद् रूप में बढ़ा। संपूर्ण देशव्यापी हो गया। प्रत्येक प्रांत में सैंकड़ों, हजारों केंद्र फैल गए। हजारों, लाखों निष्ठावान कार्यकर्ताओं को एकत्र किया। महात्मा गाँधी जी ने राजनीति में प्रवेश करने के प्रश्चात् एक बात कही थी कि 'सर्व साधारण हिंदू एक कायर है। एक साधारण मुसलमान गुंडा है।' परंतु आज हिंदू के संबंध में ऐसा कहने का साहस कोई नहीं कर सकता। मार खाकर रोते बैठने का हिंदू का वह समय कभी का बीत गया।

६ जून की शाम को डा. हेडगेवार जी की प्रतिमा के सम्मुख प्रज्ज्वलित उस चिता ज्वाला का प्रकाश मानो हिंदुओं के इस ऐक्य जीवन के उषःकाल का प्रतिबिंब है। श्री गुरुजी के जीवन यज्ञ से प्रसन्न होने वाले यज्ञपुरुष का महाप्रसाद है।

हम श्री गुरुजी के संबंध में जितना अधिक सोचते हैं, उतना अधिक स्पष्ट रूप से हमारे अंतःचक्षुओं के सम्मुख एक महोज्ज्वल राष्ट्रीय व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत होता है। वह ऐसा राष्ट्रस्वरूपी निर्मल उज्ज्वल चित्र है, जिस पर निजी, व्यक्तिगत किसी इच्छा अनिच्छा, भावना-विकारों की छाया तक नहीं पड़ी। स्वामी रामतीर्थ ने एक परिपूर्ण देशभक्त का वर्णन करते हुआ कहा था कि– 'तुम देशभक्त बनना चाहते हो तो अपने देश व जनता के साथ प्रेम से समरस बन जाओ। तुम्हारे और तुम्हारी जनता के बीच तुम्हारे व्यक्तित्व की अलग छाया भी न पड़े.. मैं ही यह देश हूँ, मैं ही यह संपूर्ण भारत हूँ, ऐसा चिंतन करो...ओ ! मेरा कद कितना भव्य है। मैं चलूँ तो भारत ही चलता है। मेरा स्वर ही भारत का स्वर है। मेरी साँस ही भारत की साँस है। मैं ही भारत हूँ। मैं ही शंकर हूँ। यही सच्चा वेदांत है। यही सच्ची देशभक्ति है।'

श्री गुरुजी का जीवन मानो इस आदर्श का रक्त व मांस से भरा सजीव हृदय था।

कोई भी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याएँ घिरी हों, उन सब के मध्य भारत की एकात्मकता के प्रकाशस्तंभ के रूप में श्री गुरुजी की वाणी मुखरित होती थी। श्री विनोबा भावे ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इसी बात पर बल देकर कहा कि 'श्री गुरुजी का राष्ट्रभाव, अखिल भारतीय दृष्टि विशाल है तथा अध्यात्म निष्ठा गहरी है।' श्री गुरुजी को अपना प्रतिस्पर्धी समझने वाले राजनैतिक नेताओं ने भी अपने संवेदना संदेश में यह बातें मुक्त मन से कही। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा– 'अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा प्रखर जीवननिष्ठा से श्री गुरुजी ने राष्ट्रजीवन में आदर का स्थान पाया था।' इसमें भी श्री गुरुजी के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की आभा ही प्रतिबिंबित है।

जनता को एकत्रित करने की, रूपित करने की उनकी असदृश संगठन कुशलता राष्ट्रीय जीवन के साथ समरस उनके व्यक्तित्व में व्याप्त एक और अद्भुत बुद्धि प्रतिभा थी। स्वामी विवेकानंद अपने देहत्याग के पूर्व भविष्य का एक सुंदर चित्र खींच गए– 'और भी अनेक विवेकानंद जन्म लेंगे।' उस भव्य स्वप्न को साकार करने में श्री गुरुजी ने जो उज्ज्वल सफलता प्राप्त की, उसने श्री विवेकानंद की आत्मा को भी अपार गर्व प्रदान किया होगा। विवेकानंद के जीवन के अग्निकण के समान सहस्रों

तेजस्वी राष्ट्रसमर्पित नवयुवकों को गढ़ना राष्ट्रमाता को श्री गुरुजी द्वारा समर्पित सर्वाधिक अमूल्य देन है।

किसी महापुरुष की सफलता का मूल्यांकन करने के लिए दो दृष्टियों से देखना होगा। पहली है उसके व्यक्तिगत सद्गुण, जीवनादर्श, उसके द्वारा स्थापित संस्था, रचित साहित्य इत्यादि। दूसरी इससे भी मुख्य है, उसके पश्चात् भी उन्हीं आदर्शों को जारी रखनेवाले निष्ठावान प्रज्ञावान कार्यकर्ताओं की परंपरा। इस दूसरी दृष्टि से भी हाल की शताब्दियों में, प्रायः सारे विश्व में गुरुजी की कार्यसिद्धि अद्वितीय है, इसमें संदेह नहीं। यह गुरुजी की महान सिद्धियों के उत्तुंग शृंग पर स्थित स्वर्णकलश के समान परमोच्च साधना है।

श्री गुरुजी को श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए अनेक स्थानों पर, अनेक दलों के नेताओं ने वर्णन किया है 'गाँधीजी के पश्चात् उसी स्तर पर भारत के नभो मंडल को प्रकाशवान करने वाले नेता हैं श्री गुरुजी'।

इस दृष्टि से श्री गुरुजी की जीवन सिद्धियाँ क्या हैं? गाँधी जी ने विदेशियों की राजनैतिक दासता को उखाड़ फेंकने के स्वातंत्र्य युद्ध का बिगुल बजाया, पर राजनैतिक दासता से मुक्त होने पर भी राष्ट्रजीवन पर मानसिक दासता छाई हुई थी। उसके विरोध में श्री गुरुजी ने स्वातंत्र्य संग्राम का बिगुल बजाया। इस कार्य की सफलता के लिए उन्होंने राजनीति से परे, परिशुद्ध राष्ट्रीय संस्कृति की निष्ठा को जनजीवन में ढालने के अत्यंत श्रमसाध्य आह्वान को अपनाया।

अपने पश्चात् भी यही कार्य अविरत रूप से चल सके ऐसी सफल परंपरा का निर्माण करना श्री गुरुजी की एक और महान सिद्धि है। डा. हेडगेवार जी ने असाधारण दूरदर्शिता से ध्येयनिष्ठ व्यक्तियों के निर्माण का, राष्ट्रीय शील संवर्धन का जो विधायक कार्य प्रारंभ किया, उसी को श्री गुरुजी ने देशव्यापी बनाया। सत्ता, कीर्ति, प्रसिद्धि, प्रचार, धन, स्थान-मान, राजनैतिक प्रतिस्पर्धा आदि स्वार्थ के कीड़ों से मुक्त पवित्र, शील तथा समर्पण के वातावरण में अपने सहयोगियों के जीवन कमलों को उन्होंने विकसित किया।

हृदयस्पर्शी भावनाओं का यह ऐसा प्रकाश है, जिससे लगता है कि श्री गुरुजी अपने जीवन की संपूर्ण सफलताओं का भोग डा. हेडगेवार जी को चढ़ा रहे हों। अपनी चिता-ज्वाला के प्रकाश से अपने नेता की प्रतिमा

के मुखमंडल ही को नहीं, अपितु उस नेता के अंतःकरण को भी आनंद और गर्व से प्रकाशित करने वाला प्रकाश है वह। इसके अतिरिक्त अपने इस परमप्रिय हिंदू देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए तड़प रहे प्रत्येक हृदय को भी चिरकाल तक प्रकाशित करने वाला प्रकाश है वह। सदा-सर्वदा अपनी परंपरा को विकसित करते हुए, नए-नए हृदयों को प्रकाशित करते हुए भविष्य में राष्ट्रजीवन के नवीन दिन को संपूर्ण प्रकाश के साथ प्रकाशित करने वाला चिर प्रकाश है वह!

(जाह्नवी, श्रद्धांजलि विशेषांक, १९७३)

३८. पटेल - गुरुजी भेंट

(श्री स.का.पाटील, कांग्रेस नेता)

यह महत्त्वपूर्ण जानकारी आज प्रथमतः दे रहा हूँ। गाँधीजी की हत्या के बाद संघ पर प्रतिबंध लगा। प्रतिबंध से गुरुजी और संघ पर आसमान फट पड़ा। कई स्वयंसेवक पकड़े गए। संघ को लेकर लोग संदेह करने लगे। उन्हीं दिनों मेरे एक मित्र मुझे गुरुजी के पास ले गए। गुरुजी और मेरी खुलकर चर्चा हुई। इसके बाद मैं अनेक बार गुरुजी से मिलता रहा। गुरुजी के बारे में मेरा मत अत्यंत अच्छा हुआ।

मैंने अपना यह मत गृहमंत्री सरदार पटेल के सामने रखा। सरदार राष्ट्रीय वृत्ति के थे। हिंदू धर्म के प्रति उन्हें अत्यंत आदर था। पंडित नेहरू और सरदार की संघ की ओर देखने की दृष्टि भिन्न थी।

पूरा प्रयास कर सरदार ने पंडितजी के मन में संघ के प्रति, गुरुजी के प्रति रहा संदेह दूर किया। सरदार और गुरुजी की भेंट मैंने करा दी थी। पर दोनों की भेंट के समय मैं वहाँ नहीं था। इस कारण क्या बातचीत हुई, यह मुझे ज्ञात नहीं। पर चर्चा का परिणाम प्रतिबंध उठने में रहा। इसके बाद मैं गुरुजी के बहुत निकट पहुँचा। हममें परस्पर प्रेम था, आदर था। बिना कारण के हम मिले नहीं। पर उनके प्रति आदर कभी कम नहीं हुआ। इस प्रकार मेरा उनसे २५ वर्षों से परिचय रहा है। गुरुजी मेरे जीवन में अनेक बार आए। उनका एक ध्येय के प्रति अर्पित जीवन था। उन्होंने स्वतंत्र और बलवान राष्ट्र, बलवान हिंदू धर्म– इस ध्येय की पूर्ति के लिए ही सारा जीवन लगा दिया था। गुरुजी हिंदू धर्म के अभिमानी थे, पर अन्य

धर्मों का द्वेष उनमें नहीं था। अपने धर्म के प्रति आत्यंतिक निष्ठा, प्रेम का अर्थ दूसरे धर्मों के प्रति द्वेष नहीं होता। उनका जीवन ऋषि-मुनि सा था। वैसा नहीं होता तो हजारों तरुणों को वे आकर्षित नहीं कर पाते।

दो-तीन वर्ष पूर्व मैं नागपुर में उनसे मिला था। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। गिर रहा था। पर वे खुलकर बात करते रहे। मै भी संघ के बारे में खुले मन से बोलता रहा। इस भेंट का परिणाम राजकीय दृष्टि से अत्यंत अच्छा रहा। उनके निधन से राष्ट्र का एक महान व्यक्ति खो गया है।

(श्रद्धांजलि विशेषांक, मराठा, मुंबई १९७३)

३९. और एक अनजाना पहलू यह भी

(श्री सुदर्शन जी)

पूजनीय गुरुजी के जून सन् १९७३ में दिव्यलोकगमन के पश्चात् उस समय उपलब्ध उनके विचारों के संकलन एवं प्रकाशन का कार्य प्रारंभ हुआ और 'श्री गुरुजी-समग्र दर्शन' माला का भाग ६ सर्वप्रथम मुद्रित हुआ। सन् १९७४ के वर्षप्रतिपदा से प्रांत-प्रांतों में उसके विमोचन के कार्यक्रम आयोजित हुए। इंदौर के इस कार्यक्रम में पूजनीय गुरुजी के ज्येष्ठ गुरुभाई स्वामी अमूर्तानंद जी के सान्निध्य-लाभ का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त हुआ। पुस्तक विमोचन के कार्यक्रम के उपरांत अनौपचारिक बातचीत में मैंने पूजनीय स्वामी जी से पूछा कि पूजनीय गुरुजी की आध्यात्मिक उपलब्धि क्या थी? पहले तो उन्होंने बताने से मना किया, किंतु मेरे अधिक आग्रह करने पर कि पूजनीय गुरुजी कि अध्यात्म साधना के आप ही प्रेरक, कारक तथा दर्शक रहे हैं और इसलिए आप नहीं बताएँगे तो पूजनीय गुरुजी का यह पहलू अनावृत्त ही रह जाएगा। क्या यह उचित होगा?

मेरे इस आग्रह के पश्चात् उन्होंने कहा कि पूजनीय गुरुजी ने अपनी आत्मा को शरीर के किसी भाग से अलग कर लेने की क्षमता प्राप्त कर ली थी और इसलिए शरीर के किसी भाग में हुई व्याधि की पीड़ा इच्छा होने पर उन्हें नहीं सता पाती थी। तुरंत मुझे रमण महर्षि का स्मरण हो आया। रमण महर्षि को भी कर्क-रोग हो गया था और वे तमिलनाडु स्थित अरुणाचलम् से बाहर नहीं जाते थे। अतः चेन्नै शासन ने वहीं अस्थायी

शल्यक्रिया कक्ष खड़ा किया व चेन्नै से ख्यातनाम शल्यचिकित्सकों को वहाँ भेजा। जब शल्यक्रिया प्रारंभ करने का समय आया, तब चिकित्सकों ने रमण महर्षि को मूर्छावस्था में ले जाना चाहा, जिसे करने से उन्होंने मना कर दिया और बिना संज्ञा-हरक के ही शल्यक्रिया करने के लिए कहा। शल्य चिकित्सक शल्यक्रिया करने में जुट गए, किंतु उनके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। जब कर्क रोग की गाँठ को काटते हैं, तब जो मृत कोशिकाएँ होती हैं, उन्हें काटने पर तो वेदना नहीं होती, किंतु जब जीवित कोशिकाओं से शल्य स्पर्श करता है, तब वेदना से मुँह से सिसकारी या चीख निकलती है या मूर्च्छावस्था में शरीर में हलचल होती है जिससे चिकित्सकों को ज्ञात हो जाता है कि वहाँ जीवित कोशिका है। किंतु रमण महर्षि के मुँह से सिसकारी भी नहीं निकल रही थी। अतः डाक्टरों की परेशानी यह थी कि पता कैसे लगे कि कौन-सी कोशिकाएँ मृत हैं और कौन सी जीवित।

चिकित्सकों ने अपनी परेशानी रमण महर्षि के सामने रखी तो उन्होंने कहा–'जिस शरीर पर तुम शल्यक्रिया कर रहे हो, वह मैं नहीं हूँ। मैंने अपने आपको शरीर से असंपृक्त कर रखा है और वेदना तो शरीर को होती है।' चिकित्सकों के अनुनय करने पर यह समझौता हुआ कि जब जीवित कोशिकाओं को शल्य स्पर्श करे तो वे अंगुलि उठाकर संकेत कर दें। इस प्रकार करने पर ही शल्यक्रिया पूरी हो सकी थी। दूसरी घटना रामकृष्ण मिशन के स्वामी तुरीयानंद जी की है। उनकी पीठ में दुष्ट व्रण (कारबंकल) हो गया था और उसकी शल्यक्रिया करने का निश्चय हुआ। दूसरे दिन जब उन्हें मूर्छावस्था में ले जाने की तैयारी हुई तब स्वामी जी ने कहा कि मूर्छित किए बिना ही शल्यचिकित्सा करो। सारी क्रिया ठीक तरह से संपन्न हुई। दूसरे दिन जब घाव को साफ करने के लिए डाक्टर गए तो पाया कि एक छोटा-सा टुकड़ा बच गया है। उन्होंने सोचा कि निकाल दें। पर ज्यों ही निकाला तो स्वामी जी के मुँह से जोर की चीख निकली। डाक्टर हतप्रभ हो गए। उन्होंने कहा– 'स्वामी जी कल सारा व्रण निकाला, तब तो आप शांत रहे, आज छोटा-सा बचा टुकड़ा निकालने पर चीख क्यों पड़े?' तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'पहले बताते तो मैं अपने-आप को शरीर के उस भाग से समेट लेता। कल मैंने वैसा ही किया था इसलिए वेदना नहीं हुई।'

पूजनीय गुरुजी के कर्क की गठान पर जब शल्यक्रिया हुई तब उन्हें

मूर्छित तो अवश्य किया गया, किंतु जैसे ही संज्ञा-हरक का प्रभाव समाप्त होकर वे होश में आए, त्यों ही कमरे से बाहर निकलकर आसपास के कमरों में जाकर रोगियों का हालचाल पूछने लगे। शल्यचिकित्सा के पश्चात् पूजनीय गुरुजी ने नागपुर में मा. बाबासाहेब घटाटे के यहाँ कुछ दिन विश्राम किया, जहाँ घाव की साफ-सफाई करने के लिए डा. रामदास परांजपे रोज जाया करते थे। डा. परांजपे साफ-सफाई करते और उधर पूजनीय गुरुजी के मुँह से हास्यविनोद की फुलझड़ियाँ झड़तीं और चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण बन जाता। एक दिन डा. परांजपे के हाथ से अनजाने में एक भूल हो गई। रक्त से सने कपास के टुकड़े को निकालते समय उस टुकड़े के स्थान पर मांस का खंड चिमटी की पकड़ में आ गया और रक्त बह चला। यह देखकर सभी के मुँह से सीत्कार फूट पड़ा। डा. परांजपे का मन भी ग्लानि से भर गया और वे अपने प्रमाद के लिए पूजनीय गुरुजी से क्षमायाचना करने लगे।

डा. परांजपे की भावनाओं को सहलाते हुए श्री गुरुजी ने बड़े शांत चित्त से उत्तर दिया– 'आप व्यर्थ ही मन में कष्ट मान रहे हैं। कपास के टुकड़े और मांस में मेरे लिए कोई अंतर नहीं है। मेरे लिए दोनों समान हैं। जब आप घाव को साफ करते हैं, तब तक मेरा मन शरीर से अलग रहता है और जब मन शरीर से अलग रहता है तब शारीरिक पीड़ा का अनुभव नहीं होता।' डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर लिखते हैं– 'यह सब जानते हैं कि कर्करोग की शल्यक्रिया के बाद भी गुरुजी के शरीर में बहुत जलन रहा करती थी और कष्ट भी अपार था, पर उनसे बात करते समय कोई भी अनुमान नहीं लगा पाता था कि उन्हें इतनी अधिक पीड़ा है। प्रफुल्ल मुखाकृति की छाप लेकर ही गुरुजी के पास से लोग लौटा करते।'

आगे चलकर अकड़ी बाँह की अग्निदग्ध चिकित्सा पुणे में कराई गई। उसे कराते समय उन्होंने संज्ञा-शून्य करने से मना कर दिया। जब अग्नि से दाग दिया जाता था तब मांस जलने की 'चर्र्र्र्र्' की आवाज आती थी, पूजनीय गुरुजी के निजी सचिव डा. आबाजी थत्ते तक उस दृश्य को देख नहीं सके और कमरे से बाहर चले गए, किंतु पूजनीय गुरुजी ने शांतचित्त से सब सहा।

पूजनीय गुरुजी को कर्करोग होने का क्या कारण रहा होगा? इस संबंध में पूजनीय गुरुजी के साथ एक वार्तालाप का स्मरण होता है। अनौपचारिक बातचीत में उनसे प्राणायाम के संबंध में चर्चा चल पड़ी।

उन्होंने बताया कि– 'प्राणायाम किसी योग्य गुरु के निर्देशन में ही किया जाना चाहिए। प्राणायाम की क्रिया में पूरक (श्वास अंदर लेना) और रेचक (श्वास बाहर छोड़ना) तो विशेष हानिकारक नहीं हैं' किंतु कुंभक (श्वास रोके रखना) अतीव सावधानी की अपेक्षा रखता है। ठीक विधि से प्राणायाम की क्रिया करने पर प्राण नियंत्रित होता है, किंतु यदि उसमें गड़बड़ हुई तो प्राण नियंत्रित होने के स्थान पर कुपित हो सकता है।' और यह कहते हुए उन्होंने अपने खुद का अनुभव सुनाया। उन्होंने कहा– 'मैं रोज संध्या करते समय प्राणायाम भी किया करता था। एक दिन कक्ष का द्वार केवल भिड़ा हुआ था। मैं जब कुंभक की स्थिति में था तब शरीर किसी भी प्रकार का धक्का सहन करने की स्थिति में नहीं था। उसी समय मेरी चार वर्ष की नातिन अंदर आई और मेरी पीठ पर लद गई। उसके कारण छाती में बायीं ओर जो दर्द शुरू हुआ वह आज तक नहीं गया।' आगे चलकर हमने देखा कि उसी स्थान पर कर्क की गठान उभरी।

पूजनीय गुरुजी को साक्षात्कार हुआ था या नहीं इस संबंध में महाराष्ट्र के एक संत श्री दत्ता बाळ ने अपनी श्रद्धांजलि सभा में कहा– 'मेरे व्याख्यानों का कार्यक्रम जब नागपुर में आयोजित हुआ, तब मैंने देखा कि एक दाढ़ी-मूँछ व लंबे केशवाले सज्जन कार्यक्रम में आए हैं। मैंने अपने साथियों से पूछा कि वे कौन हैं? तब बताया गया कि वे गुरुजी गोलवलकर हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरे मन में उनके प्रति कोई आदर का भाव नहीं था। किंतु उन्हें अपने कार्यक्रम में देखकर मुझे कौतूहल हुआ और दूसरे दिन उनसे मिलने डा. हेडगेवार भवन चला गया। उनसे एकांत में वार्तालाप में मैंने योग संबंधी कुछ प्रश्न पूछे। मैंने अनुभव किया कि वे जो उत्तर देते थे वे एक स्तर आगे के रहते थे। इस प्रकार एक-एक सीढ़ी हम ऊपर उठते गए। अंत में मैंने उनसे एक प्रश्न पूछ लिया– 'गुरुजी, क्या आपको भगवान के दर्शन हुए हैं?' उन्होंने मेरी ओर कुछ देर तक देखा और मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा कि– 'एक शर्त पर ही बताता हूँ कि किसी से कहोगे नहीं।' मेरे हाँ कहने पर उन्होंने कहा– "हाँ, हुआ है। संघ पर लगे प्रतिबंध के समय जब मैं सिवनी जेल में था और खाट पर बैठे हुए सारे घटनाक्रम के बारे में चिंतित हो रहा था, तब मुझे लगा कि कोई मेरे कंधे को दबा रहा है। जब पलटकर ऊपर देखा तो साक्षात् जगज्जननी-माँ सामने खड़ी थी। उसने आश्वस्त करते हुए कहा– 'सब ठीक होगा'। उसी बलबूते पर तो आगे के सारे संकटों का मैं दृढ़ता के

साथ सामना कर सका।" और यह सुनाते हुए श्री दत्ता बाळ ने कहा– 'चूँकि अब वे दिवंगत हो गए हैं, इसलिए उनको दिए गए अभिवचन से मैं मुक्त हो गया हूँ और यह बात आप सबको बता रहा हूँ।'

ऐसे एक अध्यात्म-शक्तिसंपन्न व्यक्ति के दर्शन, निर्देशन, सान्निध्य और नेतृत्व का लाभ हम सबको मिल सका, इसे अपने पूर्वजन्मों के सुकृत का ही परिणाम मानना होगा।

४०. पूज्य विभूति

(प्रज्ञाभारती डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर)

पूजनीय गुरुजी के सहवास में कुछ काल बितानेवाले को थोड़ी देर में ही उनके अंतःकरण की प्रगाढ़ भाविकता की अनुभूति होती थी। सभी पंथोपपंथ के संत, उनका भावरम्य साहित्य, उनके तीर्थक्षेत्र, व्रत, उत्सव, मंत्र, तंत्र, देवदेवता इन सभी के प्रति उनकी पराकाष्ठा की ज्ञानपूर्ण भक्ति थी। स्वधर्म-परधर्म का भेद वह भक्ति नहीं जानती थी। हिस्लॉप कॉलेज के विद्यार्थी रहते प्रिंसिपल गार्डिनर को उन्होंने बाईबल के अपने मार्मिक ज्ञान से चकित कर दिया था। यह तो प्रसिद्ध ही है।

कुछ वर्ष पूर्व विद्यार्थी परिषद की नागपुर शाखा ने विविध धर्मों के प्रतिनिधियों का धर्मविषयक एक परिसंवाद पूजनीय गुरुजी की अध्यक्षता में आयोजित किया था। उस समय मोहम्मदी धर्ममत का प्रतिपादन करने के लिए नागपुर विभाग के बहुजन समाज का श्रद्धास्थान रहे श्री ताजुद्दीनबाबा की दरगाह के एक वृद्ध मौलवी भाषण करने आए थे। मंच पर श्री गुरुजी के निकट की कुर्सी पर ही वे विराजमान थे। कुरान के वचनों के आधार पर मोहम्मदी संप्रदाय का अंतरंग का अत्यंत मार्मिक रूप से उन्होंने प्रतिपादन किया। उनका उर्दूभाषण गुरुजी को बहुत पसंद आ रहा है, यह उनकी मुख की प्रसन्नता एवं शुचिस्मित देखकर हम श्रोताओं की समझ में आ रहा था। मौलवीजी का भाषण समाप्त होते ही गुरुजी ने अपनी हमेशा की आदत के अनुसार उनकी पीठ पर थाप देकर अपनी प्रसन्नता जाहिर की। भाषणों का दौर समाप्त होने पर सभी के साथ चाय के समय गुरुजी ने मौलवीजी की पुनः प्रशंसा की। उन्होंने कहा– 'ताजुद्दीनबाबा की दरगाह पर बचपन में मैं कई बार दर्शन के लिए आ चुका हूँ।' श्री गुरुजी के साथ

हमेशा रहने वालों के लिए यह जानकारी नई थी। मौलवी जी के चेहरे पर तो आश्चर्य छिपा नहीं सका। व्यावसायिक राजकीय नेताओं ने श्री गुरुजी की प्रतिमा कट्टर द्वेष्टा के रूप में चित्रित करने के प्रयत्न किए होने से उन मौलवीजी का भी वैसा ही पूर्वाग्रह रहा होगा। इसीलिए श्री गुरुजी से वह अनौपचारिक वाक्य सुनते ही वे चकित रह गए।

इसी संदर्भ में एक और घटना का स्मरण आता है। नागपुर के रोटरी क्लब में श्री गुरुजी का भाषण हुआ। व्याख्यान के बाद प्रमुख श्रोताओं का परिचय कराया जा रहा था। एक तरुण मुसलमान सदस्य का परिचय कराया गया। तभी श्री गुरुजी ने उनके परिवार के चार-पाँच वरिष्ठजनों के नाम लेकर उनकी पूछताछ की। बहुत दिनों से उनकी भेंट नहीं हुई, यह कहा और भेंट का योग शीघ्र कभी हो, यह अपेक्षा भी व्यक्त की। वह तरुण तथा अन्य सारे लोग इस अनपेक्षित प्रकार से चकित रह गए।

गुरुजी के निधन के बाद आचार्य विनोबा ने अपनी श्रद्धांजलि में यह वाक्य सहेतु डाला कि 'उनके पास मुसलमानों के प्रति द्वेषभाव नहीं था'। विशिष्ट मत प्रणाली के स्वार्थी लोगों ने श्री गुरुजी के प्रति विपरीत ग्रह समाज में सतत प्रसृत किया है, जो झूठा है– इसकी उनको कल्पना थी, इसीलिए उन्होंने यह उल्लेख किया।

साधुपुरुषों के प्रति निरपवाद परमादर उनका स्थायी भाव था। श्रद्धेय विनोबाजी ने भूदान यज्ञ के लिए जब देशव्यापी पदयात्रा शुरू की, तो उनसे कहीं भेंट-दर्शन का योग मिले, यह इच्छा गुरुजी ने कई बार व्यक्त की थी। वह पूरी होने का अवसर आया, जब विनोबा जी सिंदी के पास थे। आचार्यजी द्वारा दी गई सवेरे की बेला में 'पड़ाव' पर पहुँचा जा सके इसलिए गुरुजी रात को सिंदी में ही रुके। वह भेंट पूरी तरह निजी थी। डेढ़ घंटे तक दोनों सत्पुरुषों की चर्चा में कौन-कौन से विषय रहे, यह बताने का किसी को अधिकार नहीं। फिर भी वहाँ उपस्थित रहकर जो विस्तृत वृत्तांत मिला, उसमें श्री गुरुजी ने कहा मुसलमानादि अन्य धर्मियों के प्रति 'सहिष्णुता' हमें मान्य नहीं, क्योंकि 'सहिष्णुता' शब्द– हम कुछ बड़े हैं और वह अप्रिय होने पर भी किसी भाँति सहन किए जाने योग्य हैं– यह भाव व्यक्त करता है। हम अन्य धर्मियों का सत्कार करते हैं। अन्यधर्मियों के प्रति हमारी भूमिका सहिष्णुता की नहीं, सत्कार की है।'

गुरुजी वैदिक परंपरा के अभिमानी थे। सभी श्रेष्ठ घनपाठी वेदज्ञों के प्रति उनके अंतःकरण में नितांत श्रद्धा थी। अनेक वेदमूर्तियों के सत्कार पर अध्यक्ष के रूप में या अपनी श्रद्धा व्यक्त करने वे तत्परता से उपस्थित रहे। नागपुर भोसला महाविद्यालय पर भी उनकी सदैव कृपादृष्टि रही। महाविद्यालय के ६०वें वार्षिकोत्सव में काशी के महापंडित श्री राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ पधारे थे। नागपुर की वैदिक मंडली की ओर से पंडितराज का सार्वजनिक सत्कार आयोजित था। गुरुजी को उसी दिन प्रवास पर जाना था। फिर भी श्री राजेश्वर शास्त्री के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने वे समय निकालकर, पूजन सामग्री लेकर उपस्थित रहे। पारंपरिक पद्धति के अनुसार महावस्त्र श्रीफल देकर गुरुजी सत्कार करने लगे तो पंडितराज से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा– 'यह उपचार अन्य लोगों के लिए भले ही उचित हो, पर आपके समान व्यक्ति को करने की आवश्यकता नहीं। आप तो समाज के परमपूजनीय हैं।'

उन्हें बीच में रोककर गुरुजी से कहा– 'पर आपके लिए नहीं। हमारे नागपुर में आकर भी आपकी पूजा नहीं करें, यह व्यतिक्रम होगा।'

वेदमूर्ति सातवलेकरजी के प्रति गुरुजी को नितांत प्रेम व आदर था। अस्सी वर्ष के होने पर भी पंडितजी से तरुण भी शरमा जाएँ, इतना उत्साह था। अच्छी नमूनेदार बातें वे सुनाया करते। नागपुर के संघ के एक उत्सव में पंडितजी उपस्थित नहीं रह पाए थे। उनका मन उन्हें कचोट रहा था। सन् १९५४ में मैं मुंबई में था। श्री गुरुजी कल्याण होते हुए पुणे जा रहे थे। उनसे मिलने कल्याण गया। प्लेटफॉर्म पर गुरुजी मिले। मैंने बताया कि पंडितजी से मिलने किल्ला पारडी जा रहा हूँ। गुरुजी ने कहा अपने नागपुर के गुरुदक्षिणा उत्सव के अध्यक्ष वे हों, इस हेतु व्यक्तिशः मेरी ओर से उन्हें आमंत्रण दें। वेदमूर्ति सातवलेकर को संघ और गुरुजी के प्रति कितनी आत्मीयता एवं श्रद्धा थी, यह शब्दों में कहना कठिन है। पंडितजी के नागपुर पधारने पर संघ के बड़े कार्यक्रम के अलावा जितने सारे कार्यक्रम हुए, उनमें तत्परता से उपस्थित रहने का प्रयत्न गुरुजी कर रहे थे। एक-दो कार्यक्रमों में उपस्थित नहीं रह पाए थे। उसका दुःख थिओसॉफिकल लॉज के कार्यक्रम में व्यक्त किया।

परंपरागत पद्धति से जैसा होना चाहिए, वैसा उनका वेदाध्ययन यद्यपि नहीं हुआ था, फिर भी पुरानी पीढ़ी के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को जितना

वेदमंत्रों का पाठ ज्ञात होना चाहिए, उन्हें था। उपनिषदों के तो वे अधिकारी विशेषज्ञ थे। पिछले ३३ वर्षों से उन्होंने जो अखंडित राष्ट्रव्यापी ज्ञानसत्र जारी रखा था, उसमें से उदाहरण के लिए सभी पुराणों से सैंकड़ों आख्यान और उपाख्यान अपनी रोचक शैली और चुटीले शब्दों में बताते थे। उनसे मेरी पहली भेंट सन् १९३६ में हुई। उस दिन उनके हाथ में जो ग्रंथ था वह था, याज्ञवल्क्य स्मृति-मिताक्षरा। यह सारा कुछ बताने का कारण यह है कि गुरुजी वैदिक परंपरा के निष्ठावंत अभिमानी थे।

'वैदिक' कहा गया कि इस देश में यह माना जाता है कि वह भगवान बुद्ध का आलोचक होना ही चाहिए। यह मानो अलिखित संकेत रूढ़ है। १५-१६ वर्ष पूर्व एक बार शाखा के बाद मैंने भगवान बुद्ध की अवैदिकता की बात छेड़ी। गुरुजी ने तुरंत कहा– 'हम भगवान रामकृष्ण परमहंस के भक्त हैं। स्वामी विवेकानंद का बुद्ध के प्रति जो अभिप्राय है, वही हमारा भी है। इसके बाद विवेकानंदजी ने बुद्ध के प्रति जो गौरवपूर्ण विधान किए हैं, वे सभी उन्होंने सुनाए। गुरुजी की भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा कितने उच्च स्तर की है, इसकी कल्पना मुझे उस दिन आई।

संघ और महात्मा गाँधी के बारे में गलतफहमी गहराई तक जमी है। व्यवसायिक राजनीतिज्ञों ने सहेतुक उसे जमाया है। बीच में राजकीय क्षेत्र में राष्ट्रीयता को लेकर जो विवाद उपस्थित हुआ, उसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिंदुत्वनिष्ठ भूमिका नहीं समझ पाने से भी यह गलतफहमी बढ़ी। संघ के अनेक स्वयंसेवक भी अपवाद नहीं थे। विशेषतः महात्माजी की हत्या के बाद जो घोर व्यवहार तत्कालीन राजनीतिकों ने किया, उससे इस विषय में भारी कटुता निर्माण हुई। इसके बाद जो पीड़ा लोगों को हुई, वह संघ के अनुशासन के संस्कार से संयम के अनुसार रहा, पर श्री गुरुजी जैसे सभी स्थितप्रज्ञ नहीं थे। इस कारण महात्मा गाँधी का लोकोत्तर विभूतिमत्व मान्य होने पर भी उस नाम के प्रति आत्मीयता क्षीण हो गई थी। इस वातावरण में 'भारत भक्ति स्तोत्र' में महात्मा गाँधी के नाम का अंतर्भाव कई लोगों को अच्छा नहीं लगा। उन्हीं दिनों गुरुजी से एक बैठक में यह चर्चा हुई। उस समय उन्होंने महात्मा गाँधी का संपूर्ण कार्य, उनके लेखों के अनेक मौलिक धर्मविचार, कुल मिलाकर गाँधीजी की भारतीय परंपरानुसारिणी जीवननिष्ठा का इतना सुंदर विवेचन किया कि वैसा आज तक बड़े-बड़े नामी गाँधी भक्तों के व्याख्यान में भी मैंने सुना नही।

'गाँधीवाद' के रूप में निर्देशित विचारधारणा के कुछ मुद्दों पर गुरुजी ने व्याख्यानों में विशिष्ट राजकीय परिस्थिति में प्रत्युत्तर के लिए आलोचना भी की। कभी कड़े शब्दों में भी की। ऐसा ही एक व्याख्यान श्रीमान् ढेबरभाई ने गुजरात में सुना था और, 'आ गुरुजी घणा तिख्खा बोले छे' यह प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। सैद्धांतिक खंडन के लिए कभी तीखी भाषा रही हो, पर उस व्यक्ति के प्रति अंतःकरण की सद्भावना निर्मल रहती थी। यह 'कर्मसु कौशलम्' गुरुजी द्वारा पूरी तरह सिद्ध हुआ था।

महात्माजी की जन्मशताब्दी निमित्त सांगली की आम सभा में गाँधीजी को आदरांजलि समर्पण करने के लिए गुरुजी ने जो व्याख्यान दिया, वही निजी बैठक में भी सुनने का सौभाग्य मुझे मिला। निजी तौर पर एक और सार्वजनिक तौर पर अलग मतलबी द्वैत गुरुजी के जीवन में कभी नहीं था।

यह विभूति विषयक श्रद्धाभाव उनके अंतःकरण में इस कोटि तक था कि किसी महापुरुष के बारे में कोई मजाक में भी उलटा-सीधा बोलता, तो उन्हें सहन नहीं होता था। स्वातंत्र्यवीर सावरकर के हिंदी वक्तृत्व पर हम कुछ दिन आपस में हँसी से बोल रहे थे। हमारी बातों के विनोद को वे मंद स्मित से साथ दे रहे थे। विनोद में संतुलन टूटकर एक ने सावरकरजी के प्रति 'बालिस्टर' कहा। गुरुजी पत्रलेखन कर रहे थे। उसे रोककर उन्होंने जोर से निषेधदर्शक हुँकार किया। उनकी विभूतिनिष्ठा निपक्ष स्फटिकवत निर्मल, अखंड जागृत थी।

इसी से अपने देशव्यापी चिरप्रवास में जहाँ-जहाँ वे गए, वहाँ के महान साधु-संतों के दर्शन करने, प्राचीन देवताओं की परंपरागत पद्धति से पूजा अर्चा करने, किसी आश्रम या मठ में कोई समस्या हो तो उसे साक्षेप रूप में सुलझाते थे। किसी साधु-संत का चरित्र लिखकर कोई दिखाए, तो वह हस्तलिखित पढ़कर, उसके मुद्रण की व्यवस्था करने का कार्य उनके जीवन में संघकार्य का ही एक भाग था। तीर्थस्थानों के पावित्र्य और मर्यादा का वे कठोरता से पालन करते थे। वे गाणगापूर गए थे। वहाँ की परंपरा के अनुसार गीले कपड़ों में कंधे पर गागर उठाकर वे देवदर्शन के लिए गए। नागपुर के दक्षिणामूर्ति मंदिर में खुले बदन में पंगत में बैठने की परिपाटी है। एक बार प्रसाद लेने गुरुजी वहाँ पहुँचे। जब स्व. बाबूराव हरदास ने उनसे कहा- 'डाक्टर जी हमारे घर की पंगत में खुले बदन बैठते थे' तब गुरुजी तुरंत खुलेबदन पंगत में बैठे।

आखिरी बीमारी में कांचीकामकोटि के जगद्गुरु श्री जयेंद्र सरस्वती पदयात्रा करते हुए नागपुर पहुँचे थे। नागपुर की सीमा पर ही उन्हें दंडवत करने की उनकी आंतरिक इच्छा, निर्दय रोग ने पूरी नहीं होने दी। हैदराबाद से जगद्गुरु के प्रवास का दैनिक वृत्तांत वे जानना चाहते थे। नागपुर की स्वागत समिति के कार्य की प्रगति वे अपने कमरे से नित्य लेते थे। स्वामी जी रामनगर में वास्तव्य हेतु थे। वहाँ दर्शनार्थ जाने की उनकी भारी इच्छा थी, पर शरीर साथ नहीं दे रहा था। कांचीकामकोटि पीठ के प्रति उनकी श्रद्धा आकाश से बड़ी थी। पीठ के अधिपति नागपुर पधारे हैं और उन्हें दंडवत करने नहीं जा पा रहे हैं, उनके हृदय की यह पीड़ा देखी नहीं जा रही थी। आखिर जगद्गुरु उनसे मिलने संघ कार्यालय पर आए। जगद्गुरु आनेवाले हैं, इसलिए दाक्षिणात्य पद्धति की पूजा-सामग्री लेकर घंटा-दो घंटा वे आतुरता से प्रतीक्षा करते रहे। उनके गले में तुलसीमाला अपने हाथों समर्पित की, तब कहीं वह विभूतिपूजकता स्वस्थ हुई।

यद्यद्वि विभूतिमत्‍त्सत्त्वं, श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तद्देवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ।।' (गीता, १०-४०)

इस भगवद्वाक्य का परम रहस्य कोई जान पाया हो, ऐसा नहीं लगता। अपनी योगसाधना में यह 'विभूतियोग' उन्होंने अपने जीवन की पूर्णता से लिखा। साधक के अंतःकरण में थोड़ा भी अंहकार रहा तो उसे यह दुर्घट योग आचरण में लाना संभव नहीं होता। श्री गुरुजी ने जिस दिन से अधिकार पद पर चरणन्यास किया, उस दिन नहीं, उसी क्षण से उन्होंने अध्यात्म-मार्ग के सबसे प्रबल वैरी अहंकार को तिलांजलि दे दी थी।

(मासिक श्राद्ध दिन विशेषांक, तरुण भारत, ५ जुलाई, ९७३)

हमारा सम्पूर्ण समाज साक्षात् ईश्वर के रूप में हमारे हृदयों मे पुनः प्रतिष्ठित होना चाहिए। वास्तव में यही एकत्व की भावना हमारी प्राचीन संस्कृति का अमर सन्देश रही है। संसार के अन्य लोग ईश्वर के पितृत्व एवं मनुष्य के भ्रातृत्व तक पहुँचकर रुक गए, किंतु हमने तो ब्रह्म से लेकर जड़ पदार्थ पर्यंत एकत्व का अनुभव किया है। – श्री गुरुजी

सभांजलि

(१) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा, रा. स्व. संघ

(श्री गुरुजी के मासिक श्राद्ध पर विशेष रूप से आहूत प्रतिनिधि सभा में ४ जुलाई १९७३ को)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा परम पूजनीय श्री गुरुजी के महानिर्वाण पर उनके तपोमय, तेजोमय तथा अद्वितीय व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

आसेतु हिमाचल विशाल राष्ट्रजीवन में एकात्मता का साक्षात्कार कराने हेतु, उन्होंने अपनी प्रतिभाओं एवं कठोर साधना से अर्जित असीम आध्यात्मिक शक्तियों को मातृभूमि के चरणों में समर्पित किया।

व्यक्ति-व्यक्ति का अंतःकरण राष्ट्रप्रेम से प्रज्ज्वलित कराने के लिए वे अपनी आयु का क्षण-क्षण और जीवन का कण-कण समर्पित कर, जगज्जननी मातृभूमि भारत की सतत परिक्रमाएँ करते रहे।

विपरीत परिस्थितियों में भी राष्ट्रीय एकात्मता के प्रखर आत्मविश्वास को मजबूत नींव पर, दीप-स्तंभ के समान राष्ट्र-चेतना का प्रकाश फैलाते हुए, परम पूजनीय सरसंघचालक श्री गुरुजी अडिग खड़े रहे। उपहास, आलोचना, विरोध और दमन में भी उनकी प्रशांत और प्रसन्न मूर्ति अपनी दृढ़ता, उदारता, विशालता और सौहार्द से आत्मीयता का ही चारों ओर मधुर वर्षाव करते हुए, लक्षावधि स्वयंसेवकों एवं कोटि-कोटि देशवासियों की प्रेरणा का अखंड स्रोत बनी रही।

उनकी इस साधना का परिणाम है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य, न केवल नगर-नगर और दूर गाँव-गाँव तक जा पहुँचा, अपितु एक विश्वसनीय महान शक्ति के रूप में जन-साधारण के बीच आस्था का केंद्र बन गया है। इस घड़ी में परम पूजनीय श्री गुरुजी का स्वर्ग सिधारना

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा संपूर्ण राष्ट्र पर नियति का क्रूर प्रहार है।

इस दुःख की वेला में अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा अनुभव करती है कि संपूर्ण राष्ट्र आशाभरी दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर निहार रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं के लिए परिस्थितियों का आह्वान आज और भी गहरा हुआ है कि वे राष्ट्र-निर्माण के अपने सुनिश्चित कार्य की पूर्ति के लिए अधिकाधिक त्याग, परिश्रम से उद्यत हों। अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का विश्वास है कि अपने प्राणप्रिय परमपूजनीय गुरुजी की पावन स्मृति में संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक दृढ़ संकल्प धारण करेगा और सर्वस्व की बाजी लगाकर समाज संगठन के कार्य को अति शीघ्र सर्वव्यापी बनाएगा, जिससे देश की वर्तमान दुरवस्था को हटाकर भारत सुदृढ़, समृद्ध, सुखी और सर्वशक्तिसंपन्न हो सके।

अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा परमपूजनीय श्री गुरुजी के प्रति श्रद्धावान असंख्य देशवासियों को आह्वान करती है कि वे भी संघ के राष्ट्र-निर्माण के कार्य में सक्रिय सहभागी बनें। यही श्री गुरुजी के प्रति यथार्थ श्रद्धांजलि है।

(२) संसद

राज्यसभा के सभापति श्री गोपालस्वरूप पाठक :

श्री एम.एस.गोलवलकर जी की मृत्यु की सूचना सदन में प्राप्त हुई है। श्री गोलवलकर जी का जन्म १९०६ में हुआ। नागपुर में अध्ययन के बाद वे बनारस आए और काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। बाद में कुछ काल उन्होंने रामकृष्णमिशन-कार्य में भी सक्रिय सहयोग दिया। वे श्रेष्ठ संगठन-क्षमतावाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र-सेवा में लगाया। वे गहरी धार्मिकतावाले व्यक्ति थे और हिंदू-संस्कृति और सभ्यता में सुधार के लिए उन्होंने लवलीन होकर कार्य किया। हमारे राष्ट्रजीवन में आदरपूर्ण स्थान उन्होंने प्राप्त किया। उनके निधन से एक सम्माननीय व्यक्ति हमने खोया है।

लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लों :

'गुरुजी' नाम से विख्यात श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर की मृत्यु की दुःखद सूचना सदन में दी जा रही है। ६७ वर्ष की आयु में वे ५ जून १९७३ को नागपुर में स्वर्गवासी हुए। श्री गोलवलकर श्रेष्ठ संगठन-क्षमतावाले नेता थे। अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता और अपने उद्देश्य के प्रति अथाह निष्ठा के बल पर वे जनजीवन में विचारकों के बीच प्रमुख रूप से जाने-माने जाते थे। यद्यपि कई लोग ऐसे हो सकते हैं, जो उनकी विचारधारा और राजनीतिक दर्शन से मतभिन्नता रखते हों, फिर भी यह सत्य है कि उन्होंने अपने तरीके से देश की सेवा में अथक प्रयत्न किए। उनके निधन से देश के सार्वजनिक क्षेत्र में गहरी क्षति हुई है।

प्रधानमंत्री और सदन की नेता श्रीमती गाँधी :

जो सदन के सदस्य नहीं थे, ऐसे एक अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री गोलवलकर जी नहीं रहे। वे विद्वान थे और शक्तिशाली आस्थावाले व्यक्ति थे। जैसा आपने कहा, हममें से कई उनकी मूलगामी विचारधारा से सहमत नहीं थे, परंतु उन्होंने अपने अनुयायियों पर गहरा प्रभाव निर्माण किया था।

श्री ईरा सेझियन (द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम) :

श्री गोलवलकरजी की मृत्यु के संबंध में अध्यक्ष महोदय आपके और सदन की नेता के द्वारा व्यक्त मनोभावों के साथ में भी सहभागी हूँ।

जगन्नाथराव जोशी (जनसंघ) :

पूजनीय गुरुजी के महानिर्वाण को हम भारतीय परंपरा में पले हुए एक तपस्वी और कर्मयोगी के जीवन की समाप्ति कहेंगे। उनके विचार से कई लोग सहमत थे और कई लोग असहमत थे, किंतु राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में लगातार जीवन की आखिरी साँस तक अपनी समिधा को समर्पित कर उन्होंने अग्निकुंड को जलाया। इस राष्ट्रीय जीवन की ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने के हेतु ही उनके जीवन की परिपूर्ति हुई।

दिवंगत महानुभाव का निर्वाण देश में एक अपूरणीय क्षति का निर्माण करता है। उसको पूरा करना ही हमारा दायित्व है।

श्री श्यामनंदन मिश्र (संगठन कांग्रेस) :

एक विशेष श्रेणी में हमारे गुरु गोलवलकर आते है। वे कई मामलों में एक विशेष श्रेणी के व्यक्ति थे। यह कहना जरूरी नहीं है कि हमारे उनके साथ सैद्धांतिक और दूसरे मतभेद थे। यह वक्त इस बात का तकाजा करता हो, मैं यह भी नहीं मानता। उसका इजहार कहीं और किया जाएगा और पहले भी करते रहे हैं। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि वे बड़े मनीषी थे, चिंतक थे, तपोपूत व्यक्ति थे, भारतीय वाङ्मय के बड़े ज्ञाता थे और मुझे ऐसा लगता है कि वे बड़े कर्मयोगी और आत्मज्ञानी थे। तभी कैन्सर के रोगी होते हुए भी जिंदगी की आखिरी साँस तक उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाया। इसमें संदेह नहीं कि उनमें अद्‌भुत संगठन-शक्ति थी। उनका चरित्र और उनका व्यक्तित्व प्रेरणा का स्रोत था, तभी तो लाखों-लाख कार्यकर्ताओं को उन्होंने प्रेरित किया, इतनी बड़ी संस्था को आगे बढ़ाया।

श्री पी.के.देव (स्वतंत्र पार्टी) :

श्री गुरुजी के नाम से विख्यात श्री मा.स.गोलवलकर हृदय से राष्ट्रवादी थे। कई मामलों में हम उनसे सहमत भले ही न हुए हों, परंतु हम निश्चित ही स्वीकार करते हैं कि उनका जीवन त्यागपूर्ण और समर्पित था। वे महान संगठक थे और देश में उनका विशाल अनुयायी वर्ग है। उनके निधन से स्वाभाविक ही रिक्तता निर्माण हुई है।

श्री समर गुहा (सोशलिस्ट पार्टी) :

श्री गुरुजी गोलवलकर के संबंध में यही कहना होगा कि वे केवल विद्वान ही थे यह बात नहीं, क्योंकि ऐसे प्रायः सभी विद्वानों जैसा उन्होंने एकांत जीवन नहीं बिताया। वे देशभक्त थे और उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों में देशभक्ति, समर्पण और सेवा के भाव देश के हजारों तरुणों में विगत चालीस वर्षों तक संचारित किए।

डा. कर्णीसिंह (निर्दलीय) :

श्री गुरुजी महान राष्ट्रीय नेता थे। मैं मानता हूँ कि वे उन कुछ महान व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने देश को आत्मत्याग का मार्गदर्शन दिया। मैं अनुभव करता हूँ कि वे उन महान व्यक्तियों में से थे, जो देश का संचालन कठिन तथा संकटपूर्ण स्थिति में करने का कार्य अधूरा छोड़ हमारे

बीच से उस समय चले गए, जब देश उनकी सेवाओं का उपयोग कर सकता था।

श्री पुरुषोत्तम गणेश मावलंकर (निर्दलीय) :

श्री गुरुजी के नाम से विख्यात श्री एम.एस.गोलवलकर की असंदिग्ध देशभक्ति सभी को ज्ञात है। उन्होंने नागरिकों में और विशेषतः तरुणों में अनुशासन तथा राष्ट्रीय चरित्र निर्माण किया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह कार्य उन्होंने अपने 'सादा जीवन, उच्च विचार' के निजी आदर्श को सबके सामने रखकर किया। उन्होंने सर्वत्यागी संन्यासी का जीवन बिताया।

(३) महाराष्ट्र विधानसभा

श्री वसंतराव नाईक (मुख्यमंत्री) :

अध्यक्ष महोदय, चौथा शोक-प्रस्ताव स्व. श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवलकर के विषय में है। स्व. श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर का जन्म माघ वद्य ११ शक संवत् १८२७, याने १६ फरवरी १६०६ को, नागपुर में हुआ था। चंद्रपुर के जुबली हाईस्कूल से १६२२ में वे मैट्रिक हुए। उसके बाद महाविद्यालयीन शिक्षा का प्रारंभ पुणे के फर्ग्युसन कॉलेज में हुआ था। परंतु निवास विषयक सरकारी नियमों के कारण उन्हें नागपुर लौटना पड़ा। नागपुर के हिस्लॉप कॉलेज से इंटर की परीक्षा उन्होंने १६२४ में उत्तीर्ण की। उनका विषय था प्राणिशास्त्र। अंग्रेजी में भी उन्होंने प्रावीण्य प्राप्त किया था। इसके बाद वे बनारस हिंदू विद्यापीठ में दाखिल हुए। १६२६ में बी.एससी. तथा १६२८ में एम.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। एम.एससी. के बाद चेन्नै के मत्स्य संग्रहालय में उन्होंने एक वर्ष तक संशोधन कार्य किया। सन् १६३१ में बनारस हिंदू विद्यापीठ में उनकी अध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई। वहाँ तीन वर्षों तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया।

चेन्नै में रहते समय उनका मन, अध्यात्म की ओर झुका। बनारस में धर्म, शास्त्र, वाङ्मय, तत्त्वज्ञान आदि सभी शाखाओं के गहन वाचन और मनन का प्रारंभ उन्होंने किया। बनारस विद्यापीठ में रहते समय विद्यार्थियों

की निवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में भी वे आत्मीयता से सहृदय सहायता करते। इसी कारण विद्यार्थी उन्हें आदर-भाव से 'गुरुजी' इस नाम से संबोधित करते और आगे चलकर वही नाम रूढ़ हुआ।

बनारस में रहते स्व. गोलवलकर गुरुजी का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंध जुडा। १६३१ में स्व. गुरुजी के माता-पिता नागपुर में आकर बसे। इस कारण गुरुजी भी नागपुर लौट आए। यहाँ उन्होंने वकालत का अध्ययन किया। १६३५ में वे वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। पिता की इच्छा थी कि गुरुजी वकालत करें। पर गुरुजी का झुकाव तो वकालत से ज्यादा अध्यात्म की ओर था। १६३६ में रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष श्री स्वामी अखंडानंद से उनकी भेंट हुई। सारगाछी आश्रम में जाकर उन्होंने उनसे दीक्षा ली। फिर भी समाज और राष्ट्र की सेवा में ही उनके अध्यात्म चिंतन की परिणति उन्होंने की थी। आधुनिक भारतीय जीवन का पुनरुत्थान हिंदू विचारों के आधार पर कैसे किया जाए, यह उनके गहरे चिंतन का विषय था।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक डाक्टर हेडगेवार का २१ जून १६४० को निधन होने के बाद, श्री गुरुजी की नियुक्ति इस पद पर हुई। यह जिम्मेवारी स्वीकार करने के बाद उन्होंने देशभर प्रवास कर संघ शाखाओं का विस्तार किया। सन् १६४८ में संघ पर प्रतिबंध लगाया गया। कुछ काल तक उन्हें कारागृह में रखा गया। १६४६ में प्रतिबंध उठाए जानेपर उन्हें कारागृह से मुक्त किया गया। संघकार्य हेतु वर्ष में तीन बार वे देश के सभी प्रदेशों में प्रवास करते थे।

अगाध वाचन, अपार जिज्ञासा और कुशाग्र बुद्धि के कारण उनका प्रभाव तुरंत पड़ता था। विभिन्न विषयों का उनका अध्ययन आखिर तक जारी था। उनके ज्ञान की अथाह सीमा देखकर, सामान्य व्यक्ति स्तंभित हो जाता था। विद्वत्ता और कतृत्व का अपूर्व संगम उनमें था। उन्हें अनेक भारतीय भाषाएँ ज्ञात थीं।

सन् १६७० में वे कर्करोग से पीड़ित हुए। उन दिनों सौभाग्य से मेरी उनसे भेंट हुई थी। उनके साथ मेरे संबंध घरेलू थे। जिस समय मैं उनसे मिलने गया, उनका सारा उत्साह, उनका आनंद देख मुझे स्वयं को लगा कि वे अच्छे हो जाएँगे। पर कुछ ही दिनों बाद वे हमें छोड़कर चले गए। इस महान नेता का ५ जून १६६३ की रात्रि को ६ बजे, आयु के ६७वें वर्ष में, नागपुर में निधन हो गया।

श्री त्र्यं.सी.कारखानीस (कोल्हापुर) :

गोलवलकर गुरुजी के बारे में बोलते हुए, मुख्यमंत्री जी ने उनके जीवन की सविस्तार जानकारी दी ही है। उनके अंतःकरण की जाज्वल्य देशनिष्ठा का यहाँ उल्लेख हुआ है। उसी भाँति समाज जीवन को गढ़ते समय, उसका जो घटक व्यक्ति है, उस व्यक्ति को चारित्र्यसंपन्न होना चाहिए, समाज की प्रगति के लिए और राष्ट्र की उन्नति के लिए सभी आवश्यक गुण उसमें पनपें, यह उन्होंने प्रमुखता से अपना कर्तव्य माना। चारित्र्यसंपन्नता और ज्ञानसंपन्नता का जो आग्रह करते थे, उससे उनके व्यक्तित्व की कल्पना की जा सकती है। वे एक बड़े तपस्वी थे। समाज और देश को जो देना आवश्यक था, उन्होंने दिया। उनके निधन पर शोक व्यक्त करना सभी सदस्यों का कर्तव्य है।

श्री रा. का. म्हाळगी (पुणे) :

परमपूज्य गोलवलकर गुरुजी के महान निर्वाण को कल तीन मास पूरे हो रहे हैं। वे एक महान मानव थे। Sir, he was a master man. उनका जीवन समर्पित जीवन का एक भारतीय आदर्श हम मानते हैं। वे नर सिंह हो गए। एक महान व्यक्ति हमारे बीच से उठ गया है। उन्होंने अपना जीवन किसी विद्युल्लता समान व्यतीत किया। स्वयं कण-कण जलना और दूसरों को, चहुँ ओर के लोगों को सुगंध देकर प्रसन्न करना; स्वयं जलना और दूसरे को प्रकाश देना, यह समर्पित जीवन की विशेषता है। हमने यह गुरुजी के जीवन में देखा। वे एक महान कर्मयोगी हो गए। आधुनिक ऋषि महात्मा कहें, यह खिताब उन्हें दिया गया है। गुरुजी का जीवन हमने निकट से देखा है। दुर्भाग्य की बात है कि जीवन के बारे में उनके जो विचार हैं, वे लोकप्रिय होने में कुछ समय लगा है। स्वामी विवेकानंद के जीवन में जो अटल सत्य उन्हें देखने को मिला, वही बात पूजनीय गोलवलकर गुरुजी के विचारों के बारे में अनेकों ने निकटता से देखी। ३०-३२ वर्षों तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक, इस नाते से उन्होंने अपनी जिम्मेदारी निभाई। वे कहीं भी, कभी रुके नहीं। राष्ट्रहित को छोड़ वे किसी के आगे झुके नहीं। उनका जीवन उनकी अखंड साधना थी। यह सभी ने निकट से देखा है। सम्माननीय सदस्य श्री कारखानीस ने जैसा कहा, आखिर कॅरेक्टर बिल्डिंग ही समाज-जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है। देश के लिए वह आवश्यक है। तभी देश का आर्थिक, सामाजिक नियोजन सफल हो सकेगा।

उनकी ऐसी ही धारणा होने से प्रचंड लोकसंग्रह कर जनता को योग्य प्रकार से सीख देने के लिए आवश्यक वातावरण निर्माण करने हेतु ३०-३२ वर्ष की कालावधि में उन्होंने सारा भारत देखा। हथेली की चीज दिखाई दे, इस भाँति कौन-सी चीज कहाँ है, क्या है, यह पूरी जानकारी उन्हें थी। सैंकड़ो-हजारों तरुण उनकी प्रेरणा से समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। उनके विचार चैतन्यदायी थे। समाज जीवन को अधिक मजबूत करने के लिए उन विचारों का आदर हमेशा काम आएगा।

श्री अ.तु.पाटील :

गुरुजी ध्येयनिष्ठा का एक आदर्श हमारे सम्मुख रख गए हैं। उनके तत्त्वज्ञान के प्रति किसी का भिन्न मत हो सकता है, पर एक बात पर सहमत होना ही होगा कि स्वीकार किया हुआ तत्त्व पूरा करना और उसके प्रति अटल निष्ठा रखकर, उसका अनुमोदन करते समय किसी अन्य विचार को स्थान नहीं देना, इस ध्येयप्रणाली के लिए उन्हें सारा जीवन लगा दिया।

श्रीमती मृणाल गोरे (मालाड) :

स्व. गोलवलकर गुरुजी के बारे में अनेक बातें कही गई हैं। प्रकाश के बाहर रहकर किसी संगठन में जीवन भर कार्य करना कोई सरल बात नहीं। गोलवलकर गुरुजी ने यह कर दिखाया। यही नहीं तो अपने जीवन-आदर्श महाराष्ट्र में ही नहीं तो संपूर्ण भारत में हजारों तरुणों को ध्येयवादी बनाकर, एक विशिष्ट ध्येय से, अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत किया है। पूर्व वक्ताओं ने कहा है कि चारित्र्यसंपन्नता महत्त्व की बात है। गोलवलकर गुरुजी ने चारित्र्यसंपन्न नई पीढ़ी तैयार करने के लिए जीवनभर कष्ट किए। उनके तत्त्वों से सहमत हों या नहीं, पर उनके प्रति अभिमान रखे बगैर नहीं रह सकते।

अध्यक्ष, बैरिस्टर वानखेडे :

स्व. गोलवलकर गुरुजी और मेरे संबंध अत्यंत निकट के रहे हैं। इन संबंधों को मैत्री का कहना भी गलत नहीं होगा। आयु में वे मुझसे सात-आठ वर्ष बड़े होंगे। लॉ कॉलेज में हम साथ-साथ पढ़ते थे। लॉ कॉलेज में रहते समय उस तरुणाई में भी मेरी उनसे जमी नहीं। फिर भी जन्मभर उनका और मेरा मैत्री का संबंध बना रहा। जब भी कभी मुंबई

आते, टेलिफोन पर पूछताछ करते। हम भी उनसे अलग-अलग प्रकार से पूछताछ किया करते। उन्होंने अपने सम्मुख एक ध्येयवाद रखा था, उसे उन्होंने देश के सामने रखा। देश के प्रधानमंत्री ने भी उनके बारे में कहा है कि देश का एक महान सुपुत्र खो गया है।

मृत्यु के समय या मृत्यु के बाद भी प्रत्येक के मन में समानता निर्माण होती है। ऐसे अवसर पर राजनीति के मतभेद भुलाकर उनके कार्य का हम गौरव करते हैं।

卐卐卐

(४) महाराष्ट्र विधान परिषद्

सभागृह नेता, श्री वसंतदादा पाटील :

अध्यक्ष महोदय, मैं श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर के निधन के कारण शोक प्रस्ताव रख रहा हूँ।

श्री उत्तमराव पाटील (स्नातक मतदाता संघ) :

सभागृह के नेता ने रखे प्रस्ताव का समर्थन करने मैं खड़ा हूँ। श्री गुरुजी का शब्द-रूप से वर्णन करने का प्रयत्न मैं नहीं कर सकता। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर ही मैं सार्वजनिक जीवन में कार्यरत हूँ। श्री गुरुजी उत्कृष्ट संगठक थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रूप में उन्होंने समाज को संगठित करने का प्रयत्न किया। उन्हीं से प्रेरणा लेकर समाज-जीवन के विविध क्षेत्रों में असंख्य तरुण कार्यरत हैं। निष्कलंक चारित्र्य के आदर्श की दृष्टि से हम श्री गुरुजी की तरफ देख सकते हैं। श्रेष्ठ संगठक, निष्कलंक चारित्र्यसंपन्न और उस सबसे महत्त्वपूर्ण, याने प्रखर राष्ट्रभक्ति संपन्न ऐसा एक श्रेष्ठ पुरुष अपने में से गया। मैं अंतःकरणपूर्वक उनको श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

श्री ग.प्र.प्रधान (स्नातक मतदाता संघ) :

मेरी पीढ़ी के अनेक तरुण श्री गोलवलकर गुरुजी के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में त्याग वृत्ति से, समर्पित भावना से अनेक वर्षों तक कार्य कर रहे हैं। उन तरुणों को जीवन के अन्य क्षेत्र में कहीं भी अपनी कर्तबगारी दिखा पाना संभव था, परंतु उन सबको दूर रखकर केवल राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर संघकार्य के लिए जिन्होंने अपना जीवन

समर्पित किया, ऐसे तरुणों के स्फूर्तिनिधान श्री गुरुजी थे। स्वर्गीय गोलवलकर गुरुजी के सभी विचार सभी को मान्य हों, ऐसे नहीं थे, परंतु समर्थ रामदास स्वामी की परंपरा उन्होंने आगे चलाई। तरुणों को बलोपासना सिखाना, उनके मन में देश और धर्म के संबंध में नितांत श्रद्धा निर्माण करना और केवल स्वतः के लिए संकुचित जीवन में न रमते हुए समाज के लिए अपना जीवन समर्पण करने के संस्कार तरुणों के मन पर करने का समर्थ रामदास जैसा कार्य श्री गुरुजी ने किया। इसी कारण उनके निधन से अपने देश की व विशेषतः महाराष्ट्र की अति हानि हुई है।

श्री य.जि.मोहिते (सहकार मंत्री) :

कैलाशवासी गोलवलकर गुरुजी भारतीय संस्कृति की नितांत चाह रखनेवाले थे। अपनी संस्कृति की रक्षा हो तथा अपने अंतःकरण में भारतीयता का प्रमाण बढ़ते रहना चाहिए, इस हेतु उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अर्पित किया व भारतीय परंपरा को सम्मान प्राप्त करा देने का प्रयत्न किया। हमारे देश के तरुणों में राष्ट्रप्रेम कूट-कूटकर भरा जाए तथा उनके मन में भारत के संबंध में नितांत निष्ठा निर्माण हो, इसलिए वे सतत प्रयत्नशील रहे। इसलिए उनके बारे में जो भाव सभागृह के नेता ने व्यक्त किया है, उसमें मैं सहभागी हूँ।

श्री मनोहर जोशी (बृहन्मुंबई स्थानीय प्राधिकारी संस्था) :

जिस काल में निष्कलंक, जाज्वल्य राष्ट्रभक्ति, प्रामाणिकता, ध्येयनिष्ठा जिनमें हैं, ऐसे व्यक्तियों की देश को नितांत आवश्यकता है, ऐसे में श्री गुरुजी सरीखे महानुभावों का अपने में से उठ जाना वास्तव में दुर्दैव भरी घटना है। गोलवलकर गुरुजी को चाहनेवाला और उनके आदेश माननेवाला मैं एक स्वयंसेवक था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में मैंने कार्य किया हुआ है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में बचपन से ही देशप्रेम, ध्येयनिष्ठा आदि गुणों का संवर्धन किया जाता है– यह बात कोई किसी भी विचारधारा का हो, वह नकार नहीं सकता। इसी संगठन में ध्येयनिष्ठा, राष्ट्रीय चारित्र्य, राष्ट्रीय वृत्ति का अनुशासन संवर्धन किया जाने के कारण इस संगठन का महत्त्व किसी को भी स्वीकार करना पड़ता है। इस संगठन का विकास करते-करते संघ ही उनका ईश्वर बन गया। इस संगठन के घटकों पर श्री गुरुजी का गहरा प्रभाव किसी को भी दृष्टिग्गोचार होता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में गुरुदक्षिणा का कार्यक्रम रहता है। उसमें मैंने देखा है कि पूजन के लिए आनेवाले स्वयंसेवक खुद के चैन में, खुद पर होनेवाले खर्च में कटौती करके त्याग भावना से गुरुदक्षिणा देते हैं। राष्ट्रप्रेम, ध्येयनिष्ठा आदि गुणों के विकास की दिशा में संघ में विशेष प्रयास किए जाते हैं। गुणों से युक्त लक्षावधि तरुण संघ के द्वारा देश को समर्पित किए गए हैं। गोलवलकर गुरुजी का मार्गदर्शन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा देश की युवा पीढ़ी को प्राप्त होता था। उस मार्गदर्शन से अब अपना देश वंचित हुआ है।

श्री वि.घ.देशपांडे (विदर्भ स्नातक मतदाता संघ) :

भारत वर्ष के इतिहास में जिनके व्यक्तिमत्व का विस्मरण कभी भी नहीं होगा, ऐसे महान नेता को हम आज अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहें हैं। कै. श्री गोलवलकर गुरुजी (कै., अर्थात् कैलाशवासी – सं.) श्री गोलवलकर गुरुजी का और मेरा संबंध जब मैं लॉ कॉलेज में पढ़ता था, तबसे आया है। मैंने उनको बहुत निकट से देखा है। साधारणतः हम जिनको बहुत बार निकट से देखते हैं, उनके बारे में आदरभाव पहले से कम होता है। परंतु श्री गुरुजी अपवाद रूप से ऐसे थे कि उनके बारे में हमेशा नितांत आदरभाव रहा। उनके जैसा निष्कलंक चारित्र्य, नीतिमत्ता व ज्वलंत राष्ट्रभक्ति अति कम लोगों में मिलती है। परमपूजनीय डा. हेडगेवार जी के साथ गोलवलकर गुरुजी ने कार्य किया। उन्होंने एकसंघ भारत के निर्माण के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की संगठना बढ़ाई। संघ देशभक्तों का संगठन है, जहाँ भारतीय संस्कृति के संवर्धन का प्रयास सतत किया जाता है। हर एक में राष्ट्राभिमान जागृत करके उसके द्वारा राष्ट्र प्रबल करने के उद्देश्य से संघ शुरू हुआ था। कै. गुरुजी ने संघ की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाने के बाद वर्ष के ३६५ दिन और दिन के २४ घंटे उनके सामने केवल संघ ही रहता था। उन्होंने संघ खड़ा करने में और उसको प्रबल बनाने में अविरत परिश्रम किए हैं, यह कोई भी नकार नहीं सकता। उनको अहोरात्र संघ का ही ध्यान रहा करता था।

आसेतु हिमालय एक राष्ट्र निर्माण होना चाहिए, यह उनका स्वप्न था। मैंने उनको सतत कार्य करते ही देखा है। उनके निर्वाण के १५ दिन पहले मैं उनको मिलने गया था। उस समय भी वे 'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे' व 'भारत माता की जय' बोल रहे थे। मैं वहाँ गया तब वे ऊपर

की मंजिल पर थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा 'आपको ऊपर आना संभव नहीं, मुझे भी नीचे आना संभव नहीं।' मैं ऊपर जा नहीं सकता था और वे नीचे नहीं आ सकते थे। अपने मार्ग से कभी नीचे न आ सकने के उनके स्वभाव के कारण उनके बारे में गलतफहमी भी होती थी। परंतु उनकी तरफ उन्होंने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। वे अपने कार्य से कभी भी परावृत्त नहीं हुए। उनको अति कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक ऐसा संगठन है कि उसके स्वयंसेवक भारत के सभी भागों में हैं। यह संगठन स्थानीयवाद, भाषावाद, प्रांतवाद से सतत अलिप्त रहा है। वे केवल राष्ट्रवाद ही मानते हैं। मैं 'संयुक्त महाराष्ट्र' के आंदोलन में सम्मिलित हुआ और उस निमित्त मुझे अनेक राज्यों में जाने का मौका मिला। कन्नड़ भाषी भाग में भी हम गए थे। कहीं स्वयंसेवकों में भाषावाद देखने को नहीं मिला। आसेतु हिमाचल संघ के स्वयंसेवक एक ही सूत्र से बँधे हुए हैं, ऐसा दिखेगा। उनमें भाषावाद, प्रांतवाद– ऐसा संकुचितवाद कभी नहीं दिखेगा। तरुणों में ज्वलंत राष्ट्राभिमान निर्माण करने का कार्य श्री गुरुजी ने किया व अत्यंत अनुशासनबद्ध प्रभावी संगठन खड़ा किया। इस ध्येयवाद से प्रेरित अनेक तरुण आज हमें देखने को मिलेंगे। आज संघ में ऐसे अनेक तरुण हैं, जो एम.ए; पीएच.डी. हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन में विवाह या प्रापंचिक बातों को कुछ भी स्थान न देते हुए अपना सारा जीवन संघकार्य को समर्पित किया। स्वातंत्र्योत्तर काल में इस प्रकार ध्येयवाद से भरे हुए तरुणों की अत्यंत आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यह महान कार्य कर रहा है। संघ को गोलवलकर गुरुजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने राष्ट्रजीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण संगठन की नीव कै. परमपूज्य डा. हेडगेवार ने भरी है, उसपर कै. श्री गुरुजी ने कलश रखा– ऐसा तो नहीं कह सकते, परंतु उस कार्य को उन्होंने बहुत व्यापक किया। ऐसे इस महान पुरुष को विधान परिषद् में श्रद्धाजंलि अर्पित की जा रही है, यह बात लक्षणीय है। यह महान कार्यकर्ता कभी लोकसभा, राज्यसभा, राज्य विधानसभा या राज्य विधानपरिषद् का सदस्य नहीं बना। न किसी भी प्रकार के निर्वाचन में प्रत्याशी रहा, तो भी 'राष्ट्रीय कार्य करनेवाला सच्चा पुरुष'– ऐसा ही उनका वर्णन करना पड़ेगा। ऐसे महापुरुष को मैं इस स्थान पर श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूँ। यह पुरुष राष्ट्र के इतिहास में दीपस्तंभ समान सबको मार्गदर्शन करता रहेगा– यह मेरा विश्वास है।

उनका जीवन राष्ट्र के तरुणों को आदर्शभूत रहेगा। मेरे यह विचार उनके परिवार के सदस्यों को भेजने की कृपा करें, इस प्रार्थना के साथ मैं उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

उपसभापति :

श्री गोलवलकर गुरुजी, श्री अबीद अली जाफरभाई व श्री डी. आर. उर्फ आनंदराव चव्हाण, इनके दुःखद निधन के निमित्त जो शोकप्रस्ताव आया है, उस बारे में सभागृह के नेता, विरोधी पक्ष के नेता और अन्य सदस्यों ने जो भावना व्यक्त की है, उनसे मैं भी सहमत हूँ।

दिवंगत सदस्यों के परिवार जनों को यह प्रस्ताव भेजा जाएगा।

ॐ ॐ ॐ

(५) राजस्थान विधानसभा

(३ अक्तूबर १९७३, शोक प्रस्ताव एवं श्रद्धांजलि)

मुख्यमंत्री श्री बरकतुल्ला खां :

माननीय अध्यक्ष महोदय, मैं श्री गोलवलकर जी के बारे में कहना चाहता हूँ। बहुत बड़े, पढ़े, समझदार और सूझबूझ के व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन में डिसिप्लिन पैदा किया और दूसरों में डिसिप्लिन पैदा करने कोशिश की। उन्होंने बोला कम और काम ज्यादा किया। इस तरीके से दूसरे लोगों को काम करना सिखाया। बहुत से लोगों से उनकी राजनीति नहीं मिलती थी, उससे आज कोई संबंध नहीं हैं। उनके देहांत होने पर मैं शोक प्रकट करता हूँ।

श्री लक्ष्मण सिंह (डूंगरपुर) :

अध्यक्ष महोदय, श्री गोलवलकर जी एक बड़े त्यागी थे, निःस्वार्थ व्यक्ति थे। उनमें संगठन की बहुत बड़ी शक्ति थी। वह परम देशभक्त और विद्वान थे। भारतीय संस्कृति के अग्रणी प्रतीक थे और उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जन्म दिया। ऐसे महान नेता के निधन से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को तथा देश को बड़ी भारी हानि हुई है। इसकी क्षतिपूर्ति होना कठिन है।

श्री गुमानमल लोढ़ा (जोधपुर) :

अध्यक्ष महोदय, दिवंगत महान आत्मा गोलवलकर के बारे में कहा गया है। वास्तव में आज के युग में वह युगपुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन का क्षण-क्षण और रक्त की बूँद-बूँद राष्ट्रदेवता के चरणों में राष्ट्र और देशभक्ति की शिक्षा देते हुए अर्पित कर दी। १९ फरवरी १९०६ में इस महान पुरुष का जन्म हुआ। एम.एस.सी. पास करने के बाद बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में कार्य किया। इसी नाते वह राष्ट्र में परम पूज्य गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। सन् १९३६ में रामकृष्ण मिशन में प्रविष्ट हुए। सन् १९४० में उन्हें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सरसंघचालक नियुक्त किया गया। इस देश ने स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, अरविंद घोष और महात्मा गाँधी जैसे महान पुरुषों की शृंखला पैदा की है। उसी की वह भी एक कड़ी थे।

अध्यक्ष महोदय, उनके बारे में केवल उनके दल के ही लोगों द्वारा नहीं, बल्कि अन्य दलों के द्वारा भी श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। वह अजातशत्रु थे। उन्होंने अपने जीवन का सब कुछ देश के लिए समर्पित कर दिया। अध्यक्ष महोदय, कुछ समय पहले 'साप्ताहिक धर्मयुग' की ओर से उनसे पूछा गया कि 'आप बताइये, आपके जीवन का ध्येयवाक्य क्या था?'

गुरुजी ने उत्तर दिया, 'मैं नहीं तू ही।' अंग्रेजी में कहते हैं, आल आईज आर कैपिटल।' यही हम अपने जीवन में प्रयास करते हैं। परंतु गुरुजी ने अपनी वसीयत दी है, यदि मेरे जीवन की समाप्ति हो जाए तो किसी प्रकार का स्मारक नहीं बनाया जाए। कोई यादगार नहीं बनाई जाए। यह महान व्यक्तित्व का परिचायक है। वह महान देशभक्त थे। 'ब्लिट्ज' साप्ताहिक में लिखा है- 'जिस एकाग्रचित्त भक्ति से उन्होंने संघ का संगोपन किया, उस पर कोई भी व्यक्ति आक्षेप नहीं ले सकता। उनका वैयक्तिक जीवन संन्यास का था। उनकी संगठन क्षमता अद्वितीय थी। उनमें कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। अपने ध्येय पथ पर चलते हुए उनके हृदय में आलस्य नहीं था। शब्दों में कमजोरी नहीं थी तथा भौहों पर थकान नहीं थी।

यह उचित होगा कि अन्यान्य राजनैतिक नेतागण उनके उदाहरण को अपनाएँ, जो पूर्णतया समर्पण का है। जिन्होंने अपने जीवन का समर्पण करके लाखों व्यक्तियों को प्रेरणा, स्फूर्ति और अभिव्यक्ति दी है, ऐसे महान

व्यक्ति का अभाव सदियों तक खटकेगा। उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर हम उनकी इच्छा को पूरा कर सकेंगे। मैं अंत में यह कहूँगा–

'जिस दीपक ने हमें जलाया, आज उसी का गुण गाते हैं;
और उसी के पदचिह्नों पर चल करके हम जल जाते हैं।'

श्री निरंजन नाथ आचार्य (मावली) :

गुरु गोळवलकर अपनी मान्यताओं में विशिष्ट थे, संगठन शक्ति में अग्रणी थे। साथ ही अपने तप और साधना में बेजोड़ थे। इसलिए उनका निधन भी राष्ट्र के लिए क्षति है। मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

अध्यक्ष :

श्रद्धेय श्री गुरु गोळवलकर के बारे में मैं समझता हूँ, ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। जो भाव माननीय सदस्य गुमानमल जी लोढ़ा ने व्यक्त किए हैं, उनमें मैं अपने आपको सम्मिलित करता हूँ और उनके बारे में निश्चित कह सकता हूँ कि वह एक कुशल संगठनकर्ता थे और भारतीय विचारधारा और पूर्व की सभ्यता में विशेष आस्था रखनेवाले थे।

(६) बिहार विधानसभा

अध्यक्ष :

श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर का जन्म १९ फरवरी १९०६ में हुआ था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एमएस.सी और एलएल.बी की परीक्षा पास करने के उपरांत वहीं उन्होंने प्राध्यापक का कार्य प्रारंभ किया। बचपन से ही सात्विक प्रवृत्ति रखनेवाले गोलवलकर शीघ्र ही स्वामी विवेकानंद के गुरुभाई स्वामी अंखडानंद के संपर्क में आए और उनसे दीक्षा ग्रहण की। फिर उनका संपर्क डा. हेगडेवार से हुआ और उनकी मृत्यु के बाद उन्होंने ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नेतृत्व जीवनपर्यंत किया। राष्ट्रजीवन की प्रत्येक समस्या पर उनके विचार स्पष्ट हुआ करते थे। संघ को राजनीति से अलग रखने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। अनेकों

सामाजिक, धार्मिक और शैक्षणिक संस्थाओं को उन्होंने जन्म दिया। अनुशासन ही जीवन की सफलता का बीजमंत्र है, इसका आजीवन प्रचार किया। १९६९-७० में इनके फेफड़े में कैन्सर हो गया। बीच में कुछ सुधार हुआ परंतु ५ जून ७३ को क्रूर काल ने अनुशासन के इस महान गुरु को हमसे छीन लिया। भगवान दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

अब्दुल गफूर :

श्री गोळवलकर जी हमारे सूबे के रहनेवाले नहीं थे, लेकिन हिंदुस्तान में उनकी भी शख्सियत एक खास शख्सियत थी। उन्होंने एक खास विचारधारा हिंदुस्तान पॉलिटिकल पार्टीज के सामने रखी, जिसके बारे में हमारे सदन के सभी लोगों को इलम है। उनकी मौत से काफी अफसोस है।

कुँवर बसंत नारायण सिंह :

जो हिंदुस्तान का एक बड़ा महान व्यक्ति उठ गया, वह है हमारे गुरु गोलवलकर। उन्होंने बी.एच.यू. से एमएस.सी. पास किया था और उनका मालवीयजी के साथ संपर्क था। उन्होंने उनके सिद्धांत के अनुसार रहकर कार्यक्रम चलाया। स्व. विवेकानंद के गुरुभाई स्वामी अखंडानंद के साथ उनका विशेष संपर्क था, लेकिन उन्होंने अपनी योग्यता का प्रदर्शन नहीं किया। डा. हेडगेवार जब आसन्नमरण थे तो उन्होंने अपनी सारी जिम्मेवारी गुरुजी को सौंप दी। गुरुजी कैन्सर के रोगी हो गए और उनका आपरेशन भी हुआ। मालूम पड़ा कि वे अच्छे हो जाएँगे, लेकिन कैन्सर फिर रीअपीयर हो गया। वे अपने मरने के दो सप्ताह पहले मुंबई के मुख्यमंत्री नाईक से मिले थे, तो उन्होंने उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा, लेकिन उन्होने अपने बारे में कुछ भी नहीं बताया। इसी से आप समझ सकते हैं कि वे कितने बड़े योगी थे। हो सकता है कि उनकी फिलोसॉफी लोग नहीं समझते हैं और उनके विचार से अलग हों। लेकिन अपने स्ट्रांग विलपावर के कारण वे कश्मीर से कन्याकुमारी तक घूमते थे। बच्चों के साथ जब वे मिलते या बातें करते, तो वे इस तरह से उनसे व्यवहार करते कि उन्हें ऐसा ज्ञात न हो कि वे एक महान व्यक्ति के साथ बात कर रहे हैं। वे इतने बड़े होते हुए भी स्वभाव से सरल थे। वह महान व्यक्ति हमारे हिंदुस्तान से चला गया। एक दीपक बुझ गया। जिन विचारों के लिए उन्होंने अपना सारा

जीवन दे दिया, जिन विचारों से वे हिंदुस्तान को सबल और दृढ़ बनाना चाहते थे, उनको हमें अपनाना चाहिए।

कर्पुरी ठाकुर :

इस मुल्क मैं आज जो शान-शौकत है, जो ठाठ-बाट है और जो बाह्य दिखावा है, प्रशासन में और अन्य जगहों में– इन सब कुछ के बावजूद गुरु गोलवलकर ने जो उदाहरण उपस्थित किया है, वह अनुकरणीय है। उनका जीवन सादगी का था। उनका जीवन संयम का था। उनका जीवन अनुशासन का था। उनका जीवन न केवल विचार का था, बल्कि आचार का था। हमारा उनसे बहुत स्थानों में गहरा मतभेद रहता था, मगर सब कुछ के रहते हुए मुझे यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि उन्होंने अपने विचार से अधिक आचार से जीवन में लाखों-लाख लोगों को प्रभावित किया था। इस हद तक उन्होंने प्रभावित किया कि उनके इशारे पर लोग अपना जीवन देने को तैयार रहते थे। निःसंदेह ऐसा व्यक्ति सामान्य नहीं हो सकता । महान व्यक्ति ही ऐसा हो सकता है। अपनी ओर से और अपने दल की ओर से उनके निधन पर शोक व्यक्त करता हूँ।

ऋ ऋ ऋ

जनता में जनार्दन देखने की यह अति श्रेष्ठ दृष्टि ही हमारी राष्ट्र–कल्पना का हृदय है, इसने हमारे चिंतन को परिव्याप्त कर लिया है तथा हमारे सांस्कृतिक दाय की विविध अनुपम कल्पनाओं को जन्म दिया है।

— श्री गुरुजी

बुधांजलि

(१) संत जन

स्वामी निरंजन देव तीर्थ, पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य :

श्री गोलवलकर जी ने धर्म प्राण भारत से गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए सदैव आगे रहकर प्रयास किया। हिंदू संगठन के वे आकांक्षी थे। हमें उनके इस महान लक्ष्य की पूर्ति करके उनकी आकांक्षा को साकार रूप देना चाहिए।

ज्योतिर्मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी कृष्णबोधाश्रम

श्री गुरुजी का निधन हिंदू-समाज पर भारी आघात है। श्री गुरुजी ने धर्मप्रवण भारत से गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए सदैव आगे रहकर प्रयास किया। हिंदू संगठन के वे आकांक्षी थे। हमें उनके इस महान लक्ष्य की पूर्ति कर उनकी आकांक्षा को साकार रूप देना चाहिए।

स्वामी जयेंद्र सरस्वती शंकराचार्य, कांची कामकोटिपीठ :

श्री गोलवलकर जी जीवन के अंतिम क्षणों तक हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति तथा राष्ट्र की सेवा के लिए अथक प्रयत्न करते रहे। वे सफेद कपड़ों में एक तपस्वी संत थे।

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज :

श्री गुरुजी के निधन से राष्ट्र व हिंदू समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। श्री गुरुजी से धार्मिक विषयों में मतभेद हो सकते हैं, किंतु उनकी उत्कट राष्ट्रभक्ति तथा समर्पित भाव से राष्ट्र व समाज सेवा के क्षेत्र में किए गए कार्य सदैव प्रेरणास्पद रहेंगे। वे धर्मप्रवण भारत से गोहत्या के कलंक

को पूरी तरह मिटा देने के आकांक्षी थे। हम गोहत्या बंद कराकर ही उनके एक महान स्वप्न को साकार कर सकते हैं।

जैन संत आचार्यश्री तुलसी :

श्री गोलवलकर जी के स्वर्गवास का समाचार आकस्मिक सा लगा। उनमें सक्रियता, संगठन शक्ति और भारतीय संस्कृति का अनुराग था। वे समालोचक और गुणग्राही– दोनों एक साथ थे। वे राष्ट्रीय चरित्र पर बहुत बल देते थे, इसीलिए उनसे हमारा संपर्क और अणुव्रत आंदोलन के प्रति उनका आकर्षण हुआ।

गोरक्षपीठाधीश्वर श्री महंत अवैद्यनाथ जी :

श्री गुरुजी के निधन से हिंदू धर्म तथा हिंदू जाति की अपूरणीय क्षति हुई है।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी :

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर जी के दुःखद निधन से हमने एक महान सांस्कृतिक व्यक्तित्व खो दिया है, जिसकी पूर्ति असंभव सी प्रतीत होती है। देश की वर्तमान संकटमय घड़ी में उनकी उपस्थिति की अत्यधिक आवश्यकता थी। हमें उनका अभाव निरंतर खटकेगा। उन्होंने राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति के उन्नयन में जो महान योगदान दिया है, उसके लिए समस्त राष्ट्र उनका चिर ऋणी रहेगा।

आचार्य विनोबा भावे :

मेरे हृदय में उनके लिए बड़ा आदर रहा है। उनका दृष्टिकोण व्यापक उदार और राष्ट्रीय था, वे हर चीज राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करते थे। उनका अध्यात्म में अटूट विश्वास था और सभी धर्मों के लिए उनके हृदय में आदर का भाव था।

उनमें संकीर्णता लेश-मात्र भी नहीं थी, वे हमेशा उच्च राष्ट्रीय विचारों से कार्य करते थे।

श्री गोलवलकर को अध्यात्म से गहरा प्रेम था, वे इस्लाम, मसीही आदि अन्य धर्मों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे और यह अपेक्षा करते थे कि भारत में कोई अलग न रह जाए।

(२) नेतागण

राष्ट्रपति श्री वराह गिरि व्यंकट गिरि :

श्री गोलवलकर गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। उनकी मृत्यु से उनके असंख्य प्रशंसकों और अनुयायियों को गहरा दुःख हुआ है। मैं उनके प्रति हार्दिक संवेदना और सहानुभूति व्यक्त करता हूँ।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी :

मुझे गुरुजी की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। अपने प्रभावी व्यक्तित्व और विचारों के प्रति अटूट निष्ठा के कारण राष्ट्रीय जीवन में उनका सम्मानपूर्ण स्थान था।

लालकृष्ण अडवाणी, अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ :

गुरुजी के निधन से जो गहरा दुःख हुआ है, उसकी अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा नहीं की जा सकती। हालाँकि वह काफी दिनों से बीमार थे, फिर भी जब उनके मरने की खबर मिली तो गहरा धक्का लगा।

गुरुजी आधुनिक युग के स्वामी विवेकानंद थे, जो महान व विशाल भारत के निर्माण के लिए दृढ़ संकल्प व निष्ठा के साथ प्रयत्नशील थे। देश के लाखों युवकों के लिए गुरुजी अटल देशभक्ति और निःस्वार्थ त्याग के प्रेरणादायक प्रतीक थे।

यह कल्पना ही अत्यधिक कष्टदायक है कि जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति कैसे होगी? देश के अन्य लाखों स्वयंसेवकों के साथ अश्रुपूरित नेत्रों से मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

अटल बिहारी वाजपेयी :

श्री गुरुजी के महान व्यक्तित्व में समर्थ स्वामी रामदास की भक्ति तथा शिवाजी महाराज की शक्ति का अपूर्व संगम था। उनमें रामकृष्ण की तपस्या और विवेकानंद के तेज का समन्वय था।

आत्मविस्मृत हिंदू समाज को स्वत्व का साक्षात्कार कराके श्री गुरुजी ने उसे संगठित शक्तिशाली तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण बनाने के राष्ट्रकार्य के लिए अपने शरीर का कण-कण और जीवन का क्षण-क्षण समर्पित कर दिया। लाखों युवकों ने उनके तपस्वी तथा तेजस्वी जीवन से

प्रेरणा लेकर अपना घर बार छोड़ा और समूचे भारत में प्रखर एवं विशुद्ध राष्ट्रवाद का अलख जगाया। यह उनकी अखंड साधना तथा अद्वितीय संगठन कुशलता का ही परिणाम है कि हिंदू समाज आज जागृत हो गया और अपने ऊपर होने वाले किसी भी आक्रमण का प्रतिकार करने में सक्षम है।

श्री गुरुजी के देहावसान से अंधकार में मार्ग दिखानेवाला प्रकाशस्तंभ ढह गया। एक युगपुरुष हमारे बीच से उठ गया। यह हम सबका कर्तव्य है कि डा. हेडगेवार के सपनों को सत्य-सृष्टि में परिणत करने का व्रत लेनेवाले श्री गुरुजी के तपःपूत जीवन से प्रेरणा लेकर राष्ट्रकार्य को अधिक वेग से पूरा करके दिखाएँ।

डा. शंकरदयाल शर्मा, अध्यक्ष, कांग्रेस :

श्री गुरुजी का राष्ट्रीय जीवन में सम्मानपूर्ण स्थान था और वे अपने विश्वासों के प्रति दृढ़ थे।

राजमाता विजयाराजे सिंधिया, उपाध्यक्ष, जनसंघ :

जब राष्ट्र को उनकी सबसे ज्यादा आवश्यकता थी, तब वे चल दिए। यह हमारा और देश का दुर्भाग्य है। राष्ट्र के लिए समर्पित उस महान जीवन से हम देश के लिए पल-पल, तिल-तिल जलने की प्रेरणा लें।

वित्तमंत्री यशवंतराव चव्हाण :

श्री गोलवलकर के निधन से सार्वजनिक जीवन से एक अत्यंत प्रतिष्ठित व्यक्तित्व उठ गया। वे निश्चय ही विद्वान और चरित्रवान व्यक्ति थे।

रक्षामंत्री जगजीवन राम :

भारत ने सरसंघचालक श्री गोलवलकर की मृत्यु से एक ऐसा नेता खो दिया है, जो संगठन की योग्यता रखता था तथा जिसमें राष्ट्रीय हित को लेकर कष्ट उठाने की क्षमता थी।

एस.एम.जोशी, सोशलिस्ट नेता :

श्री गोलवलकर के निधन से एक तपस्वी की जीवन ज्योति बुझ गई है। मुझे यह विश्वास है कि श्री गोलवलकर की संगठनात्मक शक्ति का उपयोग राष्ट्रीय प्रगति के लिए किया जाएगा।

प्रो.राम सिंह, अध्यक्ष, हिंदू महासभा :

श्री गुरुजी ने हिंदुत्व की रक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित किया हुआ था। वे निर्भीक व तेजस्वी नेता तथा वक्ता थे। वर्तमान समय में हिंदू-समाज को उनकी भारी आवश्यकता थी।

ओम प्रकाश त्यागी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा :

श्री गुरुजी आर्यसमाज के सामाजिक उत्थान के कार्य के प्रबल समर्थक थे। आर्यसमाज द्वारा संचालित ईसाई मिशनरी विरोधी गतिविधियों को उनकी पूरी सहानुभूति प्राप्त थी। उनके निधन से आर्य जगत् की भारी क्षति हुई है।

संतोष सिंह, जत्थेदार अकाली दल :

श्री गुरुजी एक महापुरुष थे। उनके जैसे व्यक्ति अमर होते हैं। श्री गुरुजी के देहावसान से सिक्ख संप्रदाय को भारी क्षति हुई है। उनके सामने खड़े होकर हिंदू-सिख का भेद-भाव खत्म हो जाता था।

बाल ठाकरे, शिवसेना :

किसी जहाज के नायक की भाँति श्री गोलवलकर जी संघ को अनेक संकटों में से कुशलतापूर्वक आगे बढ़ाते ही गए।

कामरेड तकी रहीम, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी :

यद्यपि मैंने श्री गुरुजी के कभी दर्शन नहीं किए, तथापि देश के उज्ज्वल भविष्य के उनके आदर्श में विश्वास रखने वालों में गुरुजी की प्रेरणाशक्ति को मैंने अनुभव किया है।

मधुमेहता, स्वतंत्र दल :

श्री गुरुजी के निधन से भारत एक महान देशभक्त से वंचित हो गया है।

हाफीजुद्दीन कुरैशी, कांग्रेसी नेता, पटना :

वे वास्तव में महापुरुष थे। दूर से देखने वाले लोग उनके बारे में गलत धारणा बना लेते थे। वे सांप्रदायिक नहीं थे, वे मुस्लिम-विरोधी भी

नहीं थे। मुस्लिम-विरोध के नाम पर आज तक मुसलमानों को संघ के नाम पर बरगलाया जाता रहा है। श्री गुरुजी समान अधिकारों और धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे।

(३) सामाजिक कार्यकर्ता

दादासाहब आप्टे, महामंत्री, विश्व हिंदू परिषद् :

श्री गुरुजी के निधन से हिंदू समाज ने एक महान दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक खो दिया।

तनसिंह शांडिल्य, संयोजक, भारतीय किसान संघ :

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर स्वामी विवेकानंद की भाँति सच्चे अर्थ में दरिद्रनारायण के उपासक थे। श्री गोलवलकर ने अपने जीवन से करोड़ों देशवासियों को वह प्रेरणा दी, जिससे अनेक युवकों ने अपने घर-बार छोड़कर देश व धर्म की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया। वस्तुतः इस युग में वे युवकों के हृदय सम्राट थे।

श्रीमती मावशी केलकर, संचालिका, राष्ट्र सेविका समिति :

भारत की हिंदुत्वनिष्ठ शक्ति का मानबिंदु चला गया है, हिंदुराष्ट्र की इससे अपरिमित क्षति हुई है।

मिश्रीलाल तिवारी, संगठन मंत्री, वनवासी कल्याण परिषद् :

गुरुजी के रूप में वनवासी बंधुओं के एक बहुत बड़े हितैषी मार्गदर्शक महामानव को हमने खो दिया, जिनकी सत्प्रेरणा से ही २२ वर्ष पूर्व वनवासियों के कल्याणार्थ जशपुर में कल्याण आश्रम की स्थापना की गई थी।

(४) साहित्यकार

जैनेंद्र कुमार जैन :

श्री गोलवलकर भारत के प्रभावशाली तथा प्रतिभावान सुपुत्रों में से थे। उनका व्यक्तित्व तथा वक्तव्य अनूठा था। उनके निधन से भारत एक रत्न से वंचित हो गया।

उपन्यासकार गुरुदत्त :

मुझे इस समाचार से भारी आघात लगा है। इस अभाव की पूर्ति होना कठिन है।

काशीनाथ उपाध्याय

उस महान व्यक्ति को,
जीवन की शक्ति को,
राष्ट्रीय अभिव्यक्ति को, मेरा नमन !

प्रो. विष्णुकांत शास्त्री :

श्री गुरुजी भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनका जीवन समस्त राष्ट्र को समर्पित था। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे राष्ट्र को आलोकित करते रहे।

'अनेकता में एकता' का हमारा वैशिष्ट्य हमारे सामाजिक जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुआ है। यह उस एक दिव्य दीपक के समान है, जो चारों ओर विविध रंगों के शीशों से ढका हुआ हो। उसके भीतर का प्रकाश, दर्शक के दृष्टिकोण के अनुसार भाँति–भाँति के वर्णों एवं छायाओं में प्रकट होता है।

— श्री गुरुजी

शब्दांजलि

नागपुर टाइम्स

इस सामान्य विश्वास के विपरीत कि दीक्षा से व्यक्ति योगी बन जाता है, श्री गुरुजी को भी दीक्षा मिली थी, पर उसने उन्हें देश-सेवा में ही दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया, लेकिन इसने उन्हें योगाभ्यास या ध्यान लगाने या आध्यात्मिक साधना से विमुख नहीं किया। वास्तव में वे अध्यात्म के मार्ग पर तीव्र गति से बढ़ते रहे और इन वर्षों में उनका जैसा आचरण और व्यवहार रहा, उससे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने परमानंद की अनुभूति कर ली थी। किंतु इस अनुभूति में भी वे अपने उस मिशन के प्रति पूरा ध्यान देते रहे, जिसके अंतर्गत वे लोगों को उन बातों का स्मरण कराते रहे, जिन्हें वे विस्मृत कर गए थे।

वे लोगों को भारत की प्राचीन परंपरा से संबंध बनाने के लिए जागरूक करते रहे। इससे यही सिद्ध होता है कि वे संन्यासी के रूप में एक निष्ठावान कर्मयोगी थे। उनका यह विश्वास था कि जनमानस में इस सत्य के बीज के आरोपण से बढ़कर कोई कार्य नहीं है कि वे सभी मिलकर एक राष्ट्र हैं और उनका राष्ट्र निर्माणावस्था में नहीं है, बल्कि पहले से फल-फूल रहा है और सबसे बढ़कर यह कि यह भूमि, मात्र मिट्टी या धूल नहीं है, बल्कि यह उन सबकी पवित्र माता है।

महात्मा गाँधी की हत्या के बाद भयानक घटनाओं का जो दौर चला, उनसे इस प्रकार के विशाल अनुयायी वर्ग वाले किसी भी व्यक्ति का संतुलन बिगड़ जाता। या तो वह उस संगठन, जिसका वह नेतृत्व करता है, को भंग कर देता या उसको वह निंदनीय मार्गों पर ले जाता। लेकिन श्री गोलवलकर ने संतों जैसा जो संयम दिखाया, वह भारत के सर्वाधिक

अनुशासित लोगों के इस संगठन के सरसंघचालक के रूप में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि रही है।

कई ऐसे अवसरों पर, जबकि निहित स्वार्थों के राजनीतिक दलों या राजनीतिक नेताओं ने जानबूझ कर उत्तेजनाएँ फैलाईं, श्री गोलवलकर ने इसमें ऐसा कोई कारण नहीं देखा, जिससे कि वे परेशान हों, न ही संगठन के नेतृत्व वर्ग के अन्य लोगों पर ही इसका कोई प्रभाव पड़ा। ऐसे छोटे-मोटे लोगों, जिनके पास न तो श्री गोलवलकर जी जैसी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि थी, न ही उनके पास श्री गुरुजी के जैसा कोई सुगठित संगठन ही था, ने उन पर कीचड़ फेंकने की कोशिश की और समाचार-पत्रों के मुखपृष्ठों पर थोड़ा-बहुत प्रचार प्राप्त किया। लेकिन श्री गुरुजी ने उनके साथ कभी भी विवाद नहीं उठाया। वे अपने को उस विशाल समुदाय का ही एक अंग मानते रहे, जिसमें किसी अज्ञानी व्यक्ति को इस प्रकार से आमोद-प्रमोद में अपनी अज्ञानता के कारण स्वयं कष्ट उठाना पड़ता है।

भारत में कुछ ही लोग सत्ता में न रहते हुए भी इतना सम्मान और प्यार पा सके, जितना श्री गोलवलकर को मिला। मातृ-भूमि से उनका प्रेम जीवन के प्रति प्रबुद्ध आनंद के समकक्ष ही था। विज्ञान, गणित, नक्षत्र विज्ञान आदि के अध्ययन के साथ ही साथ वेदांत अध्ययन, होम्योपैथी, योग और उन सभी ज्ञान क्षेत्रों, जो भारत के अपने हैं, का अध्ययन उन्होंने भली-भाँति किया। वे इस बात की हमेशा वकालत करते रहे हैं कि मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय व्यक्तित्व ने शानदार सफलताएँ अर्जित कीं। चूँकि मानव जीवन को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिए क्रमबद्ध रूप से नियमित किया गया था, अतः (भारतीय) विचार और कर्म के क्षेत्र की प्रत्येक बात उनको अर्थपूर्ण और उपयोगी प्रतीत होती थी। अगर यह देश सर्वोच्च मूल्य को अपने मस्तिष्क में बराबर सँजोए रखे, तो वह इस सारे विचार और कर्म को (सही ढंग से) समझा सकता है।

अपने स्वयं के उदाहरण के द्वारा वे यह बात अपने पीछे छोड़ गए हैं कि हम किस संदेश का पालन करें। किंतु पूर्ण समर्पण के इस बहुमूल्य जीवन की क्षतिपूर्ति किसी प्रकार से नहीं हो सकती, जिसको क्रूर काल ने हमारे बीच से छीन लिया है।

इंडियन एक्सप्रेस

श्री गोलवलकर में ऐसा कुछ जरूर था जो प्राचीन भारत के ऋषियों में ही मिलता है। उनकी लंबी दाढ़ी, उनका संयमित व्यक्तिगत जीवन, उन मूल्यों के प्रति उनकी गहरी आस्था जिसका, प्रतिनिधित्व हिंदू समाज युगों-युगों से करता आया है। इन बातों के कारण भारत के सर्वाधिक अनुशासित संगठनों में से एक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विलक्षण नेता के रूप में उन्हें सबसे अलग और विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

श्री गोलवलकर के अंदर इतनी अधिक ऊर्जा थी कि वे कभी थकते नहीं थे। वे देश के प्रत्येक भाग से उसी प्रकार भली-भाँति परिचित थे, जैसे अपनी हथेली से। भारतीय इतिहास के वे गहरे अध्येता थे और भारत की प्रतिरक्षा तथा उत्तर और पश्चिम की सीमाओं की सुरक्षा के लिए वे गंभीर रूप से चितिंत रहते थे। वे उन लोगों में से थे, जिन्होंने भारत के विभाजन को कभी नहीं स्वीकारा। वे चाहते थे कि भारत में मुसलमान भारत की मुख्य जीवनधारा से एकजुट हो जाएँ और राष्ट्र की विरासत के रूप में हिंदू संस्कृति का आदर करें। इस कारण वे विवादास्पद होंगे, लेकिन वे हमेशा इस आरोप का बलपूर्वक खंडन करते रहे कि वे मुस्लिम-विरोधी हैं।

ट्रिब्यून

यदि व्यक्तित्व किसी आदमी के लिए वैसा ही है, जैसे पुष्प के लिए सुरभि, तो स्वर्गीय श्री गोलवलकर का व्यक्तित्व विलक्षण था। दिखने में वे दुबले-पतले और कठोर संयम के प्रतीक लगते थे।

उन्हें अपनी इमेज बनाने के लिए रेडियो, फिल्म या प्रेस की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे आत्मप्रक्षेपण को अनावश्यक मानकर इसकी उपेक्षा करते थे और इसके बावजूद अपने योग्य प्रतिष्ठा का स्थान बना सके थे।

टाइम्स आफ इंडिया

गाँधी जी की हत्या के उपरांत जो जनरोष उमड़ा, उसके परिणामस्वरूप संघ बिल्कुल अस्तव्यस्त हो गया था। अगर प्रतिबंध के शक्तिक्षय के कुछ वर्षों के बाद यह फिर से क्रियाशील हुआ तो यह केवल श्री गुरुजी के संगठन की दुर्लभ क्षमताओं के कारण ही।

पचासोत्तरी दशक में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विकास में श्री गोलवलकर की कठोर और संयमयुक्त जीवन-पद्धति का योगदान किसी भी रूप में कम न था।

हिंदुस्तान टाइम्स

श्री एम.एस.गोलवलकर का दिवंगत हो जाना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक युग की समाप्ति का द्योतक है। सन् १९४० में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डा. हेडगेवार द्वारा सरसंघचालक के रूप में नियुक्त किए जाने के बाद श्री गोलवलकर ने संघ को एक सिद्धांत और संगठित रूप प्रदान किया, जो तत्कालीन परिस्थितियों में एक सुगठित और जबरदस्त सांस्कृतिक निकाय के रूप में विकसित हुआ।

मदरलैंड

आज श्री गुरुजी नहीं रहे। लेकिन असंख्य लोगों के जीवन में जो ज्योति उन्होंने जगाई थी, वह इस भूमि पर जब भी अंधेरा छाता प्रतीत होगा, देश को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाशमान कर देगी। हम इस समय शोक मना रहे हैं, लेकिन आगे आने वाली पीढ़ियाँ इस बात से फूली नहीं समाएँगी कि इस भूमि पर उनके जैसा देवदूत भी कभी चला करता था। उनकी पवित्र स्मृति में हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

हिंदुस्तान

भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की भाँति अपनी बौद्धिक- आध्यात्मिक क्षमता संपूर्ण सार्थकता में निचोड़कर उन्होंने कुशल रसायनशास्त्री की तरह

इनका उपयोग किया था। यही कारण है कि निराशाओं, बाधाओं और विवशताओं के बावजूद उनके अभियान की गति कभी मंद नहीं हुई और हतोत्साह उनके स्नायुमंडल को कभी पंगुता में नहीं जकड़ सका। इसके विपरीत वे उत्तरोत्तर वैयक्तिक उत्कर्ष और लोकमांगल्य की नित्य नई वैभव-विभूतियाँ प्राप्त करते रहे।

राष्ट्रोत्कर्ष पर श्री गुरुजी की अनन्य भक्ति थी। अपने निजी आयुर्बल के साथ राष्ट्र के बल को भी वे उसमें सींचना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अपना निमित्त बनाया और अथक परिश्रम, दूरदर्शी नेतृत्व एवं संगठन-कौशल्य से उसे विकसित कर देश की व्यापक बलवती शक्ति बना दिया। राजनीतिक स्तर पर जनसंघ का निर्माण भी गुरुजी की ही सूझ-बूझ का परिणाम है। देश की राजनीतिक पार्टियों में अनुशासन की दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या जनसंघ के मुकाबले की शायद ही कोई पार्टी होगी।

गुरुजी शक्ति के उपासक तो थे ही, विवेकानंद एवं शंकराचार्य की भाँति शक्ति और चरित्र के मंत्रदाता भी थे। उनका पथ अवश्य भिन्न था, किंतु इतिहास व्यक्ति का मूल्यांकन पथ से नहीं करता, पथ पर चलने की लगन और पौरुष-पुरुषार्थ के साथ अपराजित निष्ठा से निखरे चरित्ररूपी स्वर्ण को कसौटी पर चढ़ाकर करता है। व्यक्ति और व्यक्ति के क्षेत्र में गुरुजी प्रदीप्त स्वर्ण थे। अपनी पीढ़ी की विशिष्ट विभूतियों में वे सदैव स्मरणीय रहेंगे।

वीर अर्जुन

आप केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लाखों स्वयंसेवकों के पथ प्रदर्शक, नेता और अदम्य साहसी सहयोगी ही नहीं थे, वरन् अन्य सभी मातृभूमि, पुण्यभूमि प्रेमियों और देशभक्तों के लिए भी एक महान प्रेरणास्रोत थे। जिस प्रकार कभी आदि शंकराचार्य ने और फिर स्वामी दयानंद सरस्वती ने देश की महानतम सभ्यता और संस्कृति का शंखनाद किया, ठीक वैसे ही आप जीवनपर्यंत देश को प्रगति और उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ले जाने के लिए प्रयत्नशील रहे।

आपकी प्रेरणा से सन् १९६२, १९६५ और १९७१ के युद्धों में

स्वयंसेवकों ने उत्कट देशभक्ति का परिचय देकर हर किसी को स्तंभित कर दिया था।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि आपका निधन पूरे राष्ट्र की एक अपूरणीय क्षति है। किसी को आपके विचारों से मतभिन्नता भी हो सकती है, परंतु आपने हर जटिल वेला में देश का जो मार्गदर्शन किया, उसके संदर्भ में इन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

नवभारत टाइम्स

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक 'गुरुजी' सर्वप्रिय संबोधन से समादृत स्वर्गीय माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर के देहावसान से ऐसा प्रतीत होता है कि एक महान व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया। विगत दो सौ वर्षों के अंतर्गत सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक दृष्टि से हमारे देश में ऐसे व्यक्तियों का उदय हुआ है जिनकी महनीयता का आभास पाने के लिए विराट शब्द जुड़ता है। गुरु गोलवलकर उन्हीं विराट व्यक्तियों में से एक थे।

विचार और आदर्शों से मतभेद रखनेवाले लोग भी स्व. गुरु गोलवलकर जी के जीवन की तेजस्विता, त्याग और तपस्या को हार्दिक स्वीकृति देते हैं। गुणों का हमारे राष्ट्रीय जीवन से लोप हो रहा है, आदर्शों की व्यक्तिगत साधना आज के सतही विचारकों के हाथों उपहास का विषय बनाई जाती है, लेकिन यह एक ऐतिहासिक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र का एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में तब तक निर्माण नहीं किया जा सकता, जब तक उसमें उन्हीं गुणों का समावेश नहीं होगा, जिनका श्री गोलवलकर जी के जीवन में आविष्कार हुआ था। इन महान गुणों के सामने धर्मनिरपेक्षता और लौकिकतावादी चमक फीकी पड़ जाती है।

दिनमान

श्री गुरुजी के राष्ट्र और देश संबंधी विचारों से असहमत होने के बावजूद इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि माधवराव गोलवलकर में संगठन की अभूतपूर्व क्षमता थी। अपने सरल जीवन और चारित्रिक दृढ़ता

के कारण उनके व्यक्तिगत जीवन की आलोचना करनेवाले बहुत ही कम लोग मिलेंगे। एक सच्चे संन्यासी की तरह उन्होंने देश का चप्पा-चप्प छान मारा था। इसीलिए वह कहा करते थे कि रेल का डिब्बा उनका घर है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को कठिनतम परिस्थितियों में आगे ले जाने और उसे सामान्य शारीरिक क्षेत्र से आगे बढ़ाकर सांस्कृतिक और अन्य क्षेत्रों में फैलाने का श्रेय श्री गोलवलकर को है। अपने जीवन में उन्होंने इस बात का प्रयास किया था कि हिंदू-समाज में विभिन्न पंथों के आचार्य मिलकर एक समरस समाज के लिए सर्व-सम्मत मार्ग तय करें। इसी सिलसिले में उन्होंने चारों शंकराचार्यों को एक ही मंच पर खड़ा किया था।

अंग्रेजी साप्ताहिक 'ब्लिट्ज'

देश का शायद ही ऐसा कोई भाग होगा, जहाँ वे कई बार नहीं गए हों, वे कुलपति की उस महान परंपरा के थे, जो पूरे कुल को चलाता व उसका रक्षण करता था।

उनका व्यक्तिगत जीवन सादगीपूर्ण था। संगठन क्षमता अद्वितीय थी। उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ था ही नहीं और अपने आदर्शों के पालन में उनके हृदय में कोई दुर्बलता नहीं थी। उनकी वाणी में कमजोरी नहीं थी। उनके माथे पर थकान की कोई झलक नहीं थी। भटकनेवालों को उन्होंने पुनः बुलाया तथा साथ ही व्यक्तियों को फिर से प्रेरित किया। अच्छा हो, यदि कुछ राजनीतिक नेता उनके समर्पित जीवन के उदाहरण का अनुसरण करें और अनुयायियों का सम्मान और विश्वास अर्जित करें।

श्री गुरुजी ने हिंदू-धर्मग्रंथों व संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रंथों का व्यापक और बुद्धिमत्तापूर्वक अध्ययन किया था। वे बड़े विनम्र और मृदुभाषी व्यक्ति थे। उनके द्वारा नामजद व्यक्ति को उनका उत्तराधिकारी मान लिया जाना भले ही अधिनायकत्व का संकेत करे, परंतु यह संघ के सुदृढ़ अनुशासन का व उसके जनसमर्थन का प्रमाण है। आज के समय में थोड़े-से अनुशासन से ही देश बहुत कुछ कर सकता है।

युगधर्म, नागपुर

एक अति बुद्धिमान, कुशाग्र प्राध्यापक या वकील रहकर वे अपार धन प्राप्त कर सकते थे, प्रतिष्ठा अर्जित करके अपना नाम चमका सकते थे। पर राष्ट्रसेवा का व्रत और वह भी किसी दांभिकता या दिखावटी स्वरूप का नहीं, अपितु अपनी कल्पना का भारत बनाने का स्वप्न सँजोए, उन्होंने उठाया था। जिस एकता के लिए जन-जन से आह्वान किया, उसके लिए स्वयं जूझे भी। विश्व हिंदू परिषद् के माध्यम से हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदायों, मतमतांतर के बावजूद भी उनके आचार्यों को एक मंच पर लाने में उन्होंने जो असाधारण सफलता प्राप्त की, वह कल्पनातीत ही कही जाएगी। हिंदू धर्म की महत्ता को जन-जन तक पहुँचाने में सभी श्री शंकराचार्य पीठों के आचार्यों को देश भर में संपर्क हेतु उद्यत कराने का श्रेय भी उन्हीं को है। यह स्मरण ही होगा कि गत वर्षप्रतिपदा के अवसर पर नागपुर पधारे कांचीकामकोटि पीठ के आचार्य स्वामी जी स्वयं होकर श्री गुरुजी से मिलने हेडगेवार भवन तक गए थे। उनके प्रति आदर भावना का ही यह द्योतक था।

एक जागृति का मंत्र उन्होंने प्रत्येक के हृदय में फूँक दिया था। श्री गुरुजी के निधन से देश की एक प्रेरक शक्ति लुप्त हो गई है। देश एक बुद्धिमान व्यक्तित्व, कुशल संगठक, असाधारण दूरदर्शी विचारक को खो चुका है। श्री गुरुजी नहीं रहे, पर उनका कार्य अमर है। संघकार्य के रूप में वह उनकी स्मृति सदा कराता रहेगा। उनके वैचारिक पुष्पों की सुगंध देशभर में फैलाता रहेगा।

दैनिक 'आज', वाराणसी

जब देश का विभाजन हुआ तथा जब हैदराबाद में रजाकार आंदोलन उभरा, तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने उस समय किसी प्रकार का प्रतिक्रियात्मक भाग नहीं लिया। उस समय द्विराष्ट्र सिद्धांत को लेकर जिस प्रकार का सांप्रदायिक वातावरण था, उस समय यदि संघ ने आधिकारिक रूप से सक्रियता दिखाई होती, तो कोई आश्चर्य न होता। किंतु संघ ने दोनों अवसरों पर स्वयं को पृथक रखा। वह इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर संकीर्ण सांप्रदायिकता का आरोप नहीं लगाया

जा सकता। उस समय तथा उसके बाद भी संघ को सक्रिय राजनीति से दूर रखने का श्रेय श्री गोलवलकर के व्यक्तित्व तथा राष्ट्रसेवा संबंधी उच्च आदर्श को ही है।

साप्ताहिक 'केसरी', कालीकत

श्री गुरुजी महायोगी और राष्ट्र के ऋषि थे। इतिहास के पृष्ठों में उनका स्थान विशिष्ट और जनक की श्रेणी में होगा। उनका जीवन सत्ता-संपादन के लिए नहीं, अपितु शासकों को सत्य की राह पर चलने का मार्गदर्शन करने के लिए था। वे किसी से घृणा नहीं अपितु सभी पर प्रेम करते थे। वे किसी उपासना पंथ के विरुद्ध नहीं थे, फिर भी राष्ट्र के प्रति उनके आत्यंतिक प्रेम को चूँकि कई लोग समझ नहीं पाते थे, इसलिए गलत धारणाएँ रखते थे। उन्हें कोई प्रलोभित नहीं कर सकता था और न कोई बाधा उन्हें रोक सकती थी।

उन्हें यह संतोष प्राप्त हो सका कि ईश्वर ने उन्हें जो कार्य सौंपा था, उसे उन्होंने पूर्ण किया। वे इस विश्वास के साथ हमारे बीच से गए कि बचा हुआ कार्य हम लोग पूर्ण कर लेंगे। उनके निधन से हमें दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है।

दैनिक 'आर्यावर्त', पटना

गोलवलकर जी में धैर्य, साहस और मानसिक संतुलन अपूर्व था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर उनके जीवनकाल में कई संकट आए, पर वे कभी अधीर नहीं हुए और न कभी मानसिक संतुलन ही खोया। देश के बड़े से बड़े नेताओं ने उनके विरुद्ध निंदा के शब्द कहे, पर उन्होंने अपनी वाणी से कभी किसी की परोक्ष या एकांत में भी निंदा नहीं की।

दैनिक 'दिनमणि', चेन्नै

उन्होंने संघ के प्रमुख के नाते जो सेवा की, वह अद्वितीय है। ईश्वरभक्ति, राष्ट्रभक्ति, त्याग भावना, अनुशासन का भाव भरने तथा

दुखियों का दुःख दूर करने तथा समाज के जागरूक प्रहरी के नाते कर्तव्य-दक्ष रहने का भाव जागृत करने का जो कार्य उन्होंने किया है, वह अतुलनीय है। महात्मा गाँधी के समान ही उन्होंने युवकों को अनुप्राणित किया था। उनके जैसा नेता पाना कठिन है।

दैनिक 'सन्मार्ग', कोलकाता

ओजस्वी वक्ता और तेजस्वी नेता के रूप में वे सदैव स्मरण किए जाएँगे। उनके उपदेश और कार्य प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। उनकी वाणी अमर है। वस्तुतः उनकी मृत्यु से भारत ने एक महान नेता, उपदेष्टा और पथप्रदर्शक खो दिया है। हिंदू-धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए उनकी सेवाओं की बहुत बड़ी आवश्यकता थी।

दैनिक 'समाज', कटक

वर्तमान परिस्थिति में जो दुर्दशा हुई है, उससे ऊपर उठाकर फिर से उस गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित कराना– यह था उनके जीवन का महान व्रत। इसलिए विभिन्न उत्थान-पतन की परिस्थितियों में अनेकों बार कारावास सहकर भी गत ३३ वर्षों के अपने जीवन का अति उत्कृष्ट समय उन्होंने सरसंघचालक के नाते बिताया। इस दीर्घ काल में उनके अनुयायी तथा सहयोगियों में उनका प्रभाव अधिकतम था। छत्रपति शिवाजी महाराज के समान वे एक उच्च कोटि के देशप्रेमी और संगठक थे। अभूतपूर्व संगठन-शक्ति होने के कारण शिवाजी के समान भारत को दृढ़, बलिष्ठ एवं शक्तिशाली बनाने का स्वप्न उन्होंने हमेशा अपने सामने रखा था और अपने अनुयायियों को एवं अन्यों को भी उसी स्वप्न को साकार बनाने के लिए उद्‍बोधन करते थे।

साप्ताहिक 'आलोक', गोहाटी

भारतवर्ष ऋषियों का देश है। श्री गुरुजी ने अपने देशवासियों के सम्मुख अंतर्बाह्य ऋषिरूप का परिचय प्रस्तुत किया। आत्मविस्मृत हिंदू को

जगाने के लिए उन्होंने जागरण की जो अखंडधारा प्रवाहित की, वह भारत में चिरकाल तक प्रवाहित होती रहेगी।

ईश्वरप्रेरित श्री गुरुजी ने सांसारिक जाल में न फँसकर धन, यश, मान आदि का परित्याग कर भारतीय सभ्यता, संस्कृति का श्रेष्ठ आदर्श अपने जीवन में प्रत्यक्ष उतारा। आज श्री गुरुजी नहीं हैं, किंतु हिंदू-समाज जब तक जीवित रहेगा, तब तक दलित, पतित, आत्मविस्मृत हिंदू के पथप्रदर्शक के रूप में वे सदैव श्रद्धापूर्वक स्मरण किए जाते रहेंगे।

दैनिक 'आंध्रप्रभा'

अपने ध्येय और आदर्श की प्राप्ति के लिए श्री गोलवलकर जी ने जो प्रयत्न किए, वे विचारणीय हैं। उनका ध्येय-समर्पण अनुकरणीय है। उन्होंने भारतीयों को जिस ढंग से संगठित किया है, उससे अन्य राजनैतिक नेताओं को शिक्षा लेनी चाहिए।

विशिष्ट ध्येय के प्रति लाखों युवकों को आत्मसमर्पित करा लेना आसान कार्य नहीं है। स्वातंत्र्यपूर्वकाल में देश का युवा वर्ग अप्रतिम त्याग के लिए कूद पड़ा था। ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा ने बहुत बड़ी संख्या में युवकों को अपनी ओर आकर्षित किया। श्री गोलवलकर की तरह अन्य लोगों ने भी देश के युवकों और उनके असीमित सामर्थ्य को रचनात्मक कार्यों के लिए संगठित किया होता तो देश का चित्र आज कुछ और ही होता।

दैनिक 'प्रजावाणी', बंगलौर

उनके द्वारा प्रतिपादित 'हिंदू-राष्ट्र' जातिवाचक न था, देशवाचक था। उनकी धारणा थी कि भारत को अपनी मातृभूमि मानकर, उसकी संस्कृति, परम्पराओं के प्रति श्रद्धा, गौरव रखनेवाले सभी भारतीय हिंदू हैं। भाषावार प्रांतरचना का प्रारंभ से ही विरोध करनेवाले वे यह घोषित करते रहे कि भाषा, राज्य, प्रदेश, संप्रदाय आदि के नाम पर चलनेवाले सभी आंदोलन अंततः राष्ट्र की एकता को दुर्बल बनाते हैं।

'मसुराश्रम पत्रिका' मासिक, मुंबई

उनकी प्रखर राष्ट्रभक्ति और मातृभक्ति के लिए उनके निःस्वार्थ समर्पण से भयभीत ईर्ष्यालु लोगों ने उनके विषय में निरंतर भ्रम निर्माण किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'हमें पराक्रमवाद का पुनर्जागरण करना ही चाहिए। इसके लिए हमें यह स्पष्ट रूप से कहना होगा कि यहाँ रहनेवाले गैरहिंदुओं का एक राष्ट्रधर्म है, एक समाजधर्म है, एक कुलधर्म है तथा इसके बाद उनका व्यक्तिधर्म आता है। अपनी पारलौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे चाहे जो मार्ग अपना सकते हैं। व्यक्तिगत जीवन के एक अंश के लिए चयन की उन्हें छूट है, किंतु शेष सभी बातों में राष्ट्रीय जीवनप्रवाह से उन्हें समरस होना ही चाहिए।

दैनिक 'केसरी', पुणे

परमेश्वर द्वारा बनाए गए आत्मा के स्वरूप 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' को उन्होंने राष्ट्र की आत्मा के साथ एकाकार रूप में देखा तथा अंत में उसी सनातन राष्ट्र के चरणों में अपना देह-पुष्प समर्पित कर दिया। गंगा अंत में जाकर जिस प्रकार सागर में मिलती है, ठीक उसी तरह उनकी विशुद्ध कार्य-गंगा जनसागर में समा गई और उससे एकाकार हो गई। उनके इस अलौकिक कार्य को उनके देशबंधु लाख-लाख प्रणाम करेंगे, इसमें संदेह नहीं।

दैनिक 'जनसत्ता', अहमदाबाद

पं. मालवीय तथा स्वामी विवेकानंद ने भारतीयत्व के विषय में जिस प्रकार के उपदेश दिए थे, उसी धरोहर की शृंखला को चालू रखनेवाले तथा स्वदेशी और भारतीयत्व के संबंध में देश के वर्तमान नेताओं में वे ही अकेले एक ज्योतिर्धर थे।

'राष्ट्रदूत', जयपुर

गुरुजी बड़ी कुशलता से संगठन को शक्तिशाली बनाने में लगे रहे। देशभर के इस कोने से उस कोने तक उनके तूफानी दौरे होते थे। उनके भाषणों का प्रभाव गहरा पड़ता था। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा जादू था कि उनके संपर्क में आनेवाला व्यक्ति प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता था। उनकी भाषण देने की शैली अनुपम थी। धाराप्रवाह हिंदी में वह भाषण करते तो लोग मंत्र-मुग्ध होकर सुनते थे।

'नवज्योति', जयपुर

आधुनिक भारत में ऋषि-मुनियों की जो एक शृंखला चली आ रही है, गुरु गोलवलकर के निधन से उसकी एक कड़ी टूट गई। जिस शालीनता व विनम्रता से वे अपनी आलोचना का उत्तर देते थे, उससे सामनेवाले पर उनकी प्रतिभा की छाप पड़े बिना नहीं रहती थी।

गुरुजी प्रभावी व्यक्तित्व के कर्मयोगी ऋषि थे। अपने विचारों के प्रति अटूट निष्ठा के कारण राष्ट्रीय जीवन में उनका सम्मानपूर्ण स्थान था। वे धर्मनिष्ठा तथा संगठन-प्रतिभा के धनी थे और देश के लाखों युवकों के प्रेरणास्रोत थे। वे अपने ढंग से राष्ट्र की सेवा में आजीवन रत रहे।

दैनिक 'नवभारत', रायपुर

देश के समक्ष जब-जब विभिन्न प्रकार के संकट आए, तब-तब गुरुजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने ध्येय के अनुसार जनता में जाकर उनकी सेवा की, उसमें आत्मरक्षा की भावना का निर्माण किया। अपनी आस्था के आधार पर उन्होंने हिंदुओं को उनकी अस्मिता से परिचित कराया। उनका निधन निस्संदेह राष्ट्र की क्षति है।

निस्संदेह गुरुजी का जीवन एक संत का जीवन था और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि औरंगजेब के शासनकाल में संत

तुलसीदास की रामायण ने इस देश की बहुसंख्यक जनता में जिन प्राणों का संचार किया, वैसा ही कुछ कार्य गुरुजी के तपस्वी जीवन ने अंग्रेजों के शासनकाल में किया।

दैनिक 'स्वदेश', इंदौर

वे तो मुक्त आत्मा थे, वे तो मृत्युंजय थे, पर जब उन्होंने देखा कि इस पार्थिव शरीर से राष्ट्रसेवा संभव नहीं है, तो उन्होंने उसे त्याग दिया। पर राष्ट्र-वैभव को पुनरपि प्राप्त करने हेतु अहर्निश छटपटानेवाला वह आत्मा और प्रखरता के साथ हमारे अंतःकरणों को राष्ट्र-सेवा हेतु प्रेरित करेगा। उनके प्रति हमारी श्रद्धा एक ही कसौटी पर कसी जाएगी कि उनके अभाव में उनके द्वारा दिखाई गई दिशा की ओर कितनी प्रमाणिकता, तत्परता एवं तेजी के साथ हम बढ़ते हैं।

साप्ताहिक 'हिंदू', जालंधर

१९४० में पूजनीय डाक्टर जी का स्वर्गवास हुआ तब से अब तक प्रतिवर्ष वे संपूर्ण देश का एक बार अवश्य प्रवास करते रहे। उनका हाथ निरंतर हिंदू-समाज की नाड़ी पर ही रहा। क्या-क्या न्यूनताएँ हैं, उन्हें किस प्रकार दूर किया जाए, दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण समाज में उत्पन्न बुराइयाँ कैसे दूर हों, मातृभूमि की प्रखर भक्ति के संस्कार किस तरह किए जाएँ, यही उनकी चिंता का विषय था। ईश्वर की कृपा से अपने लक्ष्य की सिद्धि में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। उनके नेतृत्व में संघकार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला गया।

साप्ताहिक 'आर्गनायजर', दिल्ली

श्री गुरुजी अब नहीं रहे। जिन लाखों लोगों को मातृभूमि की सेवा करने की प्रेरणा उनसे मिली, वे अपने जीवन में उनकी मृत्यु के पश्चात् खोया-खोया सा अनुभव करेंगे।

जहाँ दूसरे लोग सतही दृष्टि से विषय समझने का यत्न करते हैं,

वहाँ श्री गुरुजी की दृष्टि मर्मग्राही थी। वे मंत्रद्रष्टा ऋषि थे। वे न केवल सर्वसाधारण से अधिक तथा अच्छे ढंग से देखा करते थे, अपितु जो कुछ प्रत्यक्ष देखते, उसे उसी रूप में प्रकट भी करते थे। उदात्त व्यक्तित्व, विशुद्ध जीवन तथा श्रेष्ठ गुणों के कारण वे साधारण मनुष्यों में नहीं, ऋषियों की श्रेणी में थे।

जब श्री गुरुजी हिंदू-संगठन, हिंदू-राष्ट्र तथा हिंदू-संस्कृति की बात करते, तब कुछ राजनीतिज्ञ उसे सांप्रदायिक समझने की भूल करते। वास्तव में वे उतने ही सांप्रदायिक थे, जितना विवेकानंद या अरविंद को कहा जा सकता है। वे अनुभूति के उच्च स्तर से ही बोला करते थे। श्री गुरुजी हिंदुओं के लिए अधिक अधिकार और अन्यों के लिए कम की दृष्टि से सोचते ही नहीं थे। वे तो हिंदुत्व का जागरण तथा हिंदुस्थान की एकात्मता तथा दोनों के आनेवाले कल के विश्व एवं भावी संस्कृति के लिए योगदान की ही चिंता करते थे।

उन्हें राजनीति में नहीं, राष्ट्रभक्ति में रुचि थी। सत्ता की लालसा उनमें थी ही नहीं। चारित्र्य-निर्माण के कार्य में ही वे संलग्न रहे। उनके जीवन में ज्ञान-विज्ञान का सुंदर संगम हुआ था। वैदिक वाङ्मय में उनकी उतनी ही पैठ थी, जितनी कि अणु-विज्ञान में थी। वे वास्तव में पूर्ण पुरुष थे। उनके साथ बिताए हुए क्षण शिक्षाप्रद होते थे। उनके साथ कार्य करना एक आध्यात्मिक अनुभूति थी।

आज श्री गुरुजी नहीं रहे, परंतु जो ज्योति अगणित हृदयों में वे प्रज्ज्वलित कर गए, वह जब भी कभी देश के क्षितिज पर अंधकार का साया पड़ेगा, सतत प्रकाश देती रहेगी। आज हम उनके स्वर्गवास पर दुःख मना रहे हैं, पर भावी पीढ़ियाँ इस बात पर हर्ष प्रकट करेंगी कि इस भूमि पर उनके रूप में देवदूत ने विचरण किया था। उनकी पवित्र स्मृति में हमारी विनीत श्रद्धांजलि।

साप्ताहिक 'पांचजन्य', दिल्ली

परमपूजनीय श्री गुरुजी देवदूत की नाईं भारतीय क्षितिज पर उस समय अवतरित हुए, जब स्वार्थ और मोहवश परानुकरण की प्रवृत्ति से हिंदू-धर्म संस्कृति तथा समाज का ह्रास हो रहा था। उन्होंने निर्भयता से

हिंदू-राष्ट्र के सत्य को गुँजाया। राष्ट्रीयता की शुद्ध व्याख्या के अंतर्गत भारत के राष्ट्रीय जन को अपनी अस्मिता के साथ खड़े होने के लिए प्रेरित किया। हिंदू शब्द, जो विदेशी कूटनीति के कारण सांप्रदायिक और जातीय माना जाने लगा था, उन्होंने उसे पुनः सच्चे राष्ट्रीय अर्थ में प्रतिष्ठापित किया।

'गोधन' मासिक, दिल्ली

उनकी यह महती आकांक्षा थी कि भारत के सभी नागरिक भारत को अपना राष्ट्र समझें, उसकी संस्कृति को अपनी संस्कृति मानें और देश के मानबिंदुओं की रक्षा करने में संकोच न करें।

गोरक्षा आंदोलन के तो गुरुजी सूत्रधार ही थे। वह एक क्षण भी भारत के मस्तक पर गोहत्या का कलंक लगा नहीं देखना चाहते थे।

उन्होंने गोभक्तों को सदा यही प्रेरणा दी कि वे गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए बड़े से बड़ा उत्सर्ग करने में पीछे न रहें।

दैनिक 'पायनियर', लखनऊ

लाखों लोगों के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के श्री माधव सदाशिव गोलवलकर गुरु, मार्गदर्शक और दार्शनिक थे। वे अब नहीं रहे। इतिहास ही उनकी योग्यता का सही मूल्यांकन कर सकेगा। परंतु पूरी सच्चाई के साथ इस बात का अंकन तो अवश्य ही किया जा सकता है कि श्री गुरुजी का समर्पित जीवन था और उन्होंने अपने चिंतन के अनुसार राष्ट्र की सेवा भक्तिपूर्वक और यहाँ तक कि एकांतिक निष्ठा के साथ की। उन्होंने जिसे सत्य माना, उसके साथ कभी समझौता नहीं किया। उनके लिए भारत एक अखंड और अविभाज्य था। उनके कार्यों की चाहे जो सीमाएँ रही हों और उनके निंदकों के अनुसार तो वे कई थीं, फिर भी श्री गोलवलकर दृढ़ देशभक्त थे। वे परंपरावादी और यहाँ तक कि पुनरुत्थानवादी भी गिने जाते रहे, परंतु उन्हें संकुचित अथवा जातिवादी कहना उनके साथ अन्याय करना है। यह उनका ही सिद्धांत था कि आक्रमणों का सामना करने में समर्थ और शक्तिशाली राष्ट्र तब ही बन सकता है, जब राष्ट्र को एकसूत्रता में गूँथा जाए।

मासिक 'प्रबुद्ध भारत', मायावती आश्रम

बहुविख्यात भारतीय नेता, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधव सदाशिव गोलवलकर जी की मृत्यु ५ जून १९७३ को नागपुर में हुई। अपने जीवनकाल में वे बहुत विवादास्पद व्यक्तित्व थे। एक ओर उनके अनुयायी उन्हें बहुत सम्मान और प्रेम करते थे, तो दूसरी ओर उनकी निंदा करनेवाले उनके प्रति घोर घृणा प्रकट करते थे। परंतु उनकी मृत्यु के बाद हम क्या पाते हैं? संभवतः उन्हें भी आश्चर्य हुआ होगा कि देहत्याग के बाद उनके प्रति विवाद समाप्त होकर राख में मिल गया और उनका निर्मल चरित्र उस राख से निकल कर दमक उठा। अब उनकी स्मृति में जो श्रद्धांजलि-पुष्पहार अर्पित किए जा रहे हैं, उसमें अनेक अप्रत्याशित स्थानों के पुष्प भी हैं। इस श्रद्धांजलि-पुष्पहार में बिना धागे के गुंफित ये पुष्प विभिन्न कोनों से सहसा खिलकर आ मिले हैं। इसलिए इसमें सुवास भी है और विविधता भी।

गोलवलकर जी का जीवन एक खुला हुआ ग्रंथ है, जिसे सब पढ़ सकते हैं। हो सकता है आप कई मुद्दों पर उनसे सहमत न हुए हों, परंतु आज इसका कोई महत्त्व नहीं रहा। महत्त्व इस बात का है कि आज आप उनमें एक ऐसे व्यक्ति और चरित्र का दर्शन कर रहे हैं, जो निष्कलंक, निःस्वार्थ, निर्भय है। वे अपने लिए नहीं, पूर्णतः सबके लिए जिए। भला ऐसी बात इस विश्व में कितने व्यक्तियों के लिए कही जा सकती है।

इससे भी अधिक श्री गोलवलकर जी ने जो सबसे बड़ी सेवा भारत और उसके लोगों को की, वह है उनके द्वारा वाणी और व्यवहार में उन विशेष मूल्यों का संरक्षण, जिनकी राष्ट्र के अस्तित्व और उसके सुव्यवस्थित विकास के लिए आवश्यकता है। जबकि जाने माने राजनीतिक नेतागण, नदी-योजनाओं, औद्योगीकरण, परिवार-नियोजन, जीवन-स्तर आदि की बातें कर रहे थे, तब वे अनुशासन, शक्ति, निर्भयता, चरित्र, निःस्वार्थ सेवा, गतिशील देशभक्ति की शिक्षा दे रहे थे, जिसके बिना आधुनिक भारत को उज्ज्वल भविष्य कदापि प्रदान नहीं कर सकते। इससे भी अधिक बात यह है कि आज 'वाटरगेट' जैसे भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता से व्याप्त वायुमंडल में वे अखिल भारतवर्ष में चरित्रयुक्त अनुशासित व्यक्तियों का निर्माण कर गए हैं।

मासिक 'कल्याण'

ऋषिकल्प परमपूज्य श्री गुरुजी जो हमारे ही नहीं, संपूर्ण भारतवर्ष के परम सेवक, हितचिंतक, आत्मीय, मार्गदर्शक और स्वजन थे। हम लोगों को छोड़कर भगवान के चरणों का सान्निध्य प्राप्त कर लिया, इससे हमारे मन और प्राण दोनों व्यथित है। वे मुक्त पुरुष थे। अहर्निश सेवा-कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपनी आध्यात्मिकता को उन्होंने अक्षुण्ण बनाए रखा और इस प्रकार जगत् के कर्म-संकुल जीवन में रहकर 'पद्मपत्रमिवांभसा' का आदर्श उपस्थित किया। ऐसे महामनीषी, महाविचारक और मानवता को सच्चा मार्ग दिखानेवाले महापुरुष यदा-कदा भगवान की विशेष प्रेरणा से ही जन्म ग्रहण करते हैं। उनके जीवन का आदर्श चिरकाल तक मानवता को प्रकाश देता रहेगा।

'सर्वे भवन्तुः सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।'

की महनीय भावना से प्रभावित होकर भारतवर्ष के उज्ज्वल भविष्य निर्माण की साध लेकर परमपूजनीय श्री गोलवलकर जी ने लक्षावधि तरुणों को भाषा तथा प्रादेशिक भावना की संकीर्ण परिधियों से ऊपर रखकर चरित्रवान अनुशासनबद्ध तथा संगठित बनाने की दिशा में आजीवन जो अखंड साधनामय तपःपूत जीवनादर्श प्रस्तुत किया है, उसने श्री गुरुजी को सहज ही हिंदू युवक-वर्ग का हृदय-सम्राट बना दिया है।

उनकी मंगलमयी भावना से अनुप्राणित होकर हिंदू-जीवन के सभी क्षेत्रों में उनके भगीरथ प्रयास से जिस नवजीवन का संचार हुआ है, उसी पर विश्व की आँखें टिकी हुई हैं। देश की यह प्रबुद्ध तरुण पीढ़ी श्री गुरुजी के आध्यात्मिक आदर्श को दृढ़ता से अपनाकर उनके स्वप्नों को साकार करने के लिए निकल पड़े, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। 'कल्याण' तथा 'गीता प्रेस' अपने इन परम स्वजन एवं आत्मीय के तिरोधान की शोक-वेला में संघ के साथ हैं।

शब्द संकेत : खंड १२

ঌ ঌ ঌ